CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding: KS-MoE-Grant-2

112

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuruMath, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ॐ

चैतन्यवचनामृतम्

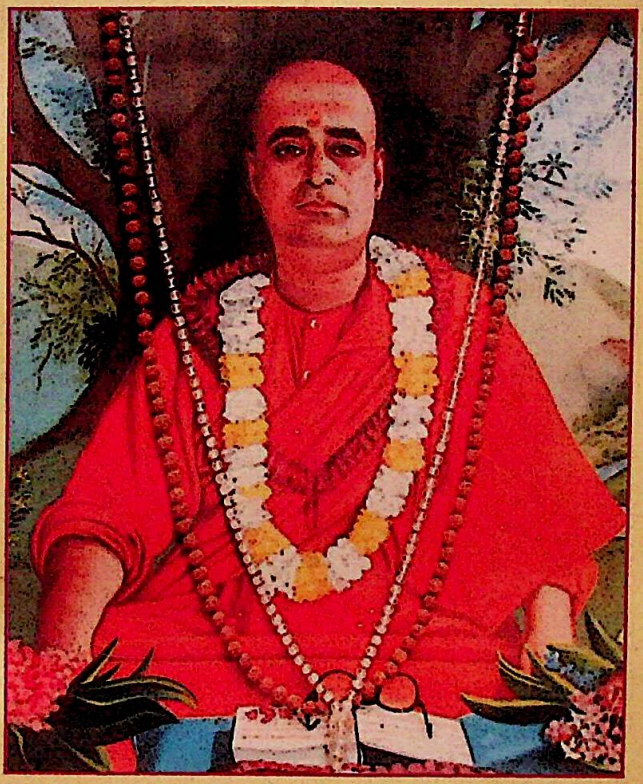

लीन अष्टम आचार्य महामण्डलेश्वर श्री १००८
वामी चैतन्य गिरि जी महाराज (शास्त्री जी)

सम्पादक : डॉ. जगेशनारायण शर्मा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ॐ

॥ श्रीमदभिनवचन्द्रेश्वरो विजयतेतराम् ॥

श्रीकैलासविद्यालोकस्याष्ट पञ्चाशततमः सोपानः

चैतन्य वचनामृतम्

卐

पाण्डुलिपिकर्त्ता एवं सम्पादक :

डॉ० जगेशनारायण शर्मा 'मानसमरालः'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

प्रकाशक—

कैलास आश्रम, ऋषिकेस

ग्रन्थाङ्क—५७

प्रथम संस्करण—१००० प्रतियाँ

गुरु पूर्णिमा—सं. २०५४, सन्—१९९७

न्यौछावर—

मुद्रक—

जैना प्रिंटर्स

पीठ बाजार, ज्वालापुर (हरिद्वार)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ॐ

ब्रह्मविद्यापीठश्रीकैलासाश्रमस्याधिष्ठातृदेवानां भगवताम-
भिनवचन्द्रेश्वरमहादेवानां प्रतिष्ठाशताब्दीमहोत्सवप्रसङ्गे
षष्ठकैलासपीठाधीश्वराणामाचार्यमहामण्डलेश्वराणां
विद्यावाचस्पतीनामनन्तश्रीविभूषितानां स्वामि-
विष्णुदेवानन्दगिरिमहोदयानामष्टमपीठाधीश्व-
राणामाचार्यमहामण्डलेश्वराणामनन्तश्री-
विभूषितानां स्वामिचैतन्यगिरिमहोद-
यानां च निर्वाणरजतमहोत्सवा-
वसरे तेषां पूज्यचरणानां
कराब्जयोरिमाम-
भिनवां कृतिं
त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव
समर्पयति ।

भगवत्पादीयचरणानुरक्ता रामचमेली
कानपुरम्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

अनुक्रमणिका

क्रम सं०	प्रसंग	पृष्ठ
१.	प्रासंगिकम्	
२.	सम्पादकीय	
३.	शिवोऽहं, शिवोऽहं, शिवोऽहं	
४.	मोह–मुद्गर (१)	
५.	मोह–मुद्गर (२)	
६.	मोह–मुद्गर (३)	
७.	मोह–मुद्गर (४)	
८.	आत्मा ही जानने योग्य है	
९.	आत्मा सुखरूप है : आत्मा ज्ञानरूप है	
१०.	आत्मदर्शन क्या है ?	
११.	ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं	
१२.	स्वप्न तथा जाग्रत अवस्था का विचार	
१३.	आत्मा को वश में करने के उपाय	१
१४.	उपासना की महिमा	१
१५.	आत्मलाभ क्या है ?	१
१६.	मन की एकाग्रता (१)	१
१७.	मन की एकाग्रता (२)	१
१८.	मैं कौन हूं ?	१
१९.	परम लाभ क्या है ?	१
२०.	कर्म से मोक्ष नहीं होता	१
२१.	शरीर आत्मा नहीं	१
२२.	संसार की मिथ्यत्व दृष्टि	१
२३.	मन्त्रजाप की महिमा	२
२४.	सुख का आश्रय	२
२५.	भ्रान्ति निवारण कैसे हो ?	२
२६.	सुख कहाँ है	२
२७.	प्राणों की उपासना	२
२८.	जगत् का अधिष्ठान कौन है ?	२

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दिशन्तु शं मे गुरुपादपांसवः

प्रासंगिकम्

सृष्टि के आरम्भ में भारत भूमि में अवतरित ऋषियों ने वेदमंत्रों को देखा था—'ऋषयो मन्त्र द्रष्टारः'—अर्थात् मन्त्रद्रष्टा को ऋषि कहते हैं। जिस वेद में प्राणिमात्र के कल्याण के साधनों का निरूपण है, जिसमें 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का उद्घोष है, वह वेद ऋग्, यजुं, साम एवं अथर्व—भेद से चार माना गया है। वेदोक्त उपदेशों का विस्तार पुराण और इतिहासों में किया गया है, इसीलिए—

इतिहास पुराणाभ्याम् वेदार्थमुपबृंहयेत्

अर्थात् इतिहास और पुराण के आधार पर वेदार्थ के विस्तार का आदेश आप्त पुरुषों ने दे रखा है। इसीलिए कुछ मनीषियों का यह भी कहना है कि जहां वेद 'राज-सम्मित' उपदेश करता है, वहाँ धर्मशास्त्र 'मित्रसम्मित' उपदेश, और इतिहास 'पुराण कान्ता सम्मित' उपदेश करते हैं। उदाहरणार्थ वेद ने कहा—सत्यं वद जो राजाज्ञा के समान अनुल्लंघनीय है। उसी को धर्मशास्त्र कहता है—

सत्यं ब्रूयात, प्रियं ब्रूयात
ना ब्रूयात सत्यमप्रियम्

अर्थात् सत्य बोलो और प्रिय बोलो। सत्य हो तो भी कटु शब्दों में मत बोलो, क्योंकि कटु शब्दों में सत्य भाषण भी कष्टप्रद होने के कारण पूर्ण धर्म नहीं माना जाता। अतः सत्य बात को भी प्रिय शब्दों में कहना ही धर्म है। धर्मशास्त्र का यह वचन 'मित्र सम्मित' उपदेश के समान है। एक मित्र दूसरे को लाभ-हानि बतलाकर उचित मार्ग में लगाता है। ऐसा ही धर्मशास्त्रों में उपदेश मिलता है। इसीलिए उसे मित्र सम्मित उपदेश कहा गया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पर इसी को जब कोई पतिव्रता स्त्री अपने पति से कहती है तब उसके कहने का प्रकार कुछ भिन्न ही होता है, जैसे युद्ध में जाने से पूर्व मन्दोदरी ने रावण को 'कान्ता-सम्मित' उपदेश दिया—

कंत समुझि मन तजहु कुमतिही ।
सोह न समर तुम्हहि रघुपतिही ॥
रामानुज लघु रेख खचाई ।
सोउ नहिं नाघेहु असि मनुसाई ॥
पिय तुम ताहि जितब संग्रामा ।
जाके दूत करे यह कामा ॥

—मानस—६.३.५-१-३

पूर्वोक्त वेद एवं धर्मशास्त्र के सत्य भाषण का उपदेश, इतिहास पुराणों में राजा हरिश्चन्द्र के उपाख्यान से कहा गया है । राजा हरिश्चन्द्र ने सत्यव्रत पालन के लिए क्या-क्या कष्ट नहीं सहा है, यह पुराणों में उल्लिखित है । अतः मनुष्य को सत्य भाषण ही करना चाहिये, मिथ्या भाषण नहीं करना चाहिये ।

वेद के शिरो भाग उपनिषदों पर जन सामान्य के लिए जब संत महापुरुष उपदेश करते हैं तब उनके उपदेशों में पूर्वोक्त तीनों ही प्रकार सुस्पष्टभाषित होते हैं—जिनका दर्शन पाठक इस प्रकृत 'चैतन्य वचनामृत' ग्रन्थ में करेंगे ।

विश्व में शांकरी परम्परा का एक अनोखा आश्रम ऋषिकेशस्थ कैलास आश्रम है, जिस पीठ पर गुरु की आज्ञा से 'अनिच्छयाऽपि'—परमश्रद्धेय अनंतश्री स्वामी चैतन्य गिरिजी महाराज आसीन हुये । फलतः ब्रह्मविद्यापीठ कैलास आश्रम के पीठाचार्यों की परम्परा में अष्टम् पीठाधीश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुये । ब्रह्म विद्यापीठ पर आसीन होने से पूर्व और पश्चात् भी भारतीय दर्शनों का स्वाध्याय एवं प्रवचन आप करते रहे । समय-समय पर आपश्री के प्रवचनों का टेप भक्तों ने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किया। उन टेपों का प्रेस के योग्य पाण्डुलिपि करने का श्रेय एकमात्र डॉ. पं० जगेश नारायण शर्मा जी (मानस मराल) को मिलता है। यदि वे प्रेसयोग्य टेप के आधार पर संकलन नहीं किये होते तो यह कार्य कठिन ही नहीं, अपितु असंभव भी था। विद्यालयीय ग्रीष्मावकाश के दिनों समय निकाल कर उन्होंने टेप के आधार पर पूज्य श्री शास्त्री जी महाराज के उपदेशों का संकलन किया। इसलिए ये भूरिशः धन्यवाद के पात्र हैं।

पूज्य महाराजश्री के प्रवचनों की भांति स्वाध्याय का भी टेप उन दिनों किया गया होता तो वह 'प्रस्थानत्रयी' एवं 'वृहत् प्रस्थानत्रयी' तथा प्रकरण ग्रन्थों के विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त उपयोगी हो सकता था। जैसे ब्रह्मविद्यापीठ कैलास आश्रम के चतुर्थ पीठाचार्य अनंतश्री स्वामी गोविन्दानन्द जी महाराज तथा षष्ठ पीठाचार्य महामण्डलेश्वर विद्यावाचस्पति अनंतश्री स्वामी विष्णुदेवानन्द जी महाराज के द्वारा प्रस्थानत्रयी एवं अन्य ग्रन्थों पर लिखी गयी टिप्पणियाँ प्रकाशित होने से सभी के लिए सुलभ हो गयी। ऐसे ही पूज्यश्री शास्त्री जी महाराज के स्वाध्याय के दिनों किये गये वेदान्त विचारों का संकलन मिल जाने पर प्रकाशित होने के बाद संस्कृत जगत् को एक अपूर्व लाभ हो सकता था, पर ऐसा कुछ प्राप्त नहीं हो सका। केवल 'वेदान्त रत्नाकर' की मौलिक रचना जो कि श्री बड़े महाराज जी की है, उस पर विस्तृत प्रासादिक व्याख्यान पूज्यश्री शास्त्री जी महाराज का प्राप्त हो सका, जिसे कैलास के प्रकाशनों में कई बार मुद्रित कर चुके हैं।

१९९७ में जब उपर्युक्त दोनों आचार्यों को ब्रह्मलीन हुये २५ वर्ष बीतने वाले थे तब कई वर्ष पूर्व ही हमारे मन में उपर्युक्त ब्रह्मलीन दोनों आचार्यों के 'निर्वाण रजत-महोत्सव' मनाने का संकल्प उदय हुआ। इस प्रसंग पर हम एक ऐसे दुर्लभ साहित्य की खोज में थे जिस एक ही साहित्य के साथ दोनों आचार्यों का सम्बन्ध हो। ऐसा साहित्य 'वेदान्त रत्नाकर' मिल गया। अतएव दोनों ही गुरुजनों के पुण्य स्मरण में श्रीमान गोवर्द्धन लाल जी चानना के आग्रह पर 'श्रद्धा सुमनाञ्जलि'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुस्तक का संकलन एवं संपादन श्रीमान स्वर्णलाल तुली जी ने किया जिसमें मूल श्लोक-रचना पूज्यश्री शास्त्री जी महाराज के विस्तृत व्याख्यान का है। संक्षिप्त उल्लेख और आंग्ल भाषा में अनुवाद करके श्रीमान स्वर्णलाल तुली जी ने श्रद्धा सुमनाञ्जलि पुस्तक में संपादन करके जिस पुस्तक में ब्रह्मलीन उपर्युक्त दोनों ही गुरुजनों का संक्षिप्त जीवनवृत्त और भगवान अभिनव चन्द्रेश्वर की महिमा का वर्णन मिलता है, उसका विमोचन विगत् २८ अप्रैल १९९७ को हो चुका है।

ब्रह्मलीन श्री शास्त्री जी महाराज के प्रवचनों का प्रस्तुत संग्रह जो प्रकाशित हो रहा है जिसके संकलनकर्त्ता और संपादक डॉ. जगेश नारायण शर्मा जी हैं। संकलित विचारों को प्रकाशित करने से पूर्व संपादक ने हमसे पूछा इसका क्या नाम रखा जाये–तब हमने कहा–इस पुस्तक का नाम 'चैतन्य वचनामृत रखना उपयुक्त होगा। जो नाम अन्वर्थ होगा। इस नाम से यहाँ इसके प्रवक्ता पूज्य शास्त्री जी महाराज का पुण्य स्मरण होगा वहां साथ ही साथ कलिमल ग्रस्त सांसारिक जीवों को चेतनता प्रदान करने वाला अमृततुल्य यह वचना होगा। हमारे इस साभिप्राय नामकरण को सुनते ही सम्पादक महोदय बड़े प्रसन्न हुये। फलतः इस पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ में इस नाम का उल्लेख पाठकों को मिलेगा।

यद्यापि इसका संकलन एवं पाण्डुलिपि लेखन बहुत पूर्व ही किया जा चुका था। इसके प्रकाशन के लिए कुछ प्रयत्न भी हो रहा था किन्तु ईश्वर इच्छा से विलम्ब होता गया। फलतः ब्रह्मलीन श्री शास्त्रीजी महाराज के निर्वाण रजत महोत्सव पर 'चैतन्य वचनामृत' का प्रकाशन अधिक पूर्ण कार्य माना जायेगा।

इसके प्रथम संस्करण प्रकाशन में पूर्ण रूप से आर्थिक योगदान 'चेतन सत्संग भवन' गोविन्दनगर कानपुर की संस्थापिका गुरुभक्ति परायणा श्रीमती रामचमेली का प्राप्त हुआ है। एतदर्थ उन्हें भूरिशः धन्यवाद !

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ब्रह्मलीन श्री शास्त्री जी महाराज का प्रचार क्षेत्र दिल्ली, कानपुर फगुवाड़ा, आरा, रोहतक, पानीपत, पठानकोट आदि अनेक नगर रहे। इन नगरों के भक्तजन महाराज जी के सम्पर्क में आये और सभी ने अपने-अपने ढंग से पूज्यश्री शास्त्री जी महाराज के प्रति समर्पण की भावना दिखलायी। फलतः ब्रह्मलीन श्री शास्त्री जी महाराज की पुण्य तिथि कैलास आश्रम ऋषिकेश, कैलास आश्रम रोहतक और चेतन सत्संग भवन कानपुर में अति उत्साह से मनायी जाती है। ऋषिकेशस्थ कैलास आश्रम में श्री शास्त्री जी महाराज का निर्वाण महोत्सव धूमधाम से मनाया जाता है उसमें सर्वाधिक सहयोग दिल्लीस्थ राजौरी गार्डन, मोती नगर, पहाड़गंज तथा पंजाबी बाग के भक्तों का रहता है तथा भविष्य में भी रहेगा, इसीलिए कैलास आश्रम की ओर से पूज्य श्री बड़े महाराज जी तथा श्री शास्त्री जी महाराज के पुण्य स्मरण में प्रकाशित होने वाले 'शाङ्कर भाष्य रत्नप्रभा टीका' ललिताख्या हिन्दी टीका तथा टिप्पणी सहित ब्रह्मसूत्र एवं शाङ्करभाष्य आनंद गिरि टीका ललिताख्या हिन्दी व्याख्या और टिप्पणी के सहित श्रीमद्भगवद् गीता जो प्रकाशित हो रही है जिनमें से कुछ का विमोचन विगत कैलास आश्रम रोहतक के वार्षिक महोत्सव पर हो चुका है और कुछ का विमोचन उसके अगले वार्षिक महोत्सव पर होना है। श्रीमद्भगवद् गीता का विमोचन दिनांक २६-६-६७ को ब्रह्म विद्यापीठ कैलास आश्रम ऋषिकेश में निर्वाण रजत महोत्सव की पूर्णाहुति पर तत् पश्चात् प्रस्तुत 'चैतन्य वचनामृत' पुस्तक का विमोचन चेतन सत्संग भवन कानपुर में श्री शास्त्री जी महाराज की पुण्यतिथि पर होगा।

ब्रह्मलीन श्री शास्त्री जी महाराज के पुण्य संस्मरण में उनके अनेक समर्पित भक्तों ने अपनी-अपनी भावनायें समर्पित की हैं। फलतः ऋषिकेशस्थ कैलास आश्रम में चैतन्य धाम का निर्माण उसके अन्तर्गत धर्मार्थ चिकित्सालय का निर्माण, दशनाम संन्यास आश्रम हरिद्वार में कुछ नवनिर्माण कार्य हुये। कानपुर में चेतन सत्संग भवन का निर्माण महाराजश्री का पुण्य स्मारक रहेगा। निर्माण क्षेत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य कैलास आश्रम, रोहतक की संस्थापिका ब्रह्मविदुषी माता श्री सुशीला देवी का माना जायेगा, जिन्होंने मेरे सहज प्रेरणा के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

फलस्वरूप रोहतक में ब्रह्मलीन श्री शास्त्री जी महाराज के ही पुण्य संस्मरण में भव्य एवं दिव्य कैलास आश्रम की संस्थापना करायी जो अपने आप में अनुपम है। उस आश्रम पर आश्रम के सभी भक्त समर्पित हैं।

पूज्य श्री शास्त्री जी महाराज का विस्तृत जीवनवृत्त कैलास आश्रम ऋषिकेश से प्रकाशित यतीन्द्र तिलक शताब्दी, कैलास स्मारिका तथा श्रद्धा सुमनांजलि में पाठकों के लिए उपलब्ध है। कैलास आश्रम रोहतक के संस्थापना प्रसंग पर जो वहाँ से साहित्य छपे हैं उनमें भी पूज्य महाराज के दिव्य जीवनवृत्त तथा उनके लोकोपकार कार्य का पुण्य संस्मरण मिलता है। पाठक उन पुस्तकों को अवश्य पढ़ें।

हमें चैतन्य वचनामृत के प्रकाशन से अत्यधिक प्रसन्नता है और साथ ही विश्वास भी है की इससे कल्याणकामी संतों एवं भक्तों को कल्याण मार्ग में चलने के लिए पर्याप्त संबल मिलेगा। इसी आशा एवं विश्वास के साथ हम अपने इस प्रासंगिक लघुकाय निबन्ध को उनके पावन चरणों में समर्पित करते हुये लेखनी को विराम देते हैं। इत्योमशम्।

भगवत्पादीय

आ०म०मं० स्वामी विद्यानन्द गिरि

रथयात्रा — दशनाम संन्यास आश्रम

वि. सं. २०५४, शाङ्कराब्द-१२१० — हरिद्वार (उ०प्र०)

ॐ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्री सद्गुरुवे नमः

सम्पादकीय

परम कृपालु परमात्मा एवं सद् गुरुदेव महाराज की अनुकम्पा से 'चैतन्य वचनामृत' छपकर तैयार है तथा आप महानुभावों के करकमलों में विराजमान है। किन्तु इसके प्रकाशन में जो विलम्ब हुआ है उसका एक सुदीर्घ इतिहास है। पूज्यपाद सद्गुरुदेव अनंतश्री विभूषित अष्टम् कैलास पीठाधीश्वर १००८ श्री स्वामी चैतन्यगिरिजी महाराज के प्रवचन टेपों में बन्द भारत के विविध नगरों (कानपुर, दिल्ली, फगवाड़ा आदि) में उनके भक्तों के यहाँ बिखरे पड़े थे जिसका संकलन पूज्य स्वामी शङ्करानन्द गिरि जी ने बड़े परिश्रम और उत्साह के साथ सन् १९७८ में किया था। उन टेपों को लिपिबद्ध कराकर पुस्तकाकार देने का शुभ संकल्प सर्वप्रथम उन्हीं के हृदय में आज से लगभग २० वर्ष पूर्व उदित हुआ। संचयन के पश्चात् लेखन की समस्या उनके समक्ष आयी। वे चाहते थे कि उन टेपों को सुनकर सही-सही लेखन वही कर सकता है जो व्यक्ति पूज्यपाद ब्रह्मलीन श्री शास्त्री जी महाराज की सन्निधि में कुछ दिन रह चुका हो तथा उनका प्रत्यक्ष दर्शन और श्रवण किया हो। इसी क्रम में उनका ध्यान मेरी ओर गया।

उन दिनों सुदूर पूर्वांचल भूटान की सीमा पर मैं केन्द्रीय विद्यालय हासिमारा में कार्यरत था। श्री स्वामी शंकरानन्द जी मेरे पास १९७८ के दिसम्बर माह में पहुंचे तथा अपना मन्तव्य प्रकट किये। उनका संकल्प श्रवण कर मेरा हृदय आह्लादित हो उठा कि इस ज्ञानयज्ञ में आहुति डालने का सुअवसर भगवान् ने मुझे प्रदान किया। स्वामी जी ने कहा कि "मैं आपसे कुछ माँगने आया हूँ, आप अपना आगामी ग्रीष्मावकाश मुझे दान कर दो। अवकाश में हमारे यहाँ आकर लेखन कार्य पूरा कर दो।" मैंने श्री स्वामी जी का प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया। स्वामी जी एक-दो सप्ताह मेरे पास रुककर परशुराम कुण्ड,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कामाख्या आदि तीर्थों की यात्रा पर चले गये। तीर्थयात्रा से लौटकर वे पुनः हासिमारा आये तथा कुछ दिन वहाँ और निवास किये। तिस्ता नदी एवं जलदा पाड़ा के अतिविस्तृत घने जंगलों के बीच अवस्थित हासिमारा उन्हें बहुत पसन्द आया। वे सारे दिन कमरे से बाहर चटाई या कम्बल पर बैठकर जाप किया करते थे अथवा एकान्त-साधना में तल्लीन रहते थे। स्वामी जी को वहाँ की शाक-भाजी बहुत पसन्द आयी। वस्तुतः पूर्वांचल की शाक में एक सुमधुर स्वाद है जिसका कारण अतिवर्षा तथा कृषि में कृत्रिम खाद का निषेध है। जब स्वामी जी विदा होकर आने लगे तो पुनः आग्रहपूर्वक बोले—"नारायण भूल मत जाना, ग्रीष्मावकाश में यह काम आपको करना है।"

मई-जून के महीनों में मेरा ग्रीष्मावकाश होता है। विद्यालय बन्द होते ही मैं खंभात पहुंच गया। सन् १९७९ में ही हासिमारा से बदलकर मैं हरिद्वार आ गया था। बड़ौदा से बस द्वारा रात्रि के १२ बजे मैं खंभात परमहंस आश्रम में पहुँचा। स्वामी जी अति प्रसन्न हुये। दूसरे दिन प्रातःकाल से मेरा लेखनकार्य प्रारम्भ हो गया। एक हाथ से टेप चलाना और दूसरे हाथ से लिखना, लगातार ४१ दिनों तक दस घन्टा लेखनकार्य नित्य चला। लिखते-लिखते मेरे हाथों में दर्द होने लगा, किन्तु मन में उत्साह इतना अधिक था कि जब तक लेखन कार्य पूरा नहीं हुआ, मैंने विश्राम नहीं किया। दिन में भोजन-विश्राम के लिए सिर्फ दो घन्टे थे। भिक्षा के लिए स्वामी जो के साथ दिन में लोगों के घरों में जाना पड़ता था। आश्रम में भोजन की व्यवस्था नहीं होने के कारण स्वामी जी दिन में 'मधुकरी' लिया करते थे। भिक्षा करने का जीवन में यह पहला ही अनुभव था। लोग बड़े प्रेम से पूजन करते, दक्षिणा देते और स्वादिष्ट सुमधुर भोजन कराते। गुजरात में भोजन करने का अपना एक अलौकिक ही आनंद है। रात्रि में भोजन आश्रम में ही आ जाता था। श्री स्वामी जी ने मेरी सुख-सुविधा का बहुत ध्यान रखा। खंभात में दिन को गर्मी भयंकर होती है किन्तु स्वामी जी के मधुर व्यवहार के कारण वहां के दिन सुखमय बीते। सुस्वाद भोजन करके मेरा वजन बढ़ गया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सर्वप्रथम जब मैंने टेप चलाया और पूज्य सद्गुरुदेव के मधुर कंठ की सुपरिचित आवाज मेरे श्रवणरन्ध्र में आयी तो मैं भावविह्वल हो उठा। आँखे छलक पड़ीं और मैं देर तक आँसुओं में डूबता उतराता रहा। श्री स्वामी शंकरानन्द जी मेरी मन की गति को समझ रहे थे— "घायल की गति घायल जाने, और न जाने कोय।" प्रत्यक्ष दर्शन और श्रवण के आठ वर्ष पश्चात् पूज्य गुरुदेव के मुखारविन्द से वचनामृत श्रबण का यह प्रथम सुखद संयोग था। महाराज़ जी की सुमधुर तपोनिष्ठ वाणी में जो अलौकिक आनन्द था उसका वर्णन भला कौन कर सकता है ? उस आनन्द की अनुभूति तो वे ही कर सकते हैं जिन्होंने उन्हें प्रत्यक्ष श्रवण किया है। बहुत देर तक मन को अविगत गति बनी रही। पूज्य महाराज के मुखारविन्द से "शिवोऽहम्, शिवोऽहम्, शिवोऽहम्, शिवोऽहम्" की मधुर मंगलमयी ध्वनि उच्चरित हो रही है तथा हम दोनों एक आनन्दमय स्थिति में मग्न हैं। पूज्य महाराज जी प्रवचन से पूर्व ११ बार 'शिवोऽहम्' का सस्वर उच्चारण करते थे। धीरे-धीरे मन को स्वस्थ बनाकर, गुरुदेव जी के दिव्य चरणों का ध्यान कर मैं लेखन में प्रवृत्त हो गया। महाराज जी की कृपा से ४१ दिनों तक अनवरत लेखनकार्य निर्विघ्न चलता रहा। शाम को प्रतिदिन समीपस्थ के सत्संग भवन में लोगों को राम कथा भी सुनायी, कथा में धीरे-धीरे अच्छी उपस्थिति होने लगी। खंभात में ४१ दिनों की सुखद स्मृति अब भी हृदय पटल पर ज्यों की त्यों बनी हुई है। अब तो विश्वसंत मुरारी बापू की कथा के व्याज से परमहंस आश्रम का नूतन संस्कार हो गया है।

यह एक आश्चर्य का ही विषय है कि सन् १९७९ में आलेखवद्ध किया हुआ प्रवचन सन् १९९७ में यानी १८ वर्ष पश्चात् मुद्रित हुआ। मुद्रण के इस लम्बे अन्तराल का प्रधान कारण छपवाने के लिए धन का अभाव था। न तो स्वामी शंकरानन्द जी के पास धन की व्यवस्था थी, न मेरे पास। अतः मुद्रण की प्रबल इच्छा होने पर भी मुद्रा के अभाव में प्रकाशन नहीं हो पाया। पूज्य शास्त्री जी महाराज की प्रिय शिष्या राजौरी गार्डन, दिल्ली वाली कृष्णा जी को जब ज्ञात हुआ कि महाराज जी के प्रवचनों को मैंने लिपिबद्ध किया है तो उन्होने मुझे बुलाकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पूछा कि छपवाने में कितना खर्च आयेगा। ऐसे प्रतिवर्ष पूज्य महाराज जी की निर्वाण तिथि पर कैलास आश्रम में कृष्णा जो पूछती रहीं तथा छपवाने का संकल्प भी करती रहीं, किन्तु सद्गुरुदेव जो को इस कार्य का श्रेय तो किसी ओर को देना था। दिल्ली निवासी (अब ॐ भवन हरिद्वार वासी) पूज्य शास्त्री जी महाराज के ब्रह्मज्ञानी शिष्य श्री चढ्ढा साहब जी ने भी प्रकाशन के लिए उत्साह दिखलाया, किन्तु उनसे पूर्व 'चेतन सत्संग-भवन' कानपुर की संस्थापिका बहन रामचमेली जी प्रकाशन पर सम्पूर्ण व्यय करने का संकल्प ले चुकी थीं।

आज से दो वर्ष पूर्व बहन रामचमेली जी ने मुझे बुलाकर पूछा कि महाराज जी के प्रवचनों को छपवाने में कितना खर्च आयेगा? मैंने जो अनुमानित राशि बतलायी उसे वहन करने के लिए वे सहर्ष तैयार हो गयीं। लगभग पूरी राशि गत वर्ष (सन् १९९६) उन्होंने पूज्यपाद कैलासपीठाधीश्वर आचार्य महामण्डलेश्वर श्री स्वामी विद्यानन्द गिरि जी महाराज के माध्यम से मुझे सौंप दी; किन्तु तब में प्रोन्नत होकर दिल्ली स्थित केन्द्रीय विद्यालय में चला गया था। पूज्य महामण्डलेश्वर जी महाराज ने कहा कि आप चाहो तो दिल्ली में भी छपवा सकते हो किन्तु दिल्ली में मुद्रण पर अधिक व्यय होगा। न तो पूज्य महामण्डलेश्वर जी महाराज और न मैं ही इस पक्ष में थे कि बहन रामचमेली पर प्रकाशन का अतिरिक्त व्यय हो। अतः एक वर्ष विलम्ब का कारण मैं स्वयं बना। प्रभु कृपा और गुरु कृपा से मैं पुनः स्थानान्तरित होकर हरिद्वार आ गया। यहाँ आने के दूसरे दिन ही मेरा एकमात्र पुत्र स्वर्गवासी हो गया जिसके कारण भी कार्य में बाधा आयी।

प्रकाशन में विलम्ब होने का तीसरा कारण मुझे यह प्रतीत होता है कि परमपूज्य ब्रह्मलीन श्री शास्त्री जी महाराज भी नहीं चाहते थे कि पुस्तक का प्रकाशन हो। क्योंकि वे अत्यन्त उदासीन वृत्ति से रहने वाले अन्तर्मुखी सन्त थे। उन्होंने इसी सहजवृत्ति के कारण कोई पुस्तक नहीं लिखी। एक बार आरा में महाराज जी से मैंने पूछा कि आप क्यों नहीं पुस्तक लिखते? महाराज जी बोले हमारे ऋषियों ने इतना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अधिक लिखा है कि उसे ही पढ़ने वाला कोई नहीं है फिर और लिखने से क्या फायदा ? किन्तु एक वर्ष पूर्व जब वर्तमान पीठाधीश्वर जी महाराज ने 'विभूतिद्वय' (परमपूज्य विद्यावाचस्पति अनन्तश्री विभूषित षष्ठ कैलास पीठाधीश्वर १००८ श्री स्वामी विष्णुदेवानन्द गिरि जी महाराज एवं अष्टम् कैलास पीठाधीश्वर अनन्त श्री विभूषित १००८ श्री स्वामी चैतन्य गिरि शास्त्री जी महाराज) के निर्वाण रजत महोत्सव अखिल भारतीय स्तर पर मनाने की घोषणा की तो 'चैतन्य वचनामृत' के प्रकाशन का सहज-सुयोग बन गया। देर आये दुरुस्त आये। परम पूज्य गुरुदेव जी के रजत महोत्सव के समापन पर इस ग्रन्थ का विमोचन क्रमशः कैलास आश्रम ऋषिकेश एवं चेतन सत्संग भवन कानपुर में होगा, यह दुर्लभ संयोग इस ग्रन्थ के प्रकाशन पर स्वयं जुड़ गया।

'चैतन्य वचनामृत' के प्रकाशन का सारा श्रेय बहन रामचमेली जी को जाता है। उन्होंने सहज भाव से प्रकाशन का सारा व्यय वहन किया। अगर वे इस ज्ञान-यज्ञ में आहुति नहीं डालतीं तो अर्थाभाव में ग्रन्थ का प्रकाशन अभी भी सम्भव नहीं हो पाता। बहन राम जी अत्यन्त संकोची स्वभाव की हैं, उन्हें आत्म-विज्ञापन पसन्द नहीं है। १८-७-९७ को पुस्तक में प्रकाशन हेतु पूज्य महाराज जी का चित्र उन्होंने भेजा है, साथ में एक छोटा-सा पत्र भी है जिसमें उन्होंने आग्रह किया है कि पुस्तक में उनका नाम कहीं भी नहीं छापा जाय। उनके पत्र का अंश यहां उद्धत है—

"आदरणीय श्री भैया जगेश नारायण जी,
सप्रेम जय श्री राम जी की,

.....और एक बात, मेरा नाम भी कहीं लिखने की आवश्यकता नहीं। कार्य प्रभु की तथा श्री गुरुदेव की कृपा से हो रहा है। इसलिए भूमिका में ज्यादा मेरे विषय में नहीं लिखना, इससे मुझे लज्जा से झुकना पड़ेगा, सबके बीच शर्म आयेगी।"

"दूसरी बात विमोचन की, जहां श्री मण्डलेश्वर जी महाराज की इच्छा हो कर लें, इससे मेरा क्या मतलब ? बात तो छपवाने की थी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वह आपके पुरुषार्थ से छप गयी, पढ़ने को मिल जाए, विमोचन कहीं भी हो।"

बहन राम जी की इस निस्पृह भावना को मैं प्रणाम करता हूं, जो इतना बड़ा काम करके भी कहीं अपना नाम नहीं चाहती हैं। उनका मैं हृदय से आभारी हूं जिनके अकूत सहयोग के कारण पुस्तक छपकर तैयार हो गयी। जब कभी भी उनसे मुलाकात हुई अथवा उनका पत्र आया तो उन्होंने स्पष्ट कहा—"कुछ संकोच मत करना, जितना खर्च हो सब लिखना।" उनकी उदारता और साधुता की जितनी भी प्रशंसा की जाये कम होगी।

प्रकाशन में विलम्ब के कारण कुछ लोगों के मन में भ्रम भी उत्पन्न हुआ। उन्हें ऐसा लगा कि मैं नहीं चाहता की पुस्तक छप जाये। प्रकाशन में विलम्ब के कारण दो चिरपरिचित संत मुझसे नाराज भी हुये। इस आशय के पत्र मेरे पास फगुवाड़ा तथा हिमाचल से आये। अब पुस्तक पढ़कर उनके मन का समाधान स्वयं हो जायेगा।

विलम्ब का एकमात्र कारण अगर प्रभु इच्छा या पूज्यपाद ब्रह्मलीन शास्त्री जी महाराज की इच्छा मान ली जाय तो अधिक समीचीन होगा। फकीर बुल्लेशाह की वे पंक्तियाँ मुझे याद आ रही हैं—"न वक्त से पहले मिलेगा, न तकदीर से ज्यादा मिलेगा।" फकीर की इस उक्ति के अनुसार जब छपना था स्वयं छप गया और सारी व्यवस्था भी स्वयं होती गयी।

परम पूज्य कैलास पीठाधीश्वर जी महाराज का मैं हृदय से आभारी हूं। उन्होंने प्रकाशन के प्रत्येक पहलू पर मेरा मार्गदर्शन किया तथा समस्याओं का समाधान भी दिया। जब पुस्तक छपकर तैयार हो गयी तो नामकरण की समस्या सामने आयी। मेरे मानस पटल पर कई नाम उभरे, जैसे—चैतन्य सुधा सार, चैतन्य चिन्तन, सागर संतरण, चैतन्य सुधामृत आदि-आदि। किन्तु इन कल्पित नामों पर मन जम नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पाया। अन्त में महाराज के समक्ष अपनी समस्या रखी। महाराज जी थोड़ी देर तक चिन्तन की मुद्रा में लीन हो गये। पुनः सहसा बोले— 'चैतन्य वचनामृत' नाम रख दिया जाय तो कैसा रहे? सुनकर मैं गद्‌गद् हो गया जिस सुन्दर नाम की तलाश मुझे थी वह नाम महाराज की कृपा से मिल गया। पूज्य महाराज जी ने पुस्तक का उपयुक्त नामकरण करके मेरा बोझ हल्का कर दिया।

मेरी प्रार्थना पर पूज्य महामण्डलेश्वर जी महाराज ने अपनी सारगर्भित एवं विद्वतापूर्ण सम्मति भी लिखकर दे दी जो इसी पुस्तक में 'प्रासङ्गिकम्' के नाम से संकलित है। इसके अतिरिक्त प्रकाशन सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण सुझाव देकर महाराज जी ने मेरा मार्ग प्रशस्त किया। उनकी इस उदारता एवं मार्गदर्शन के लिए मैं हार्दिक आभार व्यक्त करता हूं तथा उनके चरण-कमलों में कोटिशः पदवंदन समर्पित करता हूं।

पुस्तक में आये श्लोकों एवं मंत्रों के संशोधन एवं संदर्भ निर्देशन में पूज्यपाद श्रीमद् स्वामी परमेश्वरानंद जी महाराज का सहयोग मुझे सहजभाव से उपलब्ध हुआ। उनके सहयोग के प्रति मैं श्रद्धावनत हूं।

प्रेस कापी तैयार करने में श्रीमती रजनी अग्रवाल का सहयोग अति प्रशंसनीय रहा है। पूरी पाण्डुलिपि का पुर्नलेखन सुन्दर अक्षरों में उन्होंने अत्यन्त मनोयोग से किया। गृहकार्य से विरत होकर लगातार लेखन करना उनके ही वश की बात थी। मेरी अनुपस्थिति में भी उन्होंने पूरी निष्ठा के साथ अपने दायित्व का निर्वाह किया। उनके निर्व्याज सहयोग की मैं जितनी भी प्रशंसा करूं वह कम होगी। भगवान उन्हें सुख-शान्ति प्रदान करें मेरी यही मंगलकामना है।

चैतन्य वचनामृत में हो सकता है कि पाठकों को क्रमबद्धता का अभाव अनुभव हो। इसका कारण यह है कि पूज्य महाराज जी के टेप कई स्थानों से एकत्र किये गये थे। किन्तु मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूं कि प्रत्येक शीर्षक (प्रवचन) अपने आप में पूर्ण है और उसे पढ़कर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्रमभङ्गता का भान नहीं होता। प्रारम्भ के कुछ प्रवचन पूज्यपाद प्रातः-स्मरणीय आद्य शङ्कराचार्य द्वारा विरचित 'मोह मुद्गर' पर आधारित हैं। शेष के आधार उपनिषद हैं। पूज्य महाराज जी के प्रवचनों में मूल रूप से आत्म तत्त्व की अभिव्यक्ति ही सर्वत्र हुई है। पुस्तक के स्वाध्यायकाल में निश्चित रूप से पाठकों को ब्रह्मानंद की अनुभूति होगी। ज्ञान वैराग्य को पुष्ट करने और संसार की असारता का बोध कराने में 'चैतन्य वचनामृत' अत्यन्त सहायक सिद्ध होगी।

जैना प्रिंटर्स के प्रबन्धक श्री देवेन्द्र जैन के सहयोग की मैं जितनी भी प्रशंसा करूं वह कम होगा। बड़े मनोयोगपूर्वक उन्होंने पुस्तक के मुद्रण, प्रूफ संशोधन एवं प्रकाशन के प्रत्येक पहलू पर खुले दिल से सहयोग दिया है। श्री जैन बधाई के पात्र हैं उनके प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूं। अपने विद्यालय के साथी श्री गिरीश कुमार त्यागी एवं श्री वी.पी. शर्मा का भी मैं ऋणी हूं जिन्होंने प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से पुस्तक के प्रकाशन में मुझे सहयोग दिया है। अंत में उन सभी लोगों के प्रति मैं नतमस्तक हूं जिनका सहयोग मुझे किसी न किसी रूप में मिला है।

बहुत सावधानी बरतने पर भी मुद्रण सम्बन्धी दोष कहीं न कहीं अवश्य मिलेंगे। विज्ञ पाठकों से विनम्र प्रार्थना है कि उसे सुधार लें—

सो सुधारि हरिजन जिमि लेहीं।
दलि दुःख दोष विमल जस देहीं॥

आवरण पृष्ठ निर्माण में कैलास आश्रम के पुराने भक्त एवं कई ग्रंथों के सम्पादक श्रीमान स्वर्णलाल तुली एवं कैलास के समर्पित सेवाभावी भक्त दिल्ली निवासी श्रीमान गोवर्द्धन लाल चानना के प्रति भी मैं आभारी हूं। उनके सुझाव और सहयोग से पुस्तक का कलेवर आकर्षक बन गया।

गुरु पूर्णिमा
दिनांक—२०-७-१९९७

गुरु की शरण में
जगेश नारायण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शिवोऽहं, शिवोऽहं, शिवोऽहं, शिवोऽहं--

(११ आवृत्तियाँ)

भज गोविन्दं, भज गोविन्दं, गोविन्दं भज मूढ़मते—

भज गोविन्दं भज गोविन्दं, गोविन्दं भज मूढ़मते।
प्राप्ते सन्निहितेमरणे, नहि नहि रक्षति डुकृञ् करणे॥

(ध्रुवपदम्)

यहाँ गोविन्द को ही अनुभवात्मक ज्ञान कहा गया। यह तो एक आज्ञा है, उपदेश है कि हे जीव तू गोविन्द को ही भज। भज–आज्ञा-वाचक है। यानि तुम गोविन्द का ही भजन करो। पर किसी ने पूछा कि गोविन्द का भजन कैसे करें, तो कहा कि—

शिवोऽहं, शिवोऽहं, शिवोऽहं शिवोऽहं.....

यही उस गोविन्द का भजन है। उसका अनुभवात्मक ज्ञान है। असली ज्ञान यही है– शिवोऽहं ..... जो हम आज तक समझते आए हैं वह अशिव रूप है। उसी को अपना समझ रहे हैं। जो हम हैं नहीं उसो को अपना रूप समझ रहे हैं।

शिव और अशिव दो तत्व हैं। शिवनाम है मंगल मूर्त्ति का। मंगलमय आनन्द सुख ही शिव है। तो जो सुख है वह सुखरूप मैं हूं। इस प्रकार का अनुभव करना, यही गोविन्द का भजन है। अशिव माने शिव से विरुद्ध अर्थात् दुःखरूप। दुःखरूप विनाशी जो शरीर आदि हैं–उन्हीं को हम अपना स्वरूप समझते रहे हैं। इससे वह हटा रहा है। तुम अशिव, अमंगलमूर्त्ति नहीं। किन्तु शिवरूप, मंगल मूर्त्ति, आनन्दस्वरूप हो, सुखरूप हो। ऐसा अपने आप को अनुभव करो। जब यह अनुभव हो जाएगा, अपरोक्ष अनुभव—तो तुम्हारा जन्म-मरण का चक्कर छूट जायेगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो दो प्रकार का अनुभव होता है—एक भ्रम रूप और दूसरा प्रमा रूप। यथार्थ अनुभव और अयथार्थ अनुभव। यथार्थ अनुभव को प्रमा बोलते हैं और अयथार्थ अनुभव को भ्रम बोलते हैं। जो वस्तु जैसी है उसका उसी रूप में अनुभव होना—यह तो यथार्थ अनुभव है, इसी को प्रमा बोलते हैं। और जो वस्तु जैसी है उसका वैसा अनुभव नहीं करके दूसरे रूप में अनुभव करना यह अयथार्थ अनुभव है—इसका नाम विपर्य ज्ञान है। इसी को भ्रम बोलते हैं। जैसे रस्सी को रस्सी समझना तो यथार्थ अनुभव है—यह प्रमा है। किन्तु रस्सी को सर्प समझना अयथार्थ ज्ञान है, विपर्य है। यही भ्रम है। दो प्रकार की भ्रांति होती हैं—एक तो असत्य, विनाशी, दुःखरूप जो संसार है—इसको सुखरूप और सत्य समझना। दूसरा विपर्य यह है कि अपना आप जो सुखरूप, अविनाशी और सत्य वस्तु आत्मा है—उसको हम शरीर और मन बुद्धि मान बैठे हैं। दोनों प्रकार के विपर्य दुःख दे रहे हैं। इसी का नाम अविद्या भी है। पञ्चदशीकार ने अविद्या का रूप लिखा है—

संसारःपरमार्थोऽयं संलग्नः स्वात्मवस्तूनि।
इति भ्रांतिरविद्यास्याद्विद्ययैषा निवर्तते॥

पंचदशी ६—१०

यह संसार जो हमको दीख रहा है—यह सच्चा है। अर्थात् जैसा हमको दीख रहा है वैसा ही ठीक है। यह हमारे आत्मस्वरूप में सचमुच ठीक विद्यमान है। हम सचमुच संसारी हैं। इस प्रकार का जो उल्टा निश्चय है—इसी का नाम अविद्या है। और इसके निवृत्ति का उपाय ही विद्या है। अज्ञान की निवृत्ति ज्ञान से होती है। जैसे अन्धकार की निवृत्ति प्रकाश से होती है। विद्या क्या है?

आत्माभासस्य जीवस्य संसारो नात्मवस्तुनः।
इति बोधो भवेद् विद्या लभ्यतेऽसौ विचारणात्॥

पंचदशी—६—११

आत्माभास, चिदाभास—अन्तःकरण में जो चेतन का प्रतिबिम्ब पड़ता रहता है—उसी का नाम है। आत्माभास या इसे नकली आत्मा जैसा समझो। जैसे घी दो तरह का है—नकली और असली। उसी प्रकार आत्मा भी दो प्रकार का है—एक नकली और एक असली। असली आत्मा ब्रह्म है नकली आत्मा जीव है। नकली क्यों है? कि यह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आत्माभास है। आभास का अर्थ है मालूम पड़ना यानि आत्मा है नहीं, आत्मा जैसा मालूम पड़ रहा है। जैसे मुखाभास और सूर्याभास कहते हैं। जैसे दर्पण में जो मुख दीख रहा है वह मुख नहीं है बल्कि मुखाभास है। अर्थात् मुख जैसा प्रतीत हो रहा है। इसी प्रकार जल में जो सूर्य का प्रतिबिम्ब चमकता है वह सूर्याभास है। सूर्य जल में है नहीं किन्तु उसकी प्रतीति हो रही है। वास्तविक सूर्य तो आकाश में है। इतना बड़ा सूर्य थालो के जल में कैसे आ सकता है। क्योंकि सूर्य तो पृथ्वी से भो बड़ा है। सूर्य का जो प्रतिबिम्ब जल में आया है वह सूर्याभास है, नकली सूर्य है और सिर्फ कहने के लिए सूर्य है। वास्तविक सूर्य तो आकाश में है। इसी प्रकार दर्पण में मुख कैसे आएगा उसमें तो रहने को कोई जगह नहीं है। वह तो इतना ठोस है कि उसमें सुई की नोक भी नहीं आ सकती। फिर भी उसमें मुख दीख रहा है।

ऐसा ही आत्माभास भी है। बुद्धिरूपी दर्पण में जो चेतन का प्रतिबिम्ब चमक रहा है वह असल में आत्मा नहीं है बल्कि आत्मा जैसा लग रहा है। उसी का नाम जीव है। आत्माभास जीव जो है, उसी में यह संसार है। जन्म-मरण, सुख-दुःख, शोक आदि उसो में होते हैं। आत्मवस्तु में तो उसका नाम भो नहीं—'इति बोधो भवेद् विद्या' इस निश्चय का नाम विद्या है, वही ज्ञान है।

लभ्यतेऽसौ विचारणात्—यह विचार से मालूम पड़ता है। इस विद्या की प्राप्ति का साधन है। इसीलिए जब हम निरन्तर अपने स्वरूप का विचार करेंगे तो आत्मस्वरूप का निर्णय हो जाएगा। अनादिकाल से हमको एक भ्रम बैठा है कि जो कुछ हमको दीख रहा है, प्रतीत हो रहा है, वह सब सत्य है। इस भ्रम ने हमको बहुत फंसाया है। लोग संसार को इसी भरोसे पर सत्य मान रहे हैं कि जगत् सत्य है क्योंकि यह हमको दिखाई दे रहा है। इससे हमारे कुछ प्रयोजन भी सिद्ध हो रहे हैं। इसीलिए सत्य लग रहा है। यदि इसी नियम और विश्वास को ठीक मान लें कि जो वस्तु हमको जैसी प्रतीत हो रही है वह वैसो ही ठीक है तो बहुत गड़बड़ी हो जाएगी। देखो सूर्यमण्डल छोटा-सा दीख रहा है। सबका अनुभव तो यही कहता है कि वह फुटबाल जैसा आग का गोला है। किन्तु विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि सूर्य पृथ्वी से लाखों गुणा बड़ा है। इतना विशाल सूर्य एक छोटा-सा आग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का गोला जैसा प्रतीत हो रहा है। इसलिए यह मानना पड़ेगा कि जो जैसा प्रतीत हो रहा है वस्तुतः वह वैसा है नहीं। अतः हमारे सारे अनुभव ठीक नहीं हुआ करते। इसमें दूसरा दोष यह आता है कि यदि हमारे अनुभव गलत सिद्ध हो जाये तो व्यवहार ही गलत सिद्ध हो जायेगा। हमारा जो भी व्यवहार हो रहा है वह ज्ञान पर निर्भर है। इसीलिए नैयायिकों ने बुद्धि का लक्षण किया है—सर्व व्यवहार हेतु ज्ञानं बुद्धि।

प्रातःकाल से सोने तक जो कुछ भी व्यवहार होता है वह सब ज्ञानमूलक है। हमको जो जैसा दीखता है उसको हम वैसा ही समझ जाते हैं। यदि यह कहें कि जैसा पदार्थ दीखता है वैसा नहीं होता है तो हमारा सब व्यवहार रुक जायेगा। हमको दीख रहा है पानी और पानी वह है नहीं तो हम उधर क्यों जायेंगे पानी पीने। चूल्हे में आग जल रही है हमने देखा कि अग्नि है। हम अग्नि लेने जाते हैं तो अग्नि मिल जाती है तो फिर कैसे मान लें कि हमारे जितने ज्ञान हैं सब अयथार्थ है। इसीलिए कहा कि हम यह नहीं कहते हैं कि हमारे सारे ज्ञान अयथार्थ होते हैं। हमने तो यह कहा कि ज्ञान यथार्थ भी होते हैं और अयथार्थ भी। अगर हम यह कहें कि सारे ज्ञान यथार्थ होते हैं तो यह गलत है। इसी प्रकार यह भी गलत है कि सारे ज्ञान अयथार्थ हैं। दोनों ज्ञान यथार्थ नहीं। अतः हर जगह अश्रद्धा कर लेना भी बुरा है और हर जगह श्रद्धा कर लेना भी बुरा है क्योंकि हर जगह श्रद्धा करके आदमी ठग विद्या में फंस जाता है और हर जगह से अश्रद्धा कर लेने पर भी मनुष्य लाभ से वंचित हो जाता है। इसीलिए सोच समझकर श्रद्धा-अश्रद्धा करनी चाहिए। हर एक ज्ञान यथार्थ भी नहीं होता, अयथार्थ भी नहीं होता। बल्कि ज्ञान यथार्थ, अयथार्थ दोनों प्रकार का होता है। तो यह जो विश्वास बैठा है कि जितने ज्ञान हैं वो यथार्थ हैं, इसी कारण हमने संसार को सुखरूप और सत्य मान लिया है। क्योंकि हमको दीख जो रहा है। हमको इसकी प्रतीति हो रही है। इससे हमारा प्रयोजन सिद्ध हो रहा है तो हमारा वेदान्त कहता है कि मात्र इतने से नहीं कह सकते कि यह सत्य और यथार्थ है। इसीलिए महाभारतकार ने लिखा—

प्रत्यक्षावगते चार्थे युक्तमर्थम् परिक्षुतम्।

यदि कोई वस्तु हमको साक्षात् अनुभव में आ रही हो तो भी उसको परीक्षा करनी चाहिए। अगर परीक्षा से सत्य सिद्ध हो जाए तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मानो। बिना परीक्षा किए ऐसे ही सत्य मान बैठो तो धोखा खा जाओगे। क्योंकि—

तलवत् दृश्य ते व्योम, खद्योतोऽग्निकणोभवेत्।

देखो आकाश जो है उल्टी कढ़ाई की तरह दीख रहा है। जैसे कोई लोहे की कढ़ाई माँज धोकर हमारे ऊपर उल्टी रख दी गई हो किन्तु आकाश तलवत् नहीं है। जो जुगुनू हैं वह मशाल की तरह प्रतीत होते हैं। एक बच्चे को मच्छरों ने बहुत तंग किया। उसने कहा कि मैं अंधेरे में छिप जाता हूं जिससे मच्छर देख न सकें। इतने में आ गया एक जुगुनू। तो वह चिल्लाया माँ-माँ यह तो बैटरी लेकर आ गया। तो वह समझता है कि मच्छर बैटरी लेकर आ गया। कोई जुगुनू को दीपक समझता है, कोई अग्नि। अगर परोक्ष ज्ञान नहीं करें तो फिर जुगुनू में अग्नि माननी पड़ेगी। आकाश को तलवत् मानना पड़ेगा। परन्तु जब परीक्षा की जाती है तो न जुगुनू से अग्नि निकलती है और न आकाश कटाहाकार है। इसीलिए उन्होंने कहा कि हरेक बात पर विश्वास भी नहीं कर लेना चाहिए और हरेक बात पर अविश्वास भी नहीं करना चाहिए। तो जितने ज्ञान हैं सब मिथ्या हैं यह भी नहीं कहना, और जितने ज्ञान हैं सब सत्य हैं यह भी नहीं कहना। परीक्षा करके सत्य-असत्य का ज्ञान करना चाहिए। नहीं तो धोखा हो जायेगा।

अमृतसर की एक घटना है। अमृतसर में एक बड़ा ही धनी परिवार था। उसका दिवाला निकल गया। अब खाना खर्च भी नहीं चले। कुछ दिन तो उधार लेकर काम चला, पर रोज उधार कौन दे? उन्होंने कहा कोई युक्ति निकालो। किसी को ठगो। तो किसको ठगें। किसी अच्छे धनी को एक बार ठगने पर सारा जीवन निकल जाएगा। सौ, दो सौ, हजार ठग लिया तो उससे क्या होगा तो उन्होंने निश्चय किया किसी राजा को ठगो। तो उन्होंने सोच-विचार कर निश्चय किया कि बड़ौदा का राजा बड़ा धनी है। उन दिनों एक तो हैदराबाद का राजा धनी था। दूसरे दर्जे पर बड़ौदा का राजा था। तो इसी को ठगो। तो उन्होंने युक्ति लगाई। पहले कोई एक आदमी दस बारह रुपये लेकर बड़ौदा शहर चला गया और वहां एक किराये पर मकान लेकर सदाव्रत लगा दिया। बोर्ड लगा दिया कि कोई भूखा हो तो आकर भोजन करे। चौबीस घंटे भोजन तैयार मिलेगा। नौकर रख

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लिया। सदाव्रत चालू हो गया। लोग आने लगे। जो रोटी खाए, रोटी मिले। सीधा मांगे, सीधा मिले। जो जैसा खाना चाहे उसको वैसा प्रबन्ध। दस दिन में सारे नगर में ऐसा यश फैल गया कि ऐसा एक धर्मात्मा आया है कि उसका चौबीस घंटे लंगर चल रहा है। खूब चर्चा होने लगी। यहां तक कि उसकी चर्चा महाराजा तक पहुंची। महाराजा ने उसको बुलाया आप कहां रहते हो? क्या काम करते हो? उसने बतलाया कि मैं थाईलैंड में काम करता हूं। रबर का बड़ा कारखाना है। बच्चों ने काम सम्भाल रखा है तो हमने सोचा कि चलो अपने देश में रहेंगे। तो आपकी रियासत हमको पसन्द आई। आप धर्मात्मा आदमी हैं। अंग्रेजों के राज्य में रहने का हमारा चित्त नहीं करता। इसीलिए मैं बड़ौदा आया। राजा भी प्रसन्न हुआ कि हमारे नगर में एक ऐसा आदमी आया। धीरे-धीरे वह बड़े-बड़े आदमियों का पता लेकर रजिस्टर बनाता रहा कि फलाना आदमी है, इसका बाबा यह काम करता था, इसका चाचा यह करता था, इसके इतने लड़के हैं, यह काम करते हैं। ऐसे शहर के जितने मोटे-मोटे आदमी थे उन सबका जीवन चरित्र लिखकर एक रजिस्टर तैयार कर लिया। जब महीने दो महीने बीत गए। इतने में एक ज्योतिषि आया। यह उसी ठग का भाई ज्योतिषि बनकर आया। उसने भी एक कमरा किराये पर लिया और बोर्ड लगाया कि त्रिकालदर्शी ज्योतिषि हैं। भूत, भविष्य, वर्तमान हमारे करतलगत हैं। अगर पूछे इस समय विष्णु क्या कर रहा है, तो वो बता सकते हैं। अब वो करे क्या कि रात को रजिस्टर का मनन कर ले और प्रातःकाल आसन पर बैठ जाये और पूछने वालों को अगली पिछली बातें बताता रहे। लोगों को विश्वास हो गया कि कमाल हो गया ऐसा ज्योतिषि तो दुनियां में है ही नहीं। खैर, वो काम भी चलता रहा। इसकी खबर भी राजा के कानों में पड़ी। उन्होंने कहा कि जरा हम भी अपनी रानी की कुण्डली और बच्चों की कुण्डली दिखायेंगे। लोगों ने कहा कि वो जो सदाव्रत वाले सेठ जी हैं उनकी ज्योतिषि जी से खूब दोस्ती है। वो वहाँ जाते हैं तो वो वहाँ आते हैं। दोनों साथ-साथ घूमने भी जाते हैं। उनसे कहा जाये वो सब ठीक करवायेंगे। महाराजा ने सेठ जी से बात की कि हम जरा ज्योतिषि जी से मिलना चाहते हैं। उसने कहा वो तो अपने घर का आदमी है। आप जिस दिन कहो उनको यहीं बुला लेंगे। अच्छा कल बुला लो। उनको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बुलाया गया। सारा इंतजाम हो गया। राजा ने अपनी कुण्डलियाँ खोलकर रख दीं। तो राजा की, राजकुमार की, रानी की बातें वो बताता रहा। सुना कर के उसने हाथ से कुण्डली छोड़ दी और चुप होकर बैठ गया। सेठ ने पूछा क्यों क्या बात है? चुप क्यों हो गए? बस, कुछ कहा नहीं जाता। फिर भी कुछ तो कहो। क्या कहूं? महाराज की आयु केवल छः महीने बाकी है। बस, अब क्या कहूं? सबके रोंगटे खड़े हो गए। अब ऐसे ज्योतिषि की बातें झूठी तो नहीं हो सकती। सबको विश्वास हो गया। सब उदास होकर, व्याकुल होकर बैठ गए। तो सेठ जी कहने लगे कि जब शास्त्र ने यह बतलाया कि छः महीने की आयु है तो इसको बढ़ाने का कोई उपाय भी तो होगा। तो उपाय बतलाओ। लेकिन बड़ा खर्चीला उपाय है। वो हो नहीं सकता। हो क्यों नहीं सकता? हम खर्चा देंगे। महाराज की आयु बढ़नी चाहिए। १० लाख लगे चाहे २० लाख लगे। हम अपना एक कारखाना बेच देंगे। पर तुम बतलाओ, इसका उपाय क्या है? उपाय यह है कि नवों ग्रह बिगड़े हुए हैं। (हंसी) फिर भी कम से कम इसमें नौ, दस लाख का खर्च है। ग्रहों के रत्न होते हैं न! हरेक ग्रह के दोषों को दूर करने का अलग-अलग रत्न होता है। तो कहा कि कम से कम एक-एक लाख का एक रत्न है और नौ ग्रहों का नौ रत्न लेकर उनको सोने की जंजीर में पिरोकर हार बनाया जाए और नवों ग्रहों का पूजन करके किसी विरक्त और ज्ञानी को दान कर दिया जाए तो महाराज का सारा संकट कट जाए और छः महीने के बजाय महाराज की आयु ९० वर्ष और बढ़ जाएगी। इतने में तीसरा ठग आ गया महाराज के बगीचे में और विरक्त होकर बैठ गया। उसने क्या ढोंग रचा कि दीवार की तरफ मुँह कर लिया और इधर आदमी की तरफ देखे ही नहीं। लोग बड़े परेशान कि कैसे इसके दर्शन हों। कोई कुछ चढ़ाए तब भी कुछ न बोले। कोई नमस्कार करे तब भी नहीं। कोई फूल चढ़ाता, कोई फल चढ़ाता। वह देखता भी नहीं उधर। वो पूछने लगे कि ऐसा त्यागी कहाँ से लाएँ दुनियां में। कहने लगे कि यह तो हम नहीं जानते। परन्तु इसके सिवाय कोई उपाय नहीं है। तो सेठ जी कहे कि महाराजा की किस्मत अच्छी है। एक त्यागी महात्मा महाराज के बगीचे में आए हैं। हम आज जायेंगे दर्शन करने। देखेंगे कि कैसे हैं? अगर अधिकारी है तो उसी को दे देंगे। राजा ने हुक्म दिया। नहीं सेठ जी आप क्यों देंगे? खजाने में बहुत रत्न और द्रव्य पड़े हैं। आपका इतना ही स्नेह कम नहीं कि ज्योतिषि जी को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हमारे घर लाए। खर्च की कोई परवाह नहीं। उन्होंने कोषाध्यक्ष को आज्ञा दी कि जो बड़े-बड़े रत्न हैं उनको बाहर निकालो। जो लाख-लाख सवा लाख रुपये के थे। वो नवों ग्रहों के नव रत्न तैयार किए। सोने में मढ़ डालो। नव रत्न हो गए। एक उनका सुमेरु हो गया। इस प्रकार हार तैयार हो गया। राज पुरोहित आकर उनका पूजन पाजन करके ठीक कर गए। उधर सेठ जी आए, उन्होंने कहा कि महात्मा तो बिल्कुल सोलह आने सही है। जैसा लोग कहते हैं उससे भी अधिक। लेकिन ऐसा त्यागी हार लेगा कैसे ? उनको हार देना बड़ा मुश्किल काम है। तो ज्योतिषी कहने लगा कि आप किसी तरह उनके गले में डाल दें और डालकर अपनी कार में बठाकर अपने राज्य की सीमा से बाहर कर दो। (जोरों की हंसी) अब उसकी जो मर्जी करे। अपनी तरफ से तो दान हो गया न। राजा ने कहा ठीक है। राजा, ज्योतिषि सेठ जी और ड्राइवर सभी चले। हार ले लिया। पहुंच गए वहां। तो वह तो दीवार की तरफ मुँह करके बैठा है। इधर तो है उसकी पीठ अब डालें तो कैसे ? तो सेठ जी ने साधु के कान में जोर से कहा कि महाराजा आपके दर्शन को आए हैं। इधर मुँह तो फेरो। किन्तु वह चुप बैठा रहा। सेठ जी फिर बोले कि महाराज भी एक देवता होता है। अष्ट दिग्पालों को देवता माना गया है। राजा भी देवता है। खासकर धर्मात्मा राजा तो ईश्वर का अंश माना गया है। और महाराजा बड़ौदा तो बड़ धर्मात्मा हैं उनका तो दर्शन करना चाहिए और तुम उनको दर्शन भी नहीं दे रहे हो। इतनी दूर से चल कर आए हैं। लेकिन वह फिर भी चुप रहा। सेठ जी ने राजा से कहा कि मैं पकड़कर इसका मुँह घुमा देता हूं और आप चटपट गले में हार डाल देना, बस। चाहे यह कुछ भी करता रहे। महाराजा हार लेकर तैयार हो गए और उसने पकड़कर गर्दन घुमा दी। राजा ने हार डाल दिया। सेठ और ज्योतिषि दोनों ने हाथ पकड़ लिए और उठाकर कार में बैठा दिया ड्राइवर को कहा कि इनको अपनी रियासत की सीमा के बाहर छोड़कर चुपके आ जाओ। तो महाराज, सेठ जी, ज्योतिषि जी, तीनों वापस आ गए। ड्राइवर, एक चपरासी और महात्मा जी उधर चले गए। अब उसने कार बड़ी तेजी से भगाई कि किसी तरह जल्द से जल्द रियासत से बाहर हो जाए। ऐसा न हो कि रियासत में ही हार उतार कर फेंक दें। तो भला क्यों उतारेगा। वह तो कार को भी साथ में ले जाने को तैयार है। जब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रियासत की सीमा समाप्त हो गई तो उसने उनको उतार कर कार लेकर वापिस आ गए और उधर वह माल लेकर अमृतसर पहुंच गया। ये आए इधर। बड़े खुश हुए कि चलो महाराज का संकट तो मिट गया। नौ, दस लाख क्या चीज है? और रत्न आ जायेंगे।

अब रात को क्या हुआ कि सेठ जी भी चल दिए और ज्योतिषी जी भी भाग चले। दोनों के कमरे के ताले खुले पड़े हैं। अब खाने वाले आए और जन्म कुण्डली दिखाने वाले आए। तो देखते हैं कि सब खुला पड़ा है। वहां न तो रसोइया है, न सेठ जी, न ज्योतिषी जी। अब सारे शहर में बात फैल गई। महाराज के कान में भी बात पड़ी। उन्होंने समझ लिया कि ठगे गए हम। तो ठग लोग ऐसे-ऐसे बुद्धिमानों को भी ठग कर अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं।

तो इस संसार में सच्चे भी हैं, ठग भी। इसीलिए न तो सभी को सच्चा समझना, न तो सभी को ठग। इसीलिए वेदान्तियों ने निश्चय किया और महाभारत में कहा गया—

प्रत्यक्षावगते अर्थे .....

जो वस्तु प्रत्यक्ष अनुभव में आ रही है तो उसको भी सत्य मत मान लो। उसकी भी परीक्षा कर लो। जैसे तुमको मरुस्थल में जल दिखाई पड़ रहा है। किन्तु यह सत्य भी हो सकता है, झूठ भी हो सकता है। जब हम परीक्षा करेंगे तो पता चलेगा कि मृगतृष्णा में जल नहीं है। तो गलत हो गया न जल का दीखना। अगर परीक्षा हम करेंगे तो भविष्य में धोखा नहीं होगा। तो यह जो संसार है वह अनुभव में भी आ रहा है और प्रयोजन में भी सिद्ध हो रहा है। यह तो मानते हैं किन्तु सत्य है यह नहीं मानते —

अनुभूतोऽप्ययं लोको व्यवहारक्षमोऽपि सन्।
असद्रूपो यथा स्वप्न उत्तरक्षणबाधतः॥

अपरोक्षानुभूति–५६

तो सत्य का लक्षण यह नहीं, जो दीख रहा है या जिससे प्रयोजन सिद्ध हो रहा है वही सत्य है। अगर यही लक्षण मानें तो फिर स्वप्न को भी सत्य मानना चाहिए। क्योंकि स्वप्न में तो पदार्थ प्रत्यक्ष दिखाई

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पड़ते हैं। उनसे स्वप्न का व्यवहार भी सिद्ध होता है। स्वप्न में कोई अग्नि में हाथ डाल दे तो हाथ जलेगा। किसी के हाथ में चाकू लग जाए तो लहू निकलेगा। लेकिन जागने पर न तो अँगुली जली हुई मिलती है और न तो लहू निकलता हुआ मिलता है। इसीलिए स्वप्न के व्यवहार को सत्य नहीं कहा जा सकता है।

इसलिए यह जाग्रत जगत् भी अनुभूतः—अनुभव में तो आ रहा है परन्तु इसको हम सत्य नहीं कह सकते। इससे हमारे प्रयोजन भी सिद्ध हो रहे हैं। अन्न खाते हैं, भूख मिट जाती है। पानी पीते हैं, प्यास मिट जाती है। फिर भो सत्य नहीं है, असत्य है। क्योंकि उत्तरक्षणवाधते—इसीलिए स्वप्न सत्य नहीं है क्योंकि आँख खुलते ही स्वप्न के पदार्थ गायब। इसी से यह जाग्रत जगत् जिसको हम सत्य मानते हैं, इसमें भी जब आँख खुल जातो है तो यह फिर दिखाई नहीं देता।

आँख खुलने का मतलब है अपने स्वरूप का प्रत्यक्ष अनुभव होना। जब हम अपने स्वरूप में बैठ जाते हैं तो संसार का कहीं नाम-निशान नहीं रहता है। फिर सत्य क्यों कहें। इसीलिए उपनिषद् ने कहा—

नेह नानास्ति किंचन

आत्मा में थोड़ा भी जगत् नहीं है, यह तो माया के भीतर है। इसकी खोज हम ठीक से नहीं कर पाये, इसोलिए सत्य मान बैठे हैं। तो विचार का पहला काम यही है कि जगत् को हम पूरी तरह मिथ्या मान लें। उसकी पहचान यही है कि संसार के हानि-लाभ से हमको हर्ष—शोक नहीं होगा। जैसे किसी का जेब काटकर कोई सौ रुपया ले गया किन्तु उसे मालूम है कि उसके जेब में जाली नोट थे तो उसको कोई परेशानी नहीं होगी।

तो संसारी पदार्थों को मिथ्या जानने का फल क्या निकला कि उसके हर्ष—शोक मिट गये—

विद्वान् हर्ष शोकौ जहाति।

यही इसका फल है जिसको संसार के स्वरूप का और ब्रह्म के स्वरूप का बोध हो जाता है। तो इसका परिणाम यह होगा कि संसारी पदार्थों के आने में हर्ष भी नहीं होगा और इनके जाने में दुःख भी नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होगा। तो यह है कि जिसकी बुद्धि में यह बात बैठ गई बस आधा दुःख तो मिट गया। ये संसारी पदार्थों के संयोग-वियोग से जो सुख-दुःख होते थे वो तो खत्म हो गए। तो आधा बंध तो यों ही निवृत्त हो गया। परन्तु होना चाहिए अपरोक्ष अनुभव इसका। अनुभव दो प्रकार का है– एक परोक्ष, दूसरा अपरोक्ष। तो एक भ्रांति रूप अनुभव है, एक प्रमा रूप है। तो भ्रांति रूप अनुभव की निवृत्ति प्रमारूप अनुभव से होती है। पर भ्रांति रूप का अनुभव जिस प्रकार का हो, उतनी प्रमारूप अनुभव भी होना चाहिए। यदि भ्रांति रूप अनुभव बलवान है और प्रमारूप अनुभव दुर्बल है तो उसको वह नहीं हटा सकता है। तो बतलाएँ कि भ्रांति रूप अनुभव में कितना बल है और प्रमारूप अनुभव में कितना बल है। वह कितना सुखी और शांत बनाता है। हमको इतना ही मानना है कि संसार मिथ्या है और आत्मा सत्य है। वह सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म मैं हूं। जब इतना अनुभव हुआ कि जीव कृतकृत्य हो जाता है।

* ॐ पूर्णमदः पूर्णमदः *

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मोह-मुद्गर

भज गोविन्दम्.....

गोविन्द का भजन करो। किसी मनुष्य का किसी से नुकसान हुआ तो नाराज हो गया। तो वह बोला कि तेरे में और मेरे में एक विष्णु है। एक ही चेतन तत्व तेरा भी है, मेरा भी है। फिर मेरे ऊपर व्यर्थ नाराज क्यों हो रहा है। अगर तेरे से नुकसान होता तो क्या करता ? यानो जो भाव तेरे में है, वही मेरे में है। एक ही तत्व है सम रूप से वही तत्व है। भगवान् ने कहा कि मैं सम हूं। कहीं ज्यादा कहीं अधिक नहीं। जैसे बल्ब न० ५, १०, ६० में अनेक प्रकाश हैं किन्तु करेन्ट में कोई फर्क नहीं है। उसी प्रकार चेतन तत्व सबमें एक रूप है परन्तु उसमें जो इन्द्रियाँ हैं उसी से वह भिन्न प्रतीत होता है। कमी-बेशी का कारण अन्तःकरण है। किसी में विशेष ज्ञान है, किसी में कम। कारण अन्तःकरण है।

सम जो वस्तु है उसी में चित्त लगाओ। शरीर में चित्त या बुद्धि मत लगाओ। क्योंकि ये विषम हैं। अगर बुद्धि इसमें रहेगी तो दुःख होगा।

तुममें सहनशक्ति नहीं है इसीलिए क्रोध करते हो।

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठतं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यंतम् यः पश्यति स पश्यति॥

गीता—१३-२७

सभी आत्म-अनात्म पदार्थों में जो एक ही आत्मा को भरपूर देखता है, वही देखता है। शंका—जब एक ही आत्मा है तो एक ने रोटी खा ली, तो दूसरे को तृप्ति हो जानी चाहिए। किन्तु ऐसा नहीं होता। कारण कि चेतन एक है, इसका अर्थ यह नहीं कि पेट एक है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह कहा जाये कि पेट एक है तब तो बात ठीक है। यह तो तभी संभव है जब सबका पेट एक हो। किन्तु आत्मा और पेट में अन्तर है। पेट मैं नहीं है। मेरा पेट है।

एक आदमी की एक भैंस है, एक गौ है। गौ भी मेरी, भैंस भी मेरी। यानी मेरा दो है। वह आदमी दोनों का मालिक है। अर्थात् पेट मैं नहीं, मेरा पेट है। जैसे यह घर मेरा है, ऐसा कहते हैं। मैं घर हूं— ऐसा तो नहीं कहते।

इसी तरह यह तो कह सकते हैं कि सारे पेटों का मालिक एक है। एक आदमी है। उसके कार, घोड़े, खेत आदि अन्यान्य पदार्थ हैं। किन्तु सभी चीज तो नहीं है वह।

यह शंका बड़े दार्शनिकों में है। सांख्य, जैन, नैयायिक आदि सभी ने ऐसी शंका उठाई है। उनका कहना है कि एक मरते तो सब मर जाते। एक खाता तो सब खाते। किन्तु यह तो सिद्धान्त को बिगाड़ने का प्रयास है।

जैसे पेट वाली बात है। उसी प्रकार गाय, भैंस वाली बात है। एक जगह आत्मा मर जाय तो सब को मरना चाहिए। उनसे पूछो कि आत्मा मरती है क्या? किन्तु आत्मा को तो सभी नित्य मानते हैं। वह भिन्न-भिन्न होकर भी जब वह नहीं मरता तो सारे शरीर में एक होकर भी कैसे मर सकता है? इसीलिए यह शंका कि एक रोटी खाए तो सभी तृप्त हो जायें। यह बात तभी संभव है जब—

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठतं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्व विनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति॥

गीता १३—२७

यह जो विनाशी है। शरीर विनाशी है। आँख, कान, नाक आदि सभी नाशवान् हैं। इन अंगों के अन्दर चेतन डालने वाला तत्व एक है। जो पृथक-पृथक देखता है, वह गलत है। जो रस्सी को रस्सी देखता है वह तो ठीक है। जो रस्सी को साँप देखता है, वह तो कुछ भी नहीं देखता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जो आत्मा में अनेकता देखता है, वह कुछ भी नहीं देखता है। तुम सम चित्त हो जाओ। यानी जो सम वस्तु है उसमें चित्त को लगाओ जब ऐसा होगा।

दृष्टान्त—एक के खाने से दूसरे का खाना होता भी है। जैसे किसी को कहीं भोज खाने जाना था। किन्तु वह बीमार पड़ गया। उसने अपने लड़के को भेज दिया। जब लड़का खा लिया तो किसी ने पूछा कि वह खाने नहीं आया। तब लोगों ने बताया कि उसका लड़का आया था। उसी प्रकार जब लड़के ने खा लिया तो उसका खाना भी हो गया, ऐसा मान लिया गया है। अब ऐसा नहीं कह सकते कि वह नहीं आया। यानी लड़के का खाना बाप का खाना हो गया। लड़के ने वहाँ खाया बाप ने नहीं खाया।

वैसा तो वहाँ नहीं है। वहाँ तो सम भाव है। अपने शरीर जैसा दूसरे की भलाई देखना ही सम भाव है। जैसे एक आदमी को आँख भी है और पैर भी है। दोनों के अलग-अलग काम हैं। आँख का काम देखना और पैर का काम चलना है। कोई कितना भी ज्ञानवान् आदमी क्यों न हो, आँख से चल नहीं सकता, पैर से देख नहीं सकता। क्योंकि ये आँख जिस काम के लिए बनी हैं, वही काम करेंगी। दूसरे साधन से दूसरा काम नहीं हो सकता। गाय, घोड़ा आदि हैं। गाय का काम दूध देना है, घोड़ा का सवारी लेना। हम गाय बकरी पर सवारी नहीं कर सकते और घोड़े से दूध नहीं ले सकते। क्योंकि व्यवहारिक बातें देखनी हैं।

अग्नि भी ब्रह्म है। जल भी ब्रह्म है। किंतु दोनों का दो काम हैं। इसीलिए सब ब्रह्म होते हुए भी सबका अलग-अलग कार्य है। परमात्मा ही जलरूप और परमात्मा ने ही अग्नि बनाया है। किंतु दोनों के दो कार्य हैं। अग्नि से खाना बनेगा और जल से स्नान होगा। अब ऐसा नहीं होगा कि अग्नि से खाना भी बने और अग्नि से स्नान भी हो। अगर ऐसा होता तो जल का निर्माण ही व्यर्थ हो जाय। परमात्मा प्रत्येक वस्तुओं में सम होते हुए भी व्यवहारिक रूप से अलग-अलग है।

सर्वं खल्विदं इदं ब्रह्म—जो कुछ दीख रहा है वह ब्रह्म है। ब्रह्मरूप होने पर भी जिसका जो कार्य है उसी से लेना चाहता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समता का अर्थ यह नहीं कि सबसे एक ही काम करे। यानी जिससे जो व्यवहार हो वही करना चाहिए। ब्रह्मवेत्ता बकरी पर तो चढ़ने लगे और घोड़ा से दूध माँगे—

विद्या विनय संपन्ने, ब्राह्मणे, गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पंडितः समदर्शिनः॥

५/१८

पण्डित = ब्राह्मण

पण्डित = पढ़ा हुआ।

किन्तु भगवान कहते हैं कि असली पंडित कुछ और है। जो समदर्शी है, वही पण्डित है। विद्या, नम्रता, सम, दम यानी सात्विक गुणों से सम्पन्न, गाय, हस्ती, कुत्ता, और चाण्डाल—इन सब में जिसकी सम दृष्टि है। समदृष्टि का अर्थ यह नहीं कि ब्राह्मण को हाथी समझो, हाथी को कुत्ता समझे और गाय को हाथी समझे। (अथवा सभी को ब्राह्मण ही समझे) यह सम दृष्टि नहीं है।

सम का अर्थ सभी का हित यानी किसी का अनिष्ट नहीं चाहना। जैसे हम अपना अहित नहीं चाहते। यानी प्रत्येक प्राणी का हित चाहना है। यानी उत्तम और अधम की भलाई चाहना।

दो आदमी गए डाक्टर के पास। एक को पेट में दर्द है, दूसरे को खाँसी। डाक्टर दोनों को दवा देते हैं। समदृष्टि यह अर्थ नहीं कि दोनों को एक ही दवा दे या बदल कर दे तो यह समदृष्टि नहीं होगी। डाक्टर को यह देखना है कि रोग कैसे दूर हो? रोगों को दूर करने की दृष्टि ही डाक्टर की सम दृष्टि है।

पदार्थ की कीमत नहीं उसकी मात्रा भी देखनी है। एक बाप है, उसके दो लड़के हैं। एक पांच फुट का, एक ढाई फुट का। पिता दोनों का कपड़ा बनवाता है। दोनों को यदि पांच फुट का कपड़ा बनवा दे तो छोटे वाले को मुसीबत हो जाएगी। यानी वह कदम-कदम पर गिरेगा। यदि छोटे वाले के अनुसार पाजामा बना दिया जाये तो बड़े वाले को मुसीबत हो जाएगी। वह उसे पैर में डालेगा या गले में। कहने का अर्थ यह है कि पिता की समदर्शिता इसमें नहीं है कि दोनों को बराबर-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बराबर नाप का ही कपड़ा बनवाए। बल्कि एक कपड़ा से दोनों का पाजामा बने यही समदर्शिता है। जितना कपड़ा जिसे जरूरत हो उतना ही उसे दे।

उपर्युक्त श्लोक का सहारा लेकर लोग ब्राह्मण चमार को साथ में खिलाने लगे हैं यानी साथ में रोटी खिलाना समदर्शिता है। इसी प्रकार जो बीमार है उसे खिचड़ी खिलाई जाती है और जो स्वस्थ है उसे रोटी खिलाते हैं। यह समदर्शिता नहीं है कि बीमार और स्वस्थ को एक ही प्रकार का खाना खिलाया जाय। गाय घास खाती है और ब्राह्मण माल पूआ। किन्तु ब्राह्मण को घास और गाय को मालपूआ खिलाना समदर्शिता नहीं है। बल्कि इससे तो दोनों को दुःख ही होगा।

एक बार हमारे आश्रम में भण्डारा हुआ। अस्सी आदमी की तैयारी हुई किन्तु आये पचास ही। बनाने वाले ने देखा कि सामान बचने से हमारी बदनामी होगी तो चुपके से मालपूआ आदि गायों को खिला दिया। उन्हें भी खूब स्वाद आया, खूब खाई। नतीजा यह हुआ कि तीन चार गाएं मर गईं। यानी एक पदार्थ से किसी का हित हो सकता है तो उसी से दूसरे का अनहित भी। यहाँ समदर्शी होने का अर्थ यह है कि सभी पदार्थों में अपने जैसा भाव रखें। हम दुःख नहीं चाहते तो दूसरे को दुःख नहीं दें। यानी अनुकूल व्यवहार सभी के साथ करें। दूसरे से कुछ नुकसान हो जाता है तो हम क्रोध करते हैं किन्तु विचार करना चाहिए कि जब हमसे नुकसान होता है तो हम क्या करते हैं? अपनी अंगुली कभी आँख में लग जाती है, किंतु उसे काट कर तो नहीं फेंकते। जब हमसे हानि हो सकती है तो दूसरे से भी हानि हो सकती है। इस प्रकार सम भाव रखना चाहिए।

यानी मेरे ऊपर तू जो क्रोध करता है वह व्यर्थ है। जड़ पदार्थ को किसी को हानि नहीं। क्रोध नहीं करना, तितीक्षा, समचित्तता को धारण करना। समचेत्ता का अर्थ है सबमें एक चेत्ता को देखना। चींटी और हाथी में शरीर का अन्तर है, आत्मा का नहीं।

एक धर्मात्मा हो सभी धर्मात्मा हो जायें, एक पापी हो सभी पापी हो जायें—ऐसी शंका व्यर्थ है। क्योंकि शंका तो शरीर पर उठाई जा रही है आत्मा पर नहीं। सूरज जैसा अमेरिका में है वैसा ही इंग्लैंड में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में है। एक ही सूरज सारे ब्रह्मांड को प्रकाशित करता है। उसी प्रकार एक चेतन ने सभी शरीरों को चेतन बना रखा है।

दूसरी शंका है कि जड़ और चेतन को एक कैसे मान लिया जाये? जड़ चेतन का विभाग कहाँ से उत्पन्न हुआ? इसका समाधान यह है कि चेतन सब जगह एक होते हुए भी चेतनता का भान नहीं होता। जब चेतन एक है तो जड़ कहाँ से आये।

तुम यदि चेतन को सर्वव्यापी मानते हो तो सभी पदार्थों को चेतन क्यों नहीं मानते? चेतनता का भान वहीं होता है जहाँ अन्तःकरण हो। अन्तःकरण में चेतनता का प्रतिबिम्ब है। जहाँ चेतन और अन्तःकरण दोनों हैं वहीं चेतनता का भान होता है। जैसे एक सेर पानी में छः मासे चीनी डाले और पूछे कि भाई कैसी शर्बत है? किन्तु इतना सूक्ष्म में चीनी है ये पता नहीं चलता। इसका अर्थ यह नहीं कि चीनी है ही नहीं। छटांक डालने पर मीठा बन जाता। इसी प्रकार ब्रह्म सब जगह एक-सा है किन्तु प्रतिबिम्ब चेतनता के कारण उसको विशेषता झलकती है। जहाँ अन्तःकरण नहीं है वहाँ वह प्रतीत नहीं होता। चेतन और चेतना का प्रतिबिम्ब जहाँ है वहीं चेतनता आती है। अतः जड़ चेतन का विचार भी व्यर्थ है। जैसे चेतन का प्रतिबिम्ब सभी जगह नहीं पड़ता। जैसे शरीर का प्रतिबिम्ब दर्पण में ही पड़ता है दीवार आदि में नहीं। ठीक उसी प्रकार चेतन का प्रतिबिम्ब अन्तःकरण में पड़ता है।

सत्रह तत्वों से बना लिंग या सूक्ष्म शरीर कहलाता है—

पाँच ज्ञानेन्द्रिय—५
पाँच कर्मेन्द्रिय—५
पाँच प्राण —५
मन और बुद्धि—२

कुल सत्रह तत्व। मन और बुद्धि में सत्वगुण है उसी में चेतनता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आती है। शरीर को मुर्दा क्यों कहा ? जब जिंदा था तब मुर्दा क्यों न कहे ? जिस शरीर से लिंग शरीर निकल गया उसमें चेतनता का ज्ञान नहीं होता। जीवन और चेतनता की प्रतीति का कारण लिंग शरीर है। लिंग शरीर के निकल जाने पर शरीर मर जाता है।

ब्रह्म जो है वही विष्णु है। ब्रह्म व्यापक है। उस पर दृष्टि रखने वाला ही ब्रह्मवेत्ता है। जो व्यापक दृष्टि नहीं रखता है वह देखता ही नहीं। यदि ऐसी दृष्टि बन गई तो तुम ब्रह्म बन गए। समदृष्टि ही ब्रह्म दृष्टि है। समदृष्टि ही आत्मदृष्टि है। समदृष्टि ही ब्रह्मविचार है और वही आत्मविचार है। यानी किसी का नुकसान न करे, अपने शत्रु का भी। गुजरात में एक महात्मा हुए हैं। वे रोटी माँगने गए किसी माई के घर। वह बोली बाद में आना। महात्मा जी एक घंटे के बाद आए। फिर बोली बाद में आना। जब बाद में आए तो बोली कल आना। जब दूसरे दिन गए तो वह कपड़े से घर को लीप रही थी। उसी पोतने से उसे दे मारा। लो तुम्हें भिक्षा की पड़ी है तो ले जा। महात्मा जी प्रसन्न मन कपड़े को उठा लिए। उसे ले जाकर धोकर साफ किए। उससे अनेक बत्तियाँ बनाए और जला कर भगवान् की आरती उतारने लगे तथा बहुत प्रसन्न हुए कि माई ने बहुत दिन का इन्तजाम कर दिया। महात्मा की कृपा से माई का हृदय पवित्र हुआ। जब पन्द्रह दिन के बाद महात्मा जी गए तो बड़े प्रेम से बोली—भिक्षा लेने क्यों नहीं आए ? देखो, उसने तो अपमान किया परन्तु महात्मा ने अपमान नहीं माना।

मन जब मान-अपमान से परे हो जाए तो यही समदृष्टि है या ब्रह्मदृष्टि है। गुजरात में एक महात्मा हुए हैं—नरसी मेहता। उन्होंने कहा—

वैष्णव जन तो तेने कहिए, जो पीर पराई जाने रे।

यानी जो पराई पीर जाने वही वैष्णव है, यही उत्तम दृष्टि है। इससे बढ़कर उपनिषद् का कोई लाभ नहीं। मनुष्य में ही इसे समझने की शक्ति है। इसी अन्तरंग दृष्टि को अपनाना ही समदृष्टि है।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भगवद्गीता किञ्चिदधीता, गंगाजललव कणिका पीता।
येनाकारि मूरारेरर्चा, तस्य यमः किं कुरुते चर्चा॥

चपर्ट पञ्जरिका–१३

हे मूढ़मते तुम उस गोविन्द का भजन करो जो कि हमारी इन्द्रियों का प्रेरक है। क्योंकि उसका भजन करने से उस व्यक्ति की यमराज फिर चर्चा नहीं करता। मारक शक्ति का नाम यमराज है। वो उसका नाम अपने रजिस्टर से काट देता है–जो मनुष्य उस गोविन्द की शरण में जाता है। जो गोविन्द की शरण में नहीं जाता है, उसको वह मारता है। यमराज ने स्वयं नचिकेता के प्रति कहा है—

न साम्परायः प्रतिभाति बालं,
प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेनमूढ़म्।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी,
पुनः पुनर्वशमापद्यते मे॥

कठोपनिषद् द्वितीय–६

भौतिक पदार्थ के मद में जो परमात्मा को भूल जाता है वो—पुनः पुनर्वशमापद्यते मे—वो हो पुरुष बार–बार मेरे वश में हो जाता है और जो एक बार भी भगवान् गोविन्द की शरण में चला जाता है वह फिर हमारे पास नहीं आता। वह हमारे राज्य से बाहर होता है, उसके ऊपर हमारा आधिपत्य बिल्कुल नहीं।

तस्य यमः किं कुरुते चर्चा—

उसकी चर्चा यमराज छोड़ देता है जो गोविन्द की शरण में जाता है। तो प्रत्येक मनुष्य मृत्यु से बचना चाहता है। मृत्यु का भय प्रत्येक के सिर पर है, मृत्यु के दंड से सभी भयभीत हैं। सभी उससे बचना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चाहते हैं। परन्तु वो उपाय हम नहीं जानते हैं जिससे कि मृत्यु के भय से बच सकते हैं। उसके लिए वही मार्ग उपनिषद् और वेदान्त बतला रहा है। यदि मृत्यु भय से बचना चाहते हो तो भगवान् गोविन्द की शरण में जाना। दो प्रकार के साधन कहे गए हैं—

१. मुख्य साधन – अन्तरंग साधन।
२. गौण साधन – बहिरंग साधन।

अन्तरंग साधन वह है जिसको करने के अनन्तर हमको अपनी अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति हो जाए। फिर कुछ करने को शेष न रह जाए। जैसे हमको भूख लगी है। हमारी इच्छा है कि हमारी भूख मिट जाए, क्षुधा की निवृत्ति हो जाए। तो इसका अन्तरंग साधन है कि भोजन कर लें। भोजन के अनन्तर भूख की निवृत्ति के लिए और कुछ नहीं करना पड़ता। हमारा इतना ही काम है कि अन्न पेट में डाल लें। फिर अपने आप भूख मिट जाएगी।

बहिरंग साधन वह है जिसके अनन्तर कुछ और करना शेष रह जाता है। जैसे भोजन बनाना क्षुधा निवृत्ति का बहिरंग साधन है। क्योंकि भोजन बनाने मात्र से क्षुधा की निवृत्ति नहीं हो सकती। जब तक भोजन करे नहीं, खाए नहीं, तब तक भूख की निवृत्ति नहीं होगी। परन्तु भोजन बने ही नहीं, तो खायेंगे क्या? अतः भोजन बनाना, भोजन लाना, यह खाने का साधन है और खाने से हमारी क्षुधा की निवृत्ति होगी। अथवा हमारी कोठरी में अंधकार है तो दीपक जलाने के बाद अंधकार भगाने के लिए अब कुछ भी नहीं करना है। परन्तु दीपक जलाने के लिए जो उपाय करते हैं – उसमें तेल डालते हैं, बत्ती बनाते हैं, माचिस जलाते हैं—ये सब जो उपाय हैं वो दीपक की उत्पत्ति के उपाय हैं। जब दीपक उत्पन्न हो गया तो अंधकार स्वयं भाग गया। तो दीपक अंधकार की निवृत्ति का अन्तरंग साधन है और दीपक जलाने के लिए जो कुछ भी करते हैं वो सब बहिरंग साधन है। इसीलिए उसमें दोनों बातें कहीं—

भगवद्गीता किञ्चिदधीता, गंगा जल लव कणिका पीता।
येनकारि मुरारेरर्चा, तस्य यमः किं कुरुते चर्चा ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यानी जो मनुष्य भगवद्गीता आदि अध्यात्म शास्त्रों का अध्ययन करता है, और गंगाजल आदि यानी तीर्थों का जो जल पीता है और एक बार भी जो ईश्वर के चरणों का ध्यान करता है, यमराज उसकी चर्चा नहीं करता ये सब कर्म उपासना हैं। इनके करने से ज्ञान को उत्पत्ति होगी, फिर वह अपने स्वरूप को पहचान लेगा और मृत्यु का भय उसके सिर से टल जाएगा। इसीलिए अमृत पद पाने के लिए उस गोविंद भगवान् को जानना-पहचानना अनिवार्य है।

यह जगत् मिथ्या है। मिथ्या क्यों ?— इसको सत्य क्यों न मानें। मिथ्या उसको कहते हैं—जो कि खोटा हो। जिससे हमारी अभीष्ट वस्तु हमको न मिल सके उसको खोटा बोलते हैं। जैसे खोटा नोट—उससे कोई चीज नहीं मिलती है। सच्चे नोट से अभीष्ट वस्तु मिल जाती है। संसारी पदार्थों को खोटा इसीलिए कहा क्योंकि इससे हमारे अभीष्ट की प्राप्ति नहीं होती। तो अभीष्ट क्या है ?— आप कहो कि हमको धन मिलता है, धन से और पदार्थ मिलते हैं। जो हम चाहते हैं वो मिल जाते हैं। तो फिर कैसे स्वीकार करें कि इनसे अभीष्ट को प्राप्ति नहीं होती।

वो कहते हैं कि तुम चाहते हो तो अमर होना। धन नहीं चाहते। क्योंकि धन पर जीवन निर्भर नहीं है। अगर धन पर ही जीवन निर्भर मानें तो पशु-पक्षी कोई भी जीवित नहीं रहेगा। क्योंकि पक्षी धनी नहीं हैं। कोई भी पशु धनी नहीं है। बल्कि कई की आयु तो मनुष्य से भी अधिक है। पशुओं को आयु बहुत है। अजगर की आयु हजार साल की होती है। कौवे की भी हजार वर्ष आयु है। गीध की भी बहुत आयु है। तो ऐसे भी पशुपक्षी हैं जिनकी आयु मनुष्य से कई गुना अधिक है। पर पैसा तो उनके पास एक भी नहीं होता। तो यदि धन के ऊपर जीवन निर्भर होता तो ये पशु-पक्षी आदि फिर क्यों जीवित रहते। इससे सिद्ध हो गया हमारा जीवन धन पर निर्भर नहीं है। असल में जीवन निर्भर दूसरी वस्तुओं पर है। जीवन के लिए भोजन, वस्त्र अनिवार्य है। उनकी प्राप्ति धन से हो जाती है। तो बहिरंग साधन हो गया। अंतरंग साधन हुआ—अन्न, वस्त्र, जल आदि। पशुओं को भोजन आदि धन से नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मिलता है फिर भी वे जीवित हैं। तो धन हमारा लक्ष्य नहीं। बल्कि हमारा लक्ष्य अन्न है। भूख के लिए अन्न, प्यास के लिए जल, शरीर ढकने के लिए वस्त्र और वर्षा तूफान आंधी से बचने के लिए घर हमारे लिए आवश्यक हैं। इनकी पूर्ति के लिए धन बहिरंग साधन है। धन जीवन का लक्ष्य नहीं। यदि किसी के पास सारे साधन भरपूर हों तो फिर धन हो या न हो। क्योंकि धन से पदार्थ ही तो लेंगे। इसीलिए कहा कि धन गौण है। मुख्य तो खाना, पीना, पहनना आदि है। यदि सभी सामान हों तो धन की कोई आवश्यता नहीं। जैसें बच्चे को खिलाने के लिए नौकर रखते हैं तो नौकर मुख्य नहीं है। मुख्य है बच्चा। किन्तु अन्न, वस्त्र, घर आदि आदमी को अमर नहीं बनाते तो फिर धन से अमर कैसे होगा? यानी संसारी पदार्थ हमको मृत्यु के भय से नहीं बचा सकते। तो उनसे भी गौण जो धन है वह भला हमको अमरता कैसे प्रदान कर सकता है? यह हमारी भ्रांति है कि धन से मृत्यु का भय मिट जाएगा। बल्कि धन आदि तो मृत्यु का कारण होता है। दस हजार रुपए लेकर कहीं जाओ। अगर किसी को पता चल जाए तो फिर बचना मुश्किल। धन तो मृत्यु का कारण है—यह रक्षा क्या करेगा? यह तो हमारी भ्रांति है कि हम मृत्यु के सहायक, उसके रिश्तेदार से अपनी रक्षा कराना चाहते हैं। उससे हम अमृत पद की प्राप्ति चाहते हैं। इस भ्रांति को वेदान्त निकालता है—

सा होवाच मैत्रेयी यन्नु म इयं भोगोः सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात्कथं तेनामृता स्यामिति नेति होवाच याज्ञवल्क्यो यथैतोपकरणवतां जीवितं तथैव ते जीवितं स्याद्मृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेनेति।

—वृहदारण्यक (द्वितीयाध्याय) चतुर्थ ब्राह्मण ॥ ३ ॥

याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी को कहा कि मैं कात्यायनी और तुम दोनों के बीच सम्पत्ति का बँटवारा करना चाहता हूं। मैं तो जंगल में जाना चाहता हूं। तुम लोगों में कोई विवाद नहीं हो। इसलिए बँटवारा हो जाए तो अच्छा रहे। उस पर मैत्रेयी बोली कि आपके पास तो बहुत कम सम्पत्ति है, अगर पूरी पृथ्वी रत्नों से भरकर भी मुझे मिल जाए तो मुझे नहीं चाहिए। क्योंकि, क्या मैं सारी सम्पत्ति को पाकर अमृत हो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सकती हूं। ? क्या मेरे सिर से मृत्यु का भय टल सकता है ? याज्ञवल्क्य ने कहा कि धन से तो अमृत की प्राप्ति नहीं हो सकती है। धन का उपयोग तो मात्र शरीर की आवश्यता की पूर्ति के लिए है। तो यह सिद्ध हो गया कि अमृत पद की प्राप्ति पदार्थों से नहीं हो सकती। क्योंकि ये भौतिक पदार्थ मायिक और नाशवान् हैं। तो मृत्यु के भय से कैसे बचें ?

मृत्यु के भय से बचने के लिए आत्मारूप उस गोविंद की शरण में जाना पड़ेगा। उस गोविंद को पहचान कर ही मनुष्य मृत्यु के भय से बच सकता है, और कोई उपाय नहीं है। हम उससे डरकर बचने के लिए जो नाना उपाय कर रहे हैं और सफल नहीं हो रहे हैं, इसका कारण है कि हमारा तरीका गलत है। तो वेदांत श्रवण उस गलती को बताता है। जिस मार्ग से तुम जा रहे हो, उससे अपने गाँव नहीं पहुंचोगे। बल्कि उल्टो ओर दूर चले जा रहे हो। यह उपाय इसने बतलाया।

तो हम चाहते तो हैं अमृत पद। पर अमृत पद की प्राप्ति जिससे हो वह साधन न करना पड़े। क्या इन भौतिक पदार्थों से अमृतपद की प्राप्ति हो सकेगी ? कदापि नहीं। क्योंकि जबसे इतिहास मिलता है, इसमें आज तक एक भी व्यक्ति भौतिक पदार्थों के बल पर अमर हो गया होता तो हम तुम्हारी बात भी मान लेते। पर बड़े से बड़े भौतिकवादी भी जब मृत्यु के भय से नहीं बच पाये, तो हम बच जायेंगे, इसका विश्वास कैसे कर लें। तो यह बात सिद्ध हो गई कि भौतिक पदार्थ मिथ्या हैं। क्योंकि हम जिस चीज को चाहते हैं—जिस अमरता को चाहते हैं उसकी प्राप्ति इससे नहीं हो सकती है। अतः भौतिक पदार्थ खोटे हैं। इससे हमको हमारा अभीष्ट पद नहीं मिल सकता है। इसकी प्राप्ति आज तक किसी भौतिक पदार्थ से नहीं हो सकती, नहीं हुई है। अतः हम इनको खोटा कहते हैं।

इसलिए वेदान्त का यह नारा है—जगन्मिथ्या—जगत् मिथ्या है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

माने जगत् से हमको वो चीज़ नहीं मिल सकती है, जिसको हम चाहते हैं। केवल रोटी, कपड़े मिल सकते हैं जो भूख प्यास आदि को मिटा सकते हैं। लक्ष्य को प्राप्ति तो तभी होगी जब हम गोविंद भगवान् की शरण में जायेंगे। इसलिए कहा कि—

ब्रह्म सत्यं जगन् मिथ्या ।

जगत् मिथ्या इसलिए है क्योंकि हमारा लक्ष्य, हमारा अभीष्ट उससे सिद्ध नहीं हो रहा है। ब्रह्म सत्य इसलिए है कि उससे ही हमको अमृतपद की प्राप्ति होती है। उपनिषद् को यह घोषणा है—

य एषोऽक्षिणी पुरुषो दृश्यत एष आत्मेति होवाचैं—तदमृतमभयमेत-द्ब्रह्मेति तद्यद्यप्यस्मिन्सर्पिर्वोदकं वा सिञ्चन्ति वर्त्मनी एव गच्छति।

छान्दोग्य—१५-१

इसमें गोविंद का अर्थ है— गो, इन्द्रियाँ विंद— माने उनका संचालन करने वाली शक्ति। हमारी इन्द्रियों में अपना-अपना काम करने का सामर्थ्य, जिसकी सहायता से, जिसकी कृपा से आता है, उसी का नाम गोविंद है। वो कहते हैं कि ये जो आँख में बैठकर और देखने की शक्ति दे रहा है, कान में बैठकर कान को सुनने की शक्ति दे रहा है, जिसके सम्बन्ध से रहित होने के कारण मुर्दे आँख होने पर भी देख नहीं सकते, सुन नहीं सकते हैं। तो जिसकी कृपा से आँख देखती हैं, कान सुनते हैं, वाणी बोलती हैं, वो ही गोविंद है, वो ही आत्मा है। वो ही अमृत है अर्थात् उसको मृत्यु कुछ नहीं कहती। इसलिए अभय है। क्योंकि भय तो मृत्यु का ही है न। यदि मृत्यु का नहीं हो तो और कोई भय तो है ही नहीं। हम साँप से क्यों डरते हैं, क्योंकि काटेगा। तो हम मर जायेंगे। तो डर केवल मृत्यु का ही है। अब मृत्यु का डर यदि मिट जाए तो हमको किसी का डर नहीं रहे। इसलिए कहा कि एतद्ऽमृतं—ये जो आँख में बैठकर देख रहा है, या जिसकी सहायता से आँख देख रही है, यह अमृत है और इसीलिए अभय है। यही आत्मा है और यही ब्रह्म है। इसे आत्मा कहो, ब्रह्म कहो, अमृत कहो, चाहे अभय कहो। ये सभी नाम ब्रह्म के हैं। जब वह तत्व अमृत है तो उसके ऊपर मृत्यु का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अधिकार नहीं है। जिस पर मृत्यु का अधिकार नहीं, जिससे मृत्यु डरे उसकी शरण में जाने से हम मृत्यु से बच सकते हैं और संसारी पदार्थ कोई ऐसा नहीं है जो अमर हो। वो तो सब विनाशी हैं सबको मृत्यु खाती है। मृत्यु के सब भोजन हैं क्योंकि माया के बने हैं। जो वस्तु मायिक होती है, वह नाशवान है। वह गोविंद, वह आत्मा, ब्रह्म मायिक नहीं है, इसलिए अमर है। तो यह निश्चय हो गया कि मरने वाले की शरण में जाने से हम कभी अमर हो ही नहीं सकते। और अमृत की शरण में जाने से हम कभी मर नहीं सकते। अब देखो कि हमारी अभीष्ट की प्राप्ति किससे होगी? तो ब्रह्म से होगी, संसारी पदार्थों से नहीं होगी। इसलिए— ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या। तो मिथ्या का अर्थ ऐसा नहीं मानना कि है नहीं। जैसा कि कुछ लोग मानते हैं। तो जब यह साबित हो गया कि मिथ्या असत् को नहीं कहते बल्कि उसको कहते हैं जिससे हमारा प्रयोजन सिद्ध न हो सके। तो अब संसार के पदार्थ मिथ्या हो गये। इनसे जब अभीष्ट सिद्ध नहीं हो सकता तो इनकी प्राप्ति के लिए इनकी हानि लाभ के लिए हम अपना समय बर्बाद करें, यह तो निरर्थक है। जिससे हमको लाभ होना ही नहीं। सिर्फ उनसे शरीर निर्वाह तक लाभ है। इससे ज्यादा और कोई प्रयोजन इनसे सिद्ध होता ही नहीं। तो इतने प्रयोजन के लिए और इतना सुन्दर जीवन को इसी में बर्बाद करें तो नादानी है। जो खिलौना खेलने में ही जीवन की सार्थकता मान बैठे हैं वो अज्ञानी हैं, बच्चे हैं। जो लोग माया के पदार्थों में ही अपने जीवन को समर्पित कर देते हैं और यह समझते हैं कि हम तो कृत-कृत्य हो गए— तो हमारे उपनिषद् उनको बालक कहते हैं। क्योंकि ऐसे पदार्थों से वे आशा रखते हैं जिनसे कुछ नहीं मिलेगा। जैसे बच्चों के पास एक तीर कमान है। वो देखते हैं कि रामजी ने धनुष बाण से अनेक राक्षसों को मार डाला। चोर आ गए तो सब हल्ला मचायें। बच्चे की आँख खुल गई क्या बात है? तो घर में चोर आ गए। मेरा धनुष बाण लाओ मैं अभी इनके गले उड़ा देता हूं। जैसे राम जी ने राक्षसों के सिर उड़ाए थे। मैं अभी दो चार बाण में इनका सफाया कर देता हूं। तो बच्चा, जो कि अपने तीर कमान पर भरोसा कर के बैठा है कि मैं डाकुओं को भगा दूँगा। तो उससे थोड़े ही डाकू भागेंगे। तो इसी तरह भौतिकवादी पुरुष इन पदार्थों से जो रोग-शोक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और मृत्यु नामक डाकू को भगाना चाहते हैं तो वे भी बालक ही हैं। जैसे बालक के तीर कमान से डाकू नहीं भाग सकते वैसे ही सांसारिक पदार्थों से मृत्यु का भय दूर नहीं होता। —

पराचः कामाननु यन्ति बाला।
ते मृत्योर्यन्ति वीत्तस्यपाशम ।। कठ० २-२

जो बच्चे तीर कमान लेकर डाकू से लड़ने जाएँ तो वो उनके तीर कमान भी तोड़ेंगे और बच्चे को उठा भी ले जायेंगे। इसी तरह जो लोग भौतिक साधनों से मृत्यु का मुकाबला करने जाते हैं तो मृत्यु उन पदार्थों को भी खा जाती है और उनको भी खा जाती है। वे बालक हैं जो इन अनात्म पदार्थों के पीछे जन्म मरण के चक्कर में भटक रहे हैं और अपने आप में यह अभिमान कर लेते हैं कि हमारा जन्म सफल हो गया। सफल क्या हो गया? मृत्यु तो आयी हुई है। अध्यात्मवाद का यह नारा है कि जिसने उस ब्रह्म को अपना आत्मा करके जान लिया, अपने आत्मा को ब्रह्म करके जान लिया उसके सामने मृत्यु है ही नहीं। मृत्यु और ब्रह्म आँख के बदलने और न बदलने में है, बस। यदि अपनी आँखों को अपनी तरफ कर लिया, तो ब्रह्म है, मृत्यु खत्म। और यदि संसार की तरफ कर दी तो फिर मृत्यु। इसलिए मैं और ये। जब 'इदं' (यह) पर दृष्टि जाती है तो मृत्यु खड़ी हो जाती है और 'इदं' का त्याग कर 'अहं' (मैं) पर वृत्ति आती है तो फिर मृत्यु भाग जाती है। फिर ब्रह्म ही ब्रह्म। इसीलिए महाभारत में कहा है—

द्वक्षरंहिमृत्यु प्रोक्तम्
त्र्यक्षरम् ब्रह्म शाश्वतम्
ममेति च भवेत् मृत्यु
नैममेति च शाश्वतम्।

कि दो अक्षरों में मृत्यु है और तीन अक्षरों में ब्रह्म है। दो अक्षर कौन हैं कि— 'मम्'— यह वस्तु मेरी है। पहले तो यह वस्तु भी यानि बाहर दृष्टि गई। फिर उनसे सम्बन्ध जोड़ा कि मेरा है। यह तो है 'मृत्यु'। और जब 'नैमम्'— वहाँ से दृष्टि हटाई और अपने ऊपर ले

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आए तो हो गया 'ब्रह्म'। तो जब तक 'इदं' वृत्ति रहेगी। तब तक तो मृत्यु के अधिकार में हैं। और जब 'अहम्' वृत्ति आ गई तो मृत्यु समाप्त है। इसीलिए आत्मा जो कि अमर है, उसको शरण में जाने से हम अमर हैं। हमको मृत्यु कुछ नहीं कह सकती। इसीलिए कहा है कि हमारा लक्ष्य जब उस ब्रह्म की शरण में जाने से पूरा हो गया तो फिर असली तो वही हुआ न। तो तुलसीदास ने कहा—

उमा कहौं मैं अनुभव अपना,
सत् हरि भजन जगत सब सपना।

कि जगत् सब सपना जैसा है। आँखें खुलने की जरूरत हैं बस। और सपने का जगत् नष्ट। और 'मैं' का नाश तो आज तक हुआ नहीं। न कोई कर सकता है। क्योंकि जो 'इदं' है– वह 'अहम्' से सिद्ध होता है। पहले अहम् = मैं सिद्ध होता है, फिर 'इदं' = यह सिद्ध होता है। यदि मैं नहीं रहा तो 'इदं' (यह) भी नहीं रह सकता। क्योंकि 'अहम्' के बिना 'इदम्' को कौन सिद्ध करेगा ? अहम् एक दीपक है। इदम्– एक पदार्थ है। जैसे अंधेरे कमरे में किसी पदार्थ की सिद्धि हो ही नहीं सकती। न उसका होना सिद्ध होता है, न उसका ना होना सिद्ध होता है। अंधेरे कमरे में हम नहीं कह सकते कि इसमें घड़ा है कि नहीं। लेकिन दीपक ले जाएँ तो कह सकते हैं कि घड़ा है अथवा नहीं। तो जैसे अंधेरे कमरे में किसी वस्तु का होना, नहीं होना, नहीं सिद्ध होता है और दीपक वाले कमरे में सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार हमारे शरीर में आत्मा रूपी दीपक जब तक जलता रहता है, तब तक यह सब सिद्ध होता है और जहाँ जोवात्मा निकल गया, फिर इसको अपना ही नहीं खबर, दूसरे की क्या खबर होगी ? तो जो सिद्ध होने वाली वस्तु है उसका अगर नाश मान लें तो फिर सिद्ध हो ही नहीं सकती। इसी-लिए कहा कि वह जो सबको सिद्ध करने वाला है, उसका नाश होता ही नहीं– इसीलिए भगवान् ने कहा है—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥ गी० २-२३

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यह आत्मा अविनाशी है। इसका कोई नाश नहीं कर सकता। नाश हो हो नहीं सकता और नाश हो भी नहीं सकता। अग्नि, पवन, जल, शस्त्र आदि नाश के जितने भी साधन हैं, उनमें किसी में भी शक्ति नहीं है कि 'मैं' (आत्मा) को मार सके। शस्त्र इसको काट नहीं सकता। अग्नि इसको जला नहीं सकती। जल इसको गला नहीं सकता और हवा इसको सुखा नहीं सकती।

तो प्रश्न उठता है कि शरीर जब जल गया तो शरीर के अन्दर रहने वाला आत्मा कैसे जिंदा रहा? वह भी तो जलेगा न? जैसे मकान में आग लग जाए तो उसमें रहने वाला भी तो जल ही जाएगा। इसी प्रकार जब शरीर जल गया तो उसमें रहने वाला आत्मा भी जलेगा ही। इसी तरह अगर शरीर को हम काटें तो आत्मा क्यों नहीं कटेगा? तो उत्तर दिया—

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥ गी० २-२४

यह नष्ट होने वाला नहीं है। घर के अन्दर मनुष्य है तो आकाश भी तो है। तो घर के भस्म होने से जैसे आकाश भस्म नहीं होता, घर के टुकड़े टुकड़े कर दिए जाएँ तो आकाश के टुकड़े नहीं होते। इसी प्रकार शरीर में चाहे जो भी विकार हो जाए परन्तु इसके अन्दर रहता हुआ भी आत्मा असंग है। सूक्ष्म होने के कारण उस पर किसी अस्त्र का, अग्नि का, जल का, पवन का कोई दुष्परिणाम नहीं होता है। इसीलिए वह अमर है, अछेद्य है, अदाह्य है, अक्लेद्य है। तो उस आत्मा की शरण में जाने से मृत्यु कैसे सताएगी। तो शरण में जाना कुछ और नहीं है, वृत्ति का हेरफेर है, बस। यह वृत्ति जो 'इदं' में बाहर फँसी है उसको अहं पर ले जाओ, बस इतना ही काम करना है। वेदांत कहता है कि— ज्ञान ही प्राप्तव्य वस्तु है—वो तो इतना ही है कि—"अहं ब्रह्मास्मि, ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जोवोब्रह्मैव ना परः।" बस इसी बात पर हमारी बुद्धि जम जाय। अर्थात् जिससे हम 'इदं' को सिद्ध करते हैं वह अहं की ओर झुक जाय। जैसे बाहर से दृष्टि को हटाकर अपने शरीर की ओर देखने लग जाएँ तो दृष्टि का ही हेर-फेर है। एक बाहर की दृष्टि है, एक अन्दर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को दृष्टि है। उसको हम मन और बुद्धि बोलते हैं, उसको ख्याल और विचार भी बोलते हैं। जो अब इदं से हटकर अहं पर आ गया है तो मृत्यु निकल गयी। अब उसके ऊपर मृत्यु का आक्रमण नहीं हो सकता। मृत्यु वहाँ है ही नहीं ऐसा समझो। मृत्यु वहाँ कहाँ—

यो वै भूमा तद् अमृतं
यद्‌ल्पं तन्मर्त्यम्

जो अल्प यानी परिच्छिन्न है वह विनाशी और जो अपरिच्छिन्न है, वह है– भूमा। उसका नाश नहीं। जहाँ पर अल्पता है वहाँ मृत्यु है। अल्पता क्या है ? अल्पता नाम है—द्रष्टा, दर्शन, दृश्य का, जहाँ ये तीनों हैं वहीं अल्पता है। दृष्टा = देखने वाला और दृश्य जिसको देखा जाय। दर्शन – जिसके द्वारा देखा जाय। जहाँ दो या तीन हो गये वहाँ सब मृत्यु का राज्य है और जहाँ पर त्रिपुटी समाप्त है वहाँ पर अद्वैत है, वही अपना स्वरूप है। इसी वस्तु को जानना है और जानकर उसमें स्थिर होना है। जानना तो थोड़ी बात है, उसमें स्थिर होना कठिन है। इतना कठिन काम है जैसे कि बरसाती नदी को जो कि हिमालय से निकलती है उसे फिर लौटाकर हिमालय पहुंचाना वह जितना कठिन है उतना ही कठिन मन के वेग को बाहर से अन्दर लौटाना है। यदि यह हो गया तो मृत्यु फिर हमको कुछ नहीं कहती। मृत्यु का नाम निशान मिट जाएगा। किन्तु जब तक यह नहीं होता, तब तक मृत्यु से हम बच नहीं सकते। यों—

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या
जीवो ब्रह्मैव ना परः ॥

अब जो मिथ्या है उसका अर्थ निश्चय कर लेना चाहिए कि ये संसारी पदार्थ हमारे अभीष्ट को पूर्ण नहीं कर सकते, इसलिए अपना समय इधर बर्बाद नहीं करना है। बल्कि वह जो सत्य वस्तु है, ब्रह्म है– उसी की शरण में जाना है, उसी में स्थिर होना है– तब मृत्यु के भय से बचेंगे। बस वृत्ति को संसार से लौटाकर अपने स्वरूप में स्थिर करना है। उसके लिए ऋषियों, तत्वज्ञानियों ने साधन बतलाये हैं। तो उन पर आगे विचार करेंगे।

ॐ पूर्णमदः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

असल सारी बातें अभ्यास की हैं। अभ्यास से आदमी देवता भी बन सकता है और देवता दानव भी बन सकता है। इस बात को भगवान ने एक दृष्टान्त से अर्जुन को समझाया। एक बार भगवान् और अर्जुन नदी किनारे घूमने निकले। वहाँ पर एक मछुआरा मछली मार रहा था। अर्जुन ने पूछा कि ऐसा पापी अभ्यास से सुधर सकता है कि नहीं? क्यों नहीं हो सकता है? तू यहाँ पर वृक्ष के नीचे बैठ जा और मैं जो कुछ करता हूं उसे देखो। भगवान् ने मछुआरे का रूप बना लिया और उस मछुआरे के पास में जाकर मछली पकड़ने लगे। जाल डाला तो मिनट भर में हजारों मछलियाँ फँस गई। दुबारा जाल डाला तो दस हजार मछलियाँ फँस गईं। ऐसे आधा घंटा में उन्होंने मछलियों का पहाड़ लगा दिया। अब वह मछुआरा देखकर आश्चर्यचकित रह गया। उसने सोचा कि इसने तो १५ मिनट में ढेर लगा दिया और मैं सवेरे से दस मछली भी नहीं पकड़ सका। जरूर इसको कुछ सिद्धि है। वह भगवान् के पास पहुंचा। बोला क्यों तुमने तो मछलियों का ढेर लगा दिया। क्या तुमको कोई मंत्र सिद्धि है। हाँ, मुझे तो मंत्र की सिद्धि है। मैं तो मंत्र के बल से दो घंटों में जितनी चाहूं मछली पकड़ सकता हूं। मछुआरा सोचने लगा कि यदि यह मंत्र मैं भी सीख लूँ तो घंटों में लाखों मछलियाँ मार कर मालोमाल हो जाऊँ। उसने कहा यह मन्त्र तुम मुझे बतला सकते हो? क्यों नहीं? किन्तु जरा इसका नियम कठिन है। तुम उसका पालन कर सकोगे कि नहीं, यह तुम सोच लो। असल छः महीना तक मंत्र का जाप करना होगा। इसके लिये कुछ नियम हैं। नियम यह है कि पहले तो छः महीने तक बिल्कुल मछली नहीं मारना होगा। फिर एकान्तवास करते हुए फल फूल तथा दूध का ही आहार करना होगा। किसी भी आदमी से न मिलना, न बोलना। बस, अपनी एकान्त कुटिया में बैठ कर जाप करना होगा। अब तुम सोच लो कि इन नियमों का पालन कर सकोगे कि नहीं।

नियम सुनकर वह भी घबराया कि अगर हम छः महीने तक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मछली मारेंगे नहीं तो परिवार का पालन कैसे होगा ? बोला कि मैं अपने परिवार वालों से पूछ कर आता हूं। वहाँ जाकर सारी कहानी सुनाया कि एक ऐसा जादूगर आया है कि मन्त्रों के बल से घंटों में लाखों मछलियाँ पकड़ लेता है। अगर तुम लोग कहो तो मैं भी मंत्र सीख लूँ। फिर तो हम मालामाल हो जायेंगे। किन्तु छः मास तक अपना काम तुम लोगों को चलाना पड़ेगा। घरवालों ने सोचा कि चलो छः महीने की ही तो बात है। हम किसी तरह से काम चला लेंगे। उन लोगों ने स्वीकृति दे दी।

अब वह गया और बोला कि मुझे मंत्र दे दो भाई। मैं नियम का पूरा पालन करूंगा। हाँ, देखना सावधान रहना। छः माह तक पूरे नियम के साथ मंत्र का जाप करना होगा। कोई बात नहीं मैं तैयार हूं। भगवान् ने मंत्र दे दिया और बोले कि मैं छः महीने बाद फिर आऊँगा तथा बताऊँगा कि अब किस प्रकार जाल डालोगे कि अधिक से अधिक मछलियाँ फँसे। तू मेरे आने से पहले अपनी साधना मत छोड़ना। बस मंत्र देकर भगवान् अर्जुन के साथ चले गये।

अब वो लगा मंत्र का जाप करने। शुद्ध भोजन, एकान्तवास और मंत्र का जाप। पूरी निष्ठा से नियम का पालन करने लगा। एक महीना बीता, दो महीना बीता, तीन महीना बीता। अब उसका अन्तःकरण शुद्ध होने लगा। उसने सोचा कि मैं केवल अपना पेट भरने के लिए कितने जीवों की हत्या करता हूं। कैसा क्रूर कर्म आज तक किया। अरे, पेट तो शाक, सब्जी तथा दूध से भी भर सकता है। फिर इतनी हत्या करने की क्या आवश्यकता है। अब तो मैं कभी भी ऐसा जघन्य काम नहीं करूँगा। अगर छठे महीने जादूगर आए तो मैं साफ मना कर दूँगा कि मुझे अब उस युक्ति से कोई काम नहीं है। और सबसे अच्छा तो यही हो कि वह आए ही नहीं। अब क्या लेना है उससे। अब तो बस जीवन भर भजन-साधन ही करना है। ऐसे साल बीता, दो साल बीता, चार साल बीता, बारह साल बीत गया। अब साधना के कारण उसको सिद्धि भी प्राप्त हो गई। जो कह दे वह सत्य हो जाए। लोगों का मनोरथ पूर्ण हो जाए। अब लोगों की भीड़ बढ़ने लगी। चढ़ावा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चढ़ने लगा। मंदिर भी बन गया। और बारह साल में दाढ़ी जटा बढ़ गई। अब तो पूरा महात्मा बन गया।

उधर भगवान् ने अर्जुन को लिया और बोले कि चलो आज गंगा किनारे घूमने चलें। दोनों चल पड़े। मार्ग में देखा कि एक मन्दिर है और वहाँ लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी है। भगवान् ने पूछा कि अर्जुन बात क्या है? क्यों इतनी भीड़ है? अर्जुन ने पता किया तो ज्ञात हुआ कि कोई सिद्ध महात्मा हैं जिनके दर्शन को लोग जा रहे हैं। भगवान् ने कहा कि चलो बड़ी अच्छी बात है। हम भी संत का दर्शन कर लें। दोनों गये, दर्शन किए। भगवान् ने पूछा कि अर्जुन पहचानते हो इस महात्मा को। ना भगवन्। मैं तो पहली बार देख रहा हूं। भगवान् बोले कि अर्जुन यह पहचाना जैसा लग रहा है। तुम्हें याद है, आज से १२ वर्ष पहले हम दोनों यहाँ आए थे तो एक मछुआरा मछली मार रहा था। हमारी समझ से तो यह वही है। अर्जुन ने कहा कि भगवन्, आपको भ्रम हो रहा है। भला वह मछुआरा रात-दिन पाप करने वाला कहीं महात्मा बन सकता है? भगवान् ने कहा कि अच्छा, चलो लोगों से पता करें। पता किया तो दूसरे मछुआरों ने बताया कि यह तो हमारा ही भाई है। पहले मछली मारता था। फिर उस जादूगर की कहानी सुना डाली। अब अर्जुन के आश्चर्य का ठिकाना नहीं। उन्होंने भगवान् के पाँव पकड़ लिए। प्रभु, अभ्यास और सत्संग से कुछ भी सम्भव है। पापी से पापी भी देवता बन सकता है, इसमें कोई संदेह नहीं। दैत्य भी बन सकते हैं और उनका साधन है– कुसंग, कुवासनाएँ। देवता बनने का साधन है– सत्संग, सद्भावनाएँ, सद्ग्रन्थ। इसलिए शास्त्रकारों ने कहा कि दानव का जागना मामूली बात है। पर देवता को जगाना बड़ा कठिन है। इसीलिए स्वाध्याय, सत्संग की जरूरत है। क्योंकि वो जैसा संग करता है, जैसा खाता-पीता है, जैसा ग्रन्थ पढ़ता है और जैसी वेशभूषा होती है, वैसे ही संस्कार मनुष्य में जाग जाते हैं। क्योंकि समान को समान खींचा करता है—

मृगामृगैःसंगमनुव्रजन्ति
गावश्चगोभिस्तुरगास्तुरगैः
मूर्खाश्चमूर्खैः सुधियःसुधिभिः
समानशीलव्यसनेषु सख्यम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समान जो हैं वो समान को खींचते हैं। मृग, मृग में जाते हैं, गौवें, गौवों में खुश रहती हैं। घोड़ा, घोड़ों में जाता है, मूर्ख मूर्खों में जाते हैं, विद्वान्, विद्वानों में जाता है, व्यसनी, व्यसनी में जाता है। संत, संतों में जाता है। यह प्रकृति का स्वभाव है कि समान जाति में आकर्षण होता है।

हमारे अन्दर भी दुर्वासना और सद्वासना दोनों हैं। जब बाहर का वातावरण यदि सात्विक मिल जाता है तो हमारे अन्दर की सात्विक वासनाओं को जगाता है और जब राजस-तामस बाहर का वातावरण हो जाता है तो फिर वो राजस-तामस वासनाओं को जगाता है। इसलिए सत्संग, स्वाध्याय, सत् शास्त्रों का चिंतन और सात्विक आहार-विहार और सात्विक वेश भी होना चाहिए। कपड़ों का मन पर प्रभाव पड़ता है। किसी को मिलिट्री वाला कपड़ा पहना दो, देखो उसमें अपने आप जोश आ जाएगा। मारने की प्रवृत्ति जाग जाएगी। ब्राह्मण जैसा धोती कुर्त्ता पहना दिया तो उसमें ब्राह्मण जैसी भावनाएँ आ जाती हैं। तो वेश का भी महत्व है। इसीलिए सात्विक वेश, सात्विक आहार-विहार। कहते हैं कि जब परमात्मा ने यज्ञ बनाया तो—

सह यज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा
पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्व
मेव वोऽस्त्विष्ट कामधुक् गी० ३-१०

परमात्मा ने यज्ञ बनाया। पहले प्रजा बना दी। उसकी अभीष्ट सिद्धि के लिए यज्ञ बनाया। और यज्ञ को भेज दिया मनुष्य लोक में, जाओ मनुष्यों का कल्याण करो। तो यज्ञ आया। अब जनता में चर्चा फैली। वो जंगल में बैठा है। उसको नगर में लाना पड़ेगा। तो क्या करें। तो क्षत्री कहने लगा कि हम जाते हैं। वह अपने वेश में गया—एक तरफ धनुष है, एक तरफ तलवार, ढाल है। बूट-सूट कस कर गया। यज्ञ उसका धनुष, बाण और खड्ग देखकर भागा। आगे-आगे यज्ञ और पीछे-पीछे वो राजा। वो आवाज दे कि भई ठहरो। क्यों डरते हो? मैं तुमको मारूंगा नहीं। हम तो तुमको घर ले जाने आए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं। वो कहता है माफ करो भाई। हमको तो तुम्हारा धनुष बाण देख कर डर लगता है। हम तो तुमसे बात भी नहीं कर सकते। तुम चले जाओ। आखिर वह क्षत्रिय थक कर वापिस आया। वैश्य, ब्राह्मण और शूद्र पूछने लगे, क्यों भई, यज्ञ मिला नहीं ? मिला तो जरूर किंतु हमको देखकर डर गया। भागा, हम भी दौड़े उसके पीछे। थक गये और वापिस आ गए। वैश्य कहने लगा, अच्छा हम जाते हैं। उसने अपना तराजू बाट लिया, जो उसका औजार है, लेकर चला। यज्ञ ने देखा कि यह कौन आया ? जब उसने देखा कि तराजू है और पाँच सेर का बाट हाथ में है तो यज्ञ फिर भागा। यह तो हमारा सिर तोड़ेगा। इतना बड़ा बाट लिया है और यह तराजू है। इसमें बाँध-बुँधकर कुछ करेगा, तो भागा। वो भी पीछे दौड़ा। नहीं हाथ आया तो वह भी थककर वापिस आ गया। क्यों आया नहीं ? नहीं, वह तो भाग गया। शूद्र बोला, हम जाएँ। तुम क्या करोगे ? जब दोनों से नहीं आया तो तुमसे थोड़े आएगा ? तो अन्त में ब्राह्मण गया। वह धोती, तिलक, हाथ में लोटा, आसन, बगल में पोथी दबाई। पहुंचा नंगे पैर। यज्ञ ने समझा कि यह तो कोई सौम्य आदमी है। तो यज्ञ बैठा रहा। ब्राह्मण पहुंचा, नमस्कार किया। पूछा क्या है ? लोग आपके दर्शन करना चाहते हैं। तुम गाँव में चलो हमारे साथ। लेकिन हम तुम्हारे घर में रहेंगे, यज्ञ ने कहा। किसी दूसरे के घर में कहीं नहीं जायेंगे। जो दर्शन करे वहीं आकर करे। हम ऐसा ही प्रबन्ध कर देंगे। खैर, यज्ञ ब्राह्मण के घर आ गया। चौका लगाया और आसन लगा कर बैठा दिया। अब बाहर लोगों की भीड़ हो गई यज्ञ का दर्शन करने के लिए। बाहर शोर होने लगा। यज्ञ ने पूछा, यह क्या हल्ला है ? बोले—लोग आपका दर्शन करने आए हैं। अब आपकी आज्ञा हो तो हम इनको बुलाएँ। यज्ञ कहने लगा यदि तुम्हारे जैसा वेश बना कर आएँ तो तुम उनसे पूछ लो, अगर स्वीकार हो तो आयें अन्यथा वापिस कर दो। उन्होंने कहा ठीक है, हम वैसा ही करेंगे। सभी ब्राह्मण के वेश में दर्शन करने आये। तो यह तो वेश की बात हुई। कहने का अर्थ यह है कि आज भी अगर क्षत्रिय यज्ञ करेगा तो वह कोट, पाजामा पहन कर नहीं करेगा। उसको धोती लगानी होगी, यज्ञोपवीत, अंगोछा रखना होगा। जैसा ब्राह्मण का वेश है वैसा बनना पड़ेगा। इसलिए तब से यज्ञ में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तीनों जाने लगे और यह नियम बना कि तुम बाहर चाहे जैसे रहो परन्तु यज्ञ में तो यहो वेश धारण करना होगा।

तो मतलब कि वेश का भी प्रभाव होता है। रजोगुणी कपड़ों से मन में कुछ रजोगुण जाग जाता है। सात्विक कपड़ों से सतोगुण जागता है। तामसी कपड़ों से तमोगुण जागता है। तो सात्विक वेश, सात्विक भोजन से सद्भावनाएँ जगती हैं तथा दुर्वासनाएँ दब जाती हैं और यहाँ तक दब जाती हैं कि फिर उनको जागने का मौका नहीं मिलता। फिर धीरे-धीरे सद्भावनाओं से वह निर्गुण हो जाता है क्योंकि गुणों के अन्दर संसार है—

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्॥
गी० २-४५

गुणों के अन्दर तो यह संसार है और गुणों से ऊपर परमात्मा है, गुणातीत है। परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ना है तो जैसा परमात्मा है, वैसा तुम बनो। तुम कुछ और हो, परमात्मा कुछ और है, यह तो फिर मेल नहीं खाता। किंतु जैसे परमात्मा गुणातीत है वैसा बनो। गुण तो प्रकृति के धर्म हैं। प्रकृति में विषमता रहती है। परमात्मा में विषमता नहीं। वह तो सम है—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्यामयिते तेषु चाप्यहम्॥ गी० ९-२९

तो ऐसा निर्गुण है वह परमात्मा। जब मनुष्य भी निस्त्रैगुण्य हो जाय तो वह परमात्मा के पास बैठने का अधिकारी हो जाता है। इसलिए भगवान् कहते हैं कि तुम गुणत्रय से ऊपर उठो। तीनों गुणों के बन्धन में मत फँसो।

एकदम तो गुणातीत नहीं हो सकते। तो पहले रजोगुण और तमोगुण को दबाने के लिए सत्वगुण को बल देना पड़ता है। क्योंकि तीनों गुण आपस में विरोधी हैं। हम अगर सत्वगुण की सहायता करेंगे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो सतोगुण को बल मिलता है, वह जाग जाता है। सतोगुण की सहायता क्या है– हम सात्विक भोजन करें, सात्विक वेश रखें, सात्विक ग्रन्थ पढ़ें और सात्विक पुरुषों में ही रहें। परिणाम यह निकला कि रजोगुण और तमोगुण दब जाते हैं। जब सतोगुण बढ़ जाय तो परमात्मा तो उससे भी ऊपर है। तब सतोगुण को भी छोड़ा जाता है। निस्त्रैगुण्य की जो अवस्था है वह गुणातीत अवस्था है। वहाँ जब पहुंचा जाता है तब परमात्मा और उसमें कोई भेद नहीं रहता। इसलिए लिखा है—

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्येस्थितमनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः॥ गी०- ५-१९

वह पुरुष ब्रह्म रूप ही है, जिनका मन समभाव में स्थित हो गया। समभाव का अर्थ है कि गुणों के अनुसार जिनके मन में कोई विकार नहीं होता है। बाहर की प्रकृति में विकार होते रहते हैं। राजस, तामस, सात्विक– इनके अनुसार हमारो अन्दर की प्रकृति में विकार होता है। सात्विक प्रकृति जब सामने आती है तब हमारे अन्दर भो सत्वगुण बढ़ता है। राजसगुण सामने आने पर अन्दर में रजोगुण बढ़ जाता है। तामस में तामसगुण बढ़ता है किन्तु कहते हैं कि बाहर के गुणों का प्रभाव चाहे जैसा हो पर हमारे अन्दर की प्रकृति पर उसका कोई प्रभाव न पड़े– इसको बोलते हैं समभाव में स्थित।

क्योंकि निर्दोष का ही नाम ब्रह्म है। सदोष का नाम जीव है। ऐसे तो चेतन एक ही है सर्वत्र। परन्तु जब उसमें दोष उत्पन्न हो जाता है– दोष होते हैं– देह, इन्द्रिय आदि तथा बाहर की प्रकृति के सम्बन्ध से। जब दोषमयी प्रकृति से उसमें दोष हो जाता है, तो साधना द्वारा अपना दोष निकाल लेते हैं, तो फिर वही ब्रह्मरूप है– निर्दोषंहि-समंब्रह्म– निर्दोष वस्तु ही सम ब्रह्मरूप है– तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः। तो वे लोग ब्रह्म में ही स्थित हैं। सुग्रीव ने कहा न रामजी को– हे भगवन्—

नारि नयन सर जाहि न लागा।
घोर क्रोध निसि तम जो जागा॥
लोभ पास जेहि नर न बन्धाया।
सो नर तुम समान रघुराया॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्त्री का नेत्र रूपी बाण नहीं लगा अर्थात् जिसमें काम का अंकुर पैदा नहीं हुआ और क्रोध रूपी अंधकार से भरी रात्रि में जो जगा रहा है, अंधा नहीं हुआ यानी क्रोध के जो अधीन न हुआ। समय पर क्रोध करना और बात है और क्रोध के अधीन होना और बात है। जो लोभ में नहीं फँसा, वह तो तुम्हारे समान ही है भगवन्। उसमें और तुममें कोई फर्क नहीं। तो काम, क्रोध, लोभ के वशीभूत होना यही जीव भाव है। काम, क्रोध, लोभ को अपने वश में रखना यह ईश्वर भाव है। रजोगुण, तमोगुण के कारण से जब जीवात्मा आवृत्त हो जाता है, तो इसमें फिर दानव जाग जाता है। इसीलिए सतोगण, रजोगुण तो हैं ही, वो तो जागे ही रहते हैं। परन्तु जब मनुष्य प्रयास करता है– सत्संग द्वारा, सात्विक अन्न द्वारा, सात्विक वेश द्वारा, तो उसमें सतोगुण जाग जाते हैं। तो देवता जाग गया। इसलिए ये साधन हैं। पहले मनुष्य बने, फिर देवता बन ही जाता है। देवता के बाद वह ईश्वर बन जाता है। तो यों जीवन का उत्थान होता है। इसी के लिए मनुष्य का शरीर है। मनुष्य शरीर के सिवाय ऐसा कोई और कर नहीं सकता है। परमात्मा ने मनुष्य शरीर में ऐसी एक योग्यता दी है जिसके कारण से यह अपने आत्मा का उत्थान कर सकता है। इसलिए इसको आज्ञा है—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥ गी०- ६-५

हे अर्जुन यह शत्रु भी आप ही है और मित्र भी अपना आप ही है। इसका दूसरा न कोई शत्रु है न मित्र। दूसरा शत्रु मित्र तो हम बना लेते हैं। परन्तु स्वभाव से, प्रकृति से शत्रु-मित्र कोई नहीं है। हाँ, कुछ ऐसे भी हैं जिनमें स्वाभाविक शत्रुता मित्रता है– जैसे बिल्ली-चूहा। इस तरह साँप और चूहा। सिंह और मृग–इनका स्वाभाविक बैर है। जल और अग्नि इनका स्वाभाविक बैर है। परन्तु मनुष्य का स्वाभाविक बैर नहीं है। ये तो प्रकृति के अनुसार होता है। हमारे से किसी का काम बिगड़ जाए तो वह शत्रु हो जाता है। हमारे से किसी का काम बन जाए तो मित्र बन जाता है। शत्रु-मित्र हो जाते हैं, मित्र शत्रु हो जाते हैं। तो ये हमारे अपने ऊपर निर्भर है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो आत्मा अपना आप ही शत्रु है, अपना आप ही मित्र है। कैसे ?– जिसने अपनी इन्द्रियों से अपना मन और अपनी आदतों पर नियन्त्रण किया हो, अपने मन को काबू में किया हो, वो अपना मित्र आप है बस। और जो इन्द्रियों के आदतों के अधीन अपने आप हो गया-उनका दास बन गया–तो शत्रु हो गया। उसके लाखों शत्रु खड़े हो जाते हैं। स्वार्थी मनुष्य के कितने शत्रु हो जाते हैं। इसलिए अपने आत्मा का, अपने जीवन का मनुष्य उद्धार करे। अर्थात् इन्द्रियाँ, मन, आदतें–इनका दास नहीं बने बस। मनु जी ने साफ लिख दिया—

आपदाँ कथितः पंथा इन्द्रियाणामसंयमः।
तज्जयः संपदां मार्गो येनेष्ट स्तेन गम्यताम्॥

आपत्ति का मार्ग क्या है ? इन्द्रियों का असंयम अर्थात् इन्द्रियों का गुलाम बन जाना ही आपत्ति का मार्ग है। उनको जीत लेना सम्पत्ति का मार्ग है। हमने दोनों मार्ग बता दिए। तुमको जो अच्छा लगे उस पर चलो। आपत्ति अच्छी लगे तो इन्द्रियों का दास बनो। सम्पत्ति सुख अच्छा लगे तो इन्द्रियों का जय करो। रास्ता दो ही हैं। उनके जय का उपाय लिखा। इन्द्रियों को हम वश में कैसे कर सकते हैं ? तो कहा कि इसके लिए उपाय एक ही है। कोई कहे कि मैं देखना छोड़ दूँ तो फिर देखना जय हो गया। तो ऐसे नहीं होता है। दर्शन त्याग देने से नेत्र का जय नहीं हो सकता है। कानों से शब्द सुनना छोड़ दें तो उससे श्रोत का जय हो जाय यह बात नहीं। और खाना छोड़ दें तो रसना का जय हो जाय। यह उपाय नहीं है—

न तथैतानि सम्यन्ते
सन्नियन तु न सेवया

इन्द्रियों के भोग बंद करने से उनका संयम नहीं होगा बल्कि—

विशेष षम प्रजष्ठानि
यन्या ज्ञानेन नित्यसः

इनका जय होता है विचार से। किस कारण से मन इन्द्रियों और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विषयों में भटकता है ? उसके कारण खोजो। तो कारण क्या है ? कारण है—इनमें सुख बुद्धि और सत्य बुद्धि। मनुष्य में अनादि काल से एक वासना बैठी है कि इन संसारी पदार्थों से ही हमारा कल्याण हो जायेगा। मेरी रक्षा हो सकती है। अमृत की प्राप्ति हो सकती है। ये भी एक प्रकार मिथ्या अभिमान हो गया है। एक आग्रह जो अनादिकाल से बैठा है। इसको मन से निकाल देना है कि इनसे हमारा उत्थान नहीं हो सकता। देखो एक आदमी गिरने लगे और गिरने से अपने आपको बचाने के लिए किसी ऐसी चीज को पकड़े कि वो हाथ लगाते ही पहले गिर पड़े। तो बोलो वो गिरने से बच सकता है कभी। क्योंकि जिसका सहारा उसने लिया वह तो आप गिरा हुआ है। इसलिए जो स्वयं गिर सकता हो वो कभी गिरने वाले को रोक नहीं सकता। और यदि कोई ऐसा पदार्थ है कि खुद नहीं गिरे तो उसको पकड़ कर बचा जा सकता है। किसी वृक्ष को पकड़ ले तो गिरने से बचा जा सकता है।

इसी तरह से संसार के सारे पदार्थ गिरने वाले हैं, नष्ट होने वाले हैं। तो जो कुछ नष्ट होने वाला है, वह हमें कैसे बचायेगा ? दूसरा दृष्टांत दिया उपनिषद् में। जैसे एक नौका होती है, उसमें छिद्र है, पानी भर रहा है। उसमें बैठकर कोई पार करना चाहे तो छिद्र वाली नाव खुद ही डूब जाएगी। वह हमको क्या पार करेगी ? हमको तो वो पार कर सकती है जो स्वयं न डूब सके। जिसमें स्वयं तैरने का सामर्थ्य हो—वो हमको तार सकता है।

जो जन्म, जरा और मृत्यु के भय से छूटने के लिए संसारी पदार्थों का अवलम्बन लेता है वह ऐसा आदमी है जैसे कोई अत्यन्त छोटी नाव में बैठकर महासागर पार होना चाहे। छोटी नाव से तो छोटी नदी, नहर आदि पार किया जा सकता है। बस, इतना ही वो काम दे सकती है। समुद्र की तरंगों में, तूफानों में उससे काम नहीं चलेगा। संसारी पदार्थ एक छोटी सी नाव हैं—यहाँ के काम में कुछ सहायक हो सकता है। तुम कहो कि इससे संसार सागर पार कर जायेंगे, तो यह झूठा बात है। उसके लिए भगवान् ने कहा है कि ज्ञान रूपी एक बड़ा जहाज है—उसी से संसार सागर को पार किया जा सकता है। इसको याज्ञवल्क्य ने परम धर्म कहा है। एक है परम धर्म, एक है अपर धर्म—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इज्याचारदमाहिंसा दान स्वाध्याय कर्मणाम्
अयंतु परमो धर्मो यद्योगेनात्म दर्शनम् ।

दो धर्म हैं– एक अपर धर्म, एक पर धर्म। अपर धर्म क्या– यज्ञ करना, अहिंसा, जितेंद्रियता, सत्य स्वाध्याय और पुण्य कर्म हैं– ये जो शास्त्रिय कर्म हैं– ये अपर धर्म हैं। ये दानव से मानव या देव बनाते हैं। परन्तु मृत्यु के भय से ये भी नहीं छुड़ाते। जन्म-मरण का जो सबसे बड़ा बन्धन है–वो इससे नहीं छूटता। किंतु योग के द्वारा आत्म-दर्शन हो जाता है।

द्रष्टा दृष्टिमात्र– देखने वाला जो चेतन है वह दृशीमात्र है-यानी ज्ञानस्वरूप है। उसमें और कुछ नहीं है परन्तु वृत्तियों में प्रतिबिम्बित होकर वह उनके ही आकार का दिखाई पड़ता है। जैसे गौरवर्ण का पुरुष काले काँच में काला दिखाई पड़ता है। काला वह नहीं है, बल्कि दर्पण काला है। इसी तरह आत्मा जो कि ज्ञानस्वरूप है, वह बिल्कुल शुद्ध निर्मल है। उसमें कोई दोष नहीं है। पर जब दोष वाली बुद्धि में प्रतिबिम्बित होता है तो वैसा बन जाता है। यही उसके जन्म-मरण का कारण बनता है। जब हम बुद्धि को निर्मल कर लेते हैं तो उसका शुद्ध रूप दिखाई देने लगता है। बुद्धि और पुरुष दोनों की स्वच्छता जब एक जैसी हो जाती है–बुद्धि में भी बाहर का कोई रंग नहीं है, आत्मा में तो है ही नहीं, तो शुद्ध बुद्धि में प्रतिबिम्बित होने वाला आत्मा अपने स्वरूप में झलकता है। इसी का नाम है–कैवल्यम्। तो हमारा कर्त्तव्य यही है कि संसार के पदार्थों में तुम सुख बुद्धि न करो। यह सुख तो कहने के लिए है और इस जीव को परमात्मा से विमुख करने के लिए यह सुख है। इसका काम यही है कि ये किसी तरह से परमात्मा की तरफ न जाय। फँसा रहे जाल में। जब देखता है कि यह परमात्मा में जाने योग्य न रहा तो वह भी फिर चला जाता है। अब मौज करो–न यह न वह।

दुविधा में दोनों गए,
माया मिली न राम।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

माया के आकर्षण में फँस कर तो हमने राम को छोड़ा और माया फिर हमको छोड़कर चली गयी। हम दोनों से गए न– न माया के रहे न राम के। इसलिए इसका यह परिणाम निकलता है कि मनुष्य दोनों तरफ से वंचित रह जाता है। इसके आकर्षण में फँसना नहीं है। इससे इतना ही सम्बन्ध रखें जितना कि लौकिक जीवन के लिए अनिवार्य है। इससे अधिक सम्बन्ध रखना, बन्धन का कारण बन जाता है। वो कहते हैं कि इन्द्रियों का जय वैसे नहीं होता कि उससे विषय भोगे ही नहीं।

तो ज्ञान के द्वारा पूरा निरोध होता है। ज्ञान क्या कहता है कि– ज्ञान सम्य गवेक्षणं–ज्ञान नाम है कि जो वस्तु जैसी है उसको वैसा ही समझना। वस्तु है कुछ और समझा कुछ और। इसका नाम है अज्ञान। भ्राँति है न। विपरीत ज्ञान। तो जैसा संसार के पदार्थोंका स्वरूप है उसको तुम वैसा स्वीकार कर लो और जैसा आत्मा का स्वरूप है उसको वैसा स्वीकार करो बस, यही ज्ञान है– ज्ञानं सम्य गवेक्षणम्–यानी ठीक-ठीक देखना ज्ञान है। तो संसार के पदार्थ असत्, जड़, दुःख रूप हैं। इनको जड़ दुःख रूप में ही देखो। इसको सद्रूप–स्थायी, चिद्रूप और आनन्द-रूप मत समझो। सत्चितरूप आनन्द स्वरूप तो आत्मा है। जब यह विवेक हो जाय और मनुष्य की बुद्धि उसको स्वीकार करने लगे तो फिर इन्द्रिय अपने आप रुक जाती हैं। दोष उसका सामने आना चाहिए।

जैसे देखो एक पिता ने अपने हाथ में सफेद फिटकरी पकड़ी है। छोटा बच्चा आया उसने समझा कि मिश्री है। वो बाप से कहता है कि हमको मिश्री दो खाने के लिये। बाप कहता है कि मिश्री नहीं है फिट-करी है। वो कहता है कि नहीं यह मिश्री है तुम देना नहीं चाहते हो। क्यों नहीं देंगे। किंतु यह तो फिटकरी है। मिश्री नहीं है। वो नहीं मानता है। जब नहीं मानता तो बाप उसको छोटा सा टुकड़ा दे देता है कि तुम खाओ। उसने मुँह पर रखा और लगा थू-थू करने। अब बाप उसको कहे कि लो और खा। अब वो खाएगा क्या? क्यों खायेगा? क्योंकि दोष अपरोक्ष हो गया। इसी तरह संसार के पदार्थों में दोष तो हैं ही। सबसे बड़ा दोष तो यह है कि यह नष्ट हो जाता है। कुछ दिन हमको खुश करके और चलता बनता है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःख यो नय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषुरमते बुधः ।। गी०- ५-२२

ये आदि अंत वाले पदार्थ हैं । इसमें बुद्धिमान तो नहीं फँसता । जो इनमें फँस गया वह बुद्धिमान भी नहीं । इसलिये सबसे उत्तम साधन ज्ञान है । मनु जी ने भी यही कहा है । वे तो कर्मकाण्डी हैं न ? उनका कहना है कि साधनों से इन्द्रिय जय नहीं होता है—

यथा ज्ञानेन नित्यशः

ज्ञान और विचार से वस्तु के स्वरूप को यथार्थ अनुभव कर ले, अपरोक्ष कर ले तो उसमें फिर जायेगा नहीं । जिसने एक बार फिटकरी खा ली अब वो दुबारा खाएगा भला ? बल्कि कोई खाने को दे और लालच भी कुछ दे तो भी नहीं खाएगा । क्योंकि उसका दोष वह प्रत्यक्ष देख चुका है । जिस पदार्थ का दोष सामने आ जाए तो उसके प्रति मन और इन्द्रियाँ जाती ही नहीं । तो हो गया न इन्द्रियों का जय । ये कहते हैं कि संसार के स्वरूप का अनुभव हो जाए– कुछ शास्त्र से, कुछ अपने अनुभव से, तो फिर इन्द्रियों का जय अपने आप होता है । यही संपत्ति का मार्ग है और यही परम धर्म है—

यद् योगेनात्मदर्शनम्

योग में इसलिए कहा कि उसमें थोड़ा साधन है । आत्मदर्शन का साधन करना होता है । योग क्या है– योग में दो भाग हैं– अभ्यास और वैराग्य । पतञ्जलि ने लिखा—चित्तवृत्ति का निरोध योग है । चित्त में जो बाहर की कल्पना फिरती रहती है, इसको रोकना ही योग है । बाहर के सम्बन्ध से चित्त में कोई परिणाम न हो । ऐसी अवस्था का नाम योग है । उसके उपाय दो हैं—

अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः
योग– १-१२

अभ्यास से और वैराग्य से उसका निरोध हो जाता है । तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अभ्यास और वैराग्य को समझने के लिये उन्होंने बड़ी अच्छी कल्पना बना ली—

चित्त नदीनाम् उभयतो वाहिनीनाम्

चित्त को एक नदी बताया। यह नदी दोनों ओर बहती है। चित्त तो है बड़ा पवित्र पर जब रजोगुण और तमोगुण के प्रवाह में वह जाता है तो यह खारा हो जाता है। जैसे नदी का जल सागर में आने पर। मनुष्य के जीवन को निकम्मा बना देती है। फिर मनुष्य पशु से भी खराब हो जाता है। यदि इसको रोककर सतोगुण का प्रवाह चला दिया जाता है तो यही मनुष्य देवता और ईश्वर बन जाता है। वो प्रक्रिया उन्होंने लिखी है। तो कल इस पर प्रकाश डालेंगे कि किस तरह से अभ्यास और वैराग्य होता है।

ॐ पूर्णमदः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हमारे इस जड़ शरीर में जो चेतनता डालने वाला तत्त्व है, उसी को पहचानो। देखो वह कौन है? उससे तुम्हारा सम्बन्ध क्या है? इन बातों का निर्णय करना विचार कहलाता है। विचार से ही सत्य-असत्य का निर्णय भी होता है। इसीलिए शंकराचार्य जी ने कहा है—

चितस्य शुद्धये कर्म न तु वस्तूपलब्धये
वस्तुसिद्धिर्विचारेण न किंचित् कर्मकोटिभिः।

वस्तु की सिद्धि विचार से होती है। सिद्धि का मतलब है निर्णय। एक तो सिद्धि उत्पत्ति को भी बोलते हैं। जैसे हमारा मनोरथ सिद्ध हो गया। पर यह सिद्धि है आत्मा की, तो उसकी उत्पत्ति तो बनती नहीं, और उसकी पूर्णता भी नहीं बनती। यह तो पहले से ही पूर्ण है। इसलिए यहाँ सिद्धि शब्द का अर्थ है निर्णय। वस्तु का निर्णय—यानी मैं कौन हूं, संसार सत्य है कि मिथ्या है, दुःख रूप है कि सुख रूप है, आत्मा सुखी है कि दुःखी है—इन दोनों बातों में किसी एक पक्ष का निर्णय हो जाना ही वस्तुसिद्धि है। आत्मस्वरूप का निर्णय विचार से होगा। करोड़ों दूसरे कर्मों से आत्मा का निर्णय नहीं होगा। तो फिर कर्म तो निष्फल हो गए। किंतु सर्वज्ञ महर्षियों ने तो कर्मों का विधान किया। बल्कि यहाँ तक कहा है कि—

स्वे-स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः

गी०- १८/४५

अपने-अपने कर्म में लगा हुआ मनुष्य सिद्धि को प्राप्त करता है। जो अपने कर्म का परित्याग करता है उसका पतन होता है। यज्ञ, दान, तपादि कर्मों का त्याग नहीं करना। उनको हमेशा करते रहना। तुम कहते हो कि ये निरर्थक हैं। इनका कुछ उपयोग नहीं। किन्तु ऐसी बात नहीं। चित्त की शुद्धि में ये सहायक हैं। तात्पर्य यह है कि इन कर्मों के द्वारा विचार करने की योग्यता आती है। तो मुख्य साधन तो विचार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। पर विचार करने का सामर्थ्य चाहिए। वकील लोग वकालत क्यों पढ़ते हैं? क्योंकि उनको विचार करने की शैली सिखाई जाती है कि इस प्रकार झूठ सत्य का निर्णय होता है। न्याय शास्त्र का काम भी यही है कि मनुष्य को ऐसी प्रज्ञा प्रदान कर दी जाए कि वह झूठ सत्य का निर्णय कर सके। निर्णय करने का सामर्थ्य कर्मों से आता है। लेकिन यथार्थ का बोध तो विचार से ही होगा—

चित्तस्य शुद्धये कर्म, न तु वस्तुपलब्धये।
वस्तुसिद्धिर्विचारेण न किंचित् कर्म कोटिभिः॥

इसीलिए मोह-मुद्गर में भी कहा—

कुरुते गंगासागर गमनं, व्रत परिपालनमथवा दानम्।
ज्ञानविहिनः सर्वमतेन् मुक्तिर्भवति न जन्मशतेन॥

तो स्पष्ट कहा कि ज्ञानविहीन को मुक्ति नहीं मिलती। इधर गंगासागर को सबसे बड़ा तीर्थ मानते हैं, और ऐसी कहावत है कि—

सब तीर्थ बार-बार, गंगा-सागर एक बार।

एक बार गंगा स्नान से ही आदमी मुक्त हो जाता है, फिर उसकी गंगासागर जाने की इच्छा ही नहीं होती—मतलब वहाँ जाने में कठिनाई बहुत है। जो अमरनाथ जाते हैं वो कहते हैं कि अमरनाथ तो इसका नाम गलत रखा है। असल में तो यह मरनाथ है। इतनी कठिनायी सर्दी, चढ़ाई और खाने-पीने का ढंग नहीं वहाँ। ठंडी की तो लू चलती है, शीतलहर चलती है। मनुष्य का मुख लंगूर जैसा बन जाता है। गौर वर्ण भी काला बन जाता है। अमरनाथ की यात्रा में सबकी शकल काली पड़ जाती है। बर्फ को ठंडी हवा से मुँह झुलस जाता है। देश में आने पर मुख से पपड़ियाँ उतरती हैं। बाद में नयी चमड़ी आती है और तब चेहरा ठीक होता है। जो एक दफा हो आता है दूसरी दफा कान को हाथ लगाता है और कहता है कि अमरनाथ तो आपका झूठा नाम है, सही नाम तो मरनाथ रखनी चाहिए। तो कठिन में तो बार-बार नहीं जा सकते, एक दफे जाना ही बहुत है। सौ साल तक मकर पर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गंगा-सागर जाता रहे। श्रावण पूर्णिमा पर अमरनाथ जाते हैं। आगे-पीछे बहुत बर्फ होती है। माघी को गंगा-सागर में दर्शन होता है। आगे-पीछे पानी रहता है–क्योंकि वह समुद्र में है न। तो कहा कि—

कुरुते गंगा-सागर गमनं, व्रतपरिपालनमथवा दानम्

चाहे सौ जन्म तक गंगा-सागर जाते रहो परन्तु ज्ञान के बिना मोक्ष नहीं होता। और सौ जन्म तक चान्द्रायण आदि व्रत करते रहो लेकिन ज्ञान के बिना मोक्ष नहीं होता। अथवा दान करे–भूमिदान, गोदान, अन्नदान, वस्त्रदान, द्रव्यदान, विद्यादान आदि सौ जन्मों तक करे पर ज्ञान उसको न हो तो—

"मुक्तिर्भवति न जन्मशतेन"

ज्ञान अगर हो जाए तो एक जन्म में ही मुक्ति हो जाय। तो इसको सुनने से ऐसा मालूम पड़ता है कि गंगास्नान, दान, तीर्थ, व्रत आदि का निषेध कर रहे हैं। तो असल में निषेध नहीं है। दान, व्रत, गंगा स्नान आदि अन्तःकरण को शुद्ध करने के साधन हैं, अतः इनको करना चाहिए। किन्तु इन्हीं से मोक्ष हो जाएगा यह भ्रान्ति छोड़ देनी चाहिए। मोक्ष के लिये ज्ञान प्राप्त करना पड़ेगा और ज्ञान श्रवण, मनन, निदिध्यासन, सत्संगादि से होगा। तो यह निषेध किस अंश तक करता है कि कुछ लोग खाली गंगा-स्नान करके श्रवण, भजन, मनन, सत्संग आदि नहीं करते हैं। वो इस विश्वास पर बैठ जाते हैं कि हमने गंगा स्नान कर लिया है और हम मुक्त हो जायेंगे। हमको अब कुछ करने की जरूरत नहीं है। दान वाला यह बात कर बैठता है कि हमने क्षेत्र लगा दिया है, प्रतिदिन सैकड़ों आदमी खा रहे हैं, अब तो हम मुक्त हो जायेंगे। अब कुछ और साधन नहीं करना है। तो इस बात की निन्दा नहीं है कि जप-तप तीर्थ व्रत दान आदि बुरा है। उसमें अन्तःकरण की शुद्धि होती है उसे करना चाहिए। परन्तु इसी भरोसे नहीं बैठना चाहिए कि अब तो गंगा-सागर स्नान कर लिया, अब भजन, विचार आदि साधन करने की क्या आवश्यकता है? मैंने इतना दान कर लिया अब कुछ करने की क्या आवश्यकता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ये जो भावना है—यह गलत है। इसलिए यों समझना चाहिए कि केवल गंगा स्नान, केवल दान, केवल व्रत करने से मोक्ष नहीं होगा, जब तक उसको ज्ञान प्राप्ति नहीं हो—

यज्ञ दान तपः चैव पावनानि मनीषिणाम्। गी० १८-५

यज्ञ, दान, तप आदि मनुष्य के अन्तःकरण को पवित्र करते हैं। पर इतनी पवित्रता होनी चाहिए कि विचार में पवित्रता हो जाय। विचार में प्रवृति होगी तो वस्तु स्वरूप का निर्णय होगा।

ऐसी एक कथा 'छान्दोग्य' में आती है। एक राजा था। उसका नाम था जानश्रुति। तो जानश्रुति राजा को अन्नदान का बहुत व्यसन था। बड़े-बड़े तीर्थों पर, बड़े-बड़े नगरों में और अपने राज्य में तो उसने अनेक सदाव्रत खोले थे। सभी कर्मचारियों को आज्ञा थी कि जिस समय भी कोई आये उसी समय भोजन मिलना चाहिए। चाहे आधी रात को आ जाय तो यह नहीं कह सकते कि भोजन नहीं मिलेगा, लंगर बन्द है। जिस समय कोई भूखा आ जाय उसको भोजन देना है। यदि बनाना चाहे तो सीधा दे दो। इस तरह से उसने लंगर खोल रखे थे और समय पर गुप्तचर भेजता था कि ठीक काम हो रहा है या नहीं। इतना कठोर शासन था उसका। भोजन हमेशा उपलब्ध होता था। उसके मन में धारणा हो गयी कि सब जगह हमारा सदाव्रत ठीक चल रहा है। और बस हमको भगवद् प्राप्ति हो जाएगी। अब और कोई भजन, सत्संग श्रवण आदि करने की आवश्यकता नहीं है। इसी भ्रान्ति में पड़कर फूला नहीं समाता था कि मेरा जन्म-मरण तो कट गया। पर भगवान् तो इस बात को जानता है कि इससे जन्म-मरण नहीं कटता है। किन्तु यह मूर्ख मान बैठा है। जैसे कोई मैट्रिक पास करके मान ले कि विद्या खत्म है। अब और क्या पढ़ना है? अब तो मैं कोई भारी ऑफीसर बन जाऊँगा। किन्तु इसका अभिमान गलत है। इसलिए देवताओं को, सिद्धों को यह बात अच्छी नहीं लगी कि एक मामूली-सा काम करके यह अपने आपको कृत-कृत्य समझे। चूँकि कर्म अच्छा कर रहा है अतः इसको आगे उठाना चाहिए। तो देवताओं ने देखा कि दान तो पुण्य कर्म है। पर इसका फल यही है कि आपने जो दान किया है वो अगले जन्म

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में कई गुणा होकर मिल जाता है। जैसे धरती में बीज डाल दिया तो कुछ दिन बाद १० सेर बीज का १० मन हमको मिल जाता है। तो जिस वस्तु का दान किया हो वही वस्तु कई गुणा होकर मिल जाती है। यह तो दान का फल है। रुपया दिया तो रुपया मिलेगा, अन्न दिया तो अन्न मिलेगा। इसलिए लिखा है—

दानेन भोगी भवति मेधावी वृद्ध सेवया
अहिंसया च दीर्घायुरिति प्राहुर्मनीषिणः।

जो दानी होता है उसको भोग की प्राप्ति होती है, वृद्ध की सेवा करने से ज्ञान की वृद्धि होती है, अहिंसा से दीर्घायु होता है—जो अपनी ओर से सभी प्राणियों को निर्भय कर दे, उसका नाम अहिंसा है—

अभयं सर्व भूतेषु

मैं आज से किसी प्राणी को सताऊँगा नहीं। जो मेरे को सताए उसको भी नहीं सताओ, तो ऐसी प्रतिज्ञा से दीर्घायु होता है, उसकी सब रक्षा करते हैं। ऐसा मनीषियों ने कहा है।

तो दान इसने किया है तो इसको अगले जन्म में बहुत अन्न मिलेगा। परन्तु यह तो मान बैठा है कि अब मुझको आगे कुछ करना ही नहीं है। इसको कैसे उठाया जाये। तो देवताओं का उठाने का अलग तरीका होता है। वो ऐसा वातावरण पैदा कर देते हैं जिससे मनुष्य की आगे की उन्नति आप ही हो जाती है। तो उन्होंने क्या किया कि एक दिन वह गर्मी में छत पर सोया पड़ा था। उसकी आँख खुली तो उसका ध्यान गया अपने कर्मों पर कि सदाव्रत ठीक चल रहा है कि नहीं। तो बड़ा प्रसन्न हुआ कि काम ठीक चल रहा है। कोई भूखा वहाँ से निराश नहीं लौटता। अमुक सदाव्रत ऐसा है, हरिद्वार का भी अच्छा है। इतने में कुछ देवता लोग हँस बन कर उड़कर आए—तो वह जाग रहा था। हँस आगे पीछे थे। निकलने लगे तो राजा के ऊपर से ही निकलना था, तो पिछला हँस अगले हँस को बोलता है कि अरे, अंधे देखता नहीं, नीचे कौन सो रहा है? कौन है? जानश्रुति राजा सो रहा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। उसने सुना कि मेरा नाम लिया तो उनकी बात सुनने लग गया। तो पिछला हँस कह रहा है कि अरे मूर्ख देखता नहीं राजा जानश्रुति कितना दानी—इनकी चर्चा ब्रह्मलोक में हो रही है। ब्रह्माजी, इन्द्रजी आदि प्रशंसा कर रहे हैं कि ऐसा अन्नदाता कोई हुआ नहीं। तो इतने पवित्र और यशस्वी आदमी के तू ऊपर से जायेगा। खबरदार ऊपर से निकलेगा तो इसके तेज से भस्म होकर गिर पड़ेगा। खबरदार कि ऊपर से निकला। तो प्रशंसा सुनकर राजा बड़ा खुश हुआ। मेरे दान की महिमा ब्रह्मलोक तक चली गई तो वह फूला। इतने में अगला हँस बोलता है, हाँ मालूम है—अरे जानश्रुति क्या है—एक अन्नदान तो करता है। अन्नदान करने वाले में इतना तेज नहीं हो सकता कि इसके तेज से मैं भस्म हो जाऊँगा। हाँ, एक महात्मा रैक्व हैं कि उनके ऊपर से कोई पक्षी उड़े तो जल कर भस्म हो सकता है। तू खामख्वाह इसकी प्रशंसा क्यों करता है। मालूम पड़ता है, इसके क्षेत्र में तुमने कभी रोटी खाई है, इसी से इसकी बड़ाई करता है। नहीं तो मैं इसके ऊपर से निकल जाता हूं, देखें क्या करता है। ऐसा कहकर झट उसके ऊपर से निकल गया। निकला को उसके पीछे से तीनों भी निकल गए। अब राजा के हृदय में खलबली मच गई। अब वह सोचता है कि मैं अन्नदान को महत्व देता हूं पर इन्होंने तो अन्नदान को गौण बना दिया और रैक्व की प्रशंसा कर रहे हैं कि उसमें तेज है। मेरे में तो वो तेज नहीं। सचमुच मेरे ऊपर से निकल गए, उनका तो कुछ भी नहीं बिगड़ा। तो मैं निकम्मा साधन कर रहा हूं और खामख्वाह अभिमान कर रहा हूं। मुझसे अच्छा तो रैक्व है, जिसकी इतनी प्रशंसा की। उसको रात भर नींद नहीं आयी। उसका सिद्धान्त खंडित हो गया। उसका अभिमान टूट गया, उसकी अभिलाषा पर पानी फिर गया। देवता लोग यही चाहते थे। जैसे संसारी स धनों से सम्पन्न होकर लोग समझते हैं कि अब क्या भजन करना है? ऐसे कुछ लोग दिल्ली में मिले। मैंने पूछा कि क्यों, कुछ भजन करते हो? स्वामी जी आपकी कृपा से सब ठीक है, फिर क्यों भगवान को तंग करें? क्यों उनको कष्ट दें? (हंसी) वे बेचारे सुबह सो रहे होंगे। हम सवेरे-सवेरे तंग करें उनको तो हम ऐसा नहीं चाहते। फिर? तो आप ऐसा आशीर्वाद दे दो कि हमारा ठाट-बाट यों बना रहे। मतलब वे इतने खुश हैं। भगवान् की तरफ क्या जाना? बस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हमारा ठाट-बाट इसी तरह बना रहे। ये आप आशीर्वाद दे दो। मतलब यहां के भोगों में भी प्रतिबन्ध लिखा है। जैसा किसी आदमी को बहुत बड़ी सिद्धि मिल सकती है, किन्तु थोड़े में ही खुश बैठा है कि बहुत है। जैसे किसी को पाँच सौ रुपये की नौकरी मिल सकती है, पर कोई दो सौ की नौकरी पा लिया है और वह उसी में खुश है। आगे के लिए प्रयत्न नहीं करता है। तो वह घाटे में है न ? इस संतोष को प्रतिबन्धक मानते हैं। इसी तरह सांख्यकारिका में इस तुष्टि को प्रतिबन्धक लिखा है। इसको बड़ा फल मिल सकता है पर थोड़े से फल में खुश हो गया कि अब क्या करना है ? इसलिए देवता अधिकार को देखकर उसके संतोष को गिरा देते हैं।

अब जानश्रुति के मन में यह जिज्ञासा बैठ गई कि रैक्व का साधन हमारे साधन से बड़ा साधन है। उसमें अधिक तेज भी है। अतः वह साधना सीखनी चाहिए। तो जिज्ञासा पैदा हो गई न ? अब उसको नींद नहीं आई। तो चिन्ता और नींद का बैर है। कहते हैं कि एक मनुष्य को नींद नहीं आई तो नींद से पूछने लगा कि तू मुझको क्यों छोड़ गई। तो नींद उसको कहती है कि तूने मेरे साथ अन्याय किया। क्या ? कि मैं जनम-जनम की साथिन हूं और मुझमें दोष कुछ नहीं था। तूने मुझको छोड़कर और दूसरी स्त्री से प्रेम कर लिया। अतः हमने तुमको छोड़ दिया। तो चिन्ता तो पीछे आयी न। इसलिए निद्रा पुरानी स्त्री और चिन्ता पीछे आई। तो वह नई स्त्री आ गई। जब पहली में कोई दोष नहीं और नई शादी कर ले तो पहली को तो नाराज होना ही है। तो निद्रा कहती है कि तूने मेरे को क्यों छोड़ा ? और चिन्ता को अपनाया। इसलिए मैं तो आ नहीं सकती। मतलब यह है कि चिन्ता और नींद का विरोध है। अगर मनुष्य के मन में एक भी संकल्प आ जाये तो फिर निद्रा नहीं आ सकती है। दस, बीस संकल्प हो जाएँ तो फिर तो कहना ही क्या ? तो उसको चिन्ता व्याप्त गई कि रैक्व को ढूँढना चाहिये और वह क्या साधन कर रहा है ? उसको करना चाहिए। सारी रात करवट बदलते बीती। सवेरे ही मंत्री को बुलाया। मंत्री घबराया कि मुझसे क्या गलती हुई कि प्रातःकाल बुलवाया। बेतहाशा पहुंचा राजा के पास। क्या आज्ञा है ? आज्ञा यह है कि रैक्व नाम का कोई आदमी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है उसको ढूँढो कहाँ रहता हैं ? फिर वो चला आया। बहुत खोजने पर पता चला कि रैक्व नाम का एक महात्मा है और वो भगवान् का बड़ा प्रेमी है। समवर्ग-उपासना का उपासक है। एकांत में नदी किनारे रह कर अपना भगवत् चिंतन में रहता है। तो राजा को खबर दी। राजा वहाँ गया। सेवा की, प्रार्थना किया और दक्षिणा दी। फिर उससे वह समवर्ग विद्या सीखी। फिर वह संतुष्ट हुआ।

तो मतलब वहाँ अन्नदान की निंदा किसलिए की गई ? अन्नदान बुरा नहीं है। ठीक है। परन्तु वही सब कुछ नहीं है। इसके आगे भी साधन हैं। तो दान तो कर्म है। उपासना का एक फल है। उपासना का फल आत्म तत्व है। इसलिए यह जो गंगासागर का निषेध किया गया तो इसका अर्थ यह नहीं कि गंगा मत नहाओ। बल्कि उसी को सब कुछ मत मान लो। आगे सत्संग भजन भी करना है। गंगा जाकर वहाँ सैर सपाटे नहीं करना किंतु वहाँ महात्माओं के पास जाना, सत्संग करना, भजन करना। क्योंकि यहाँ सत्संग कम मिलता है। वहाँ काफी मिल जायेगा। थोड़ा देश, काल का भी प्रभाव होता है इसलिए—

कुरुते गंगासागर गमनम्
व्रत परिपालनमथवा दानम्।

चाहे कोई कितना ही तीर्थ यात्रा करे, कितना ही व्रत करे और कितना ही दान करे, पर यदि ज्ञान के साधन नहीं करता है तो इनका फल तो मिल जाएगा, परन्तु वह होगा–विनाशी फल। इसलिए—

वेदेषु यज्ञेषु तपः स चैव दानेषु यत् पुण्य फलं प्रविष्टम्
अव्येति तत् सर्वमिदं विदित्वा योगी स्थानमुपैति चाद्यम्।
—गी० ८-२८

वेदों के अध्ययन से, यज्ञ करने से, दान से और तप से जो कुछ होता है, वही फल सब कुछ नहीं है। उससे आगे हमको कोशिश करनी है।

लोग समझते हैं कि देखो जी शंकराचार्य ने तो गंगा सागर का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निषेध कर दिया। गंगा स्नान का निषेध नहीं है। पर गंगा स्नान से ही सब कुछ मानकर चुप नहीं बैठना। बल्कि आगे चलो। जैसे आठवीं पढ़ के विद्या समाप्त नहीं होती। इसका अर्थ नहीं कि आठवीं पढ़े ही नहीं कोई। नहीं, आठवीं पढ़ो पर वहीं रुको नहीं। अभी तो विद्या बहुत बाकी है। यों आगे जाने के लिए पिछले साधन की निंदा होती है। उसके त्याग के लिए नहीं। इसलिए लिख दिया कि–ज्ञानविहीनः सर्व-मतेन– जब तक ज्ञान न हो जाए, तब तक– मुक्तिर्भवति न जन्मशतेन्– तब तक सैकड़ों जन्म में भी मोक्ष नहीं हो सकता। तो मोक्ष के लिए ज्ञान प्राप्त करना है और ज्ञान का मूल है विचार। इसीलिए—

वस्तुसिद्धिविचारेण, न किञ्चित् कर्म कोटिभिः।

तो कर्म निरर्थक नहीं है। चित्त की शुद्धि के लिए कर्म आवश्यक है। यानी विचार करने का सामर्थ्य हमको कर्मों से पवित्र हृदय में उत्पन्न होता है और हृदय की पवित्रता इन पवित्र कर्मों से होती है। इसलिए कहा कि तुम अपने आत्मनिर्णय के लिए विचार करना। तो विचार क्या है? विचार का स्वरूप यही है–विचार नाम खोज का है। जैसे मरुस्थल में जाते हैं। हमने वहाँ बड़ा भारी झील खोज निकाला। अब प्यास है और नदी ठीक है कि नहीं, इसका निर्णय जिस साधन से करेंगे उसी का नाम विचार है। तो वहाँ जाना पड़ेगा। अगर सचमुच है तो नदी मिलेगी और पानी पियेंगे, प्यास बुझेगी और नदी दीख तो रही है किन्तु वहाँ गए तो कुछ न मिला। खाली रेंत पड़ी थी। तो अब निर्णय हो गया कि यह नदी झूठी थी। प्रतीति मात्र थी। अगर जाएँ ही नहीं तो क्या निर्णय होगा? दूसरे के कहने से उसका अपरोक्ष ज्ञान नहीं होगा। दूर से दूसरे का वचन सुनकर यदि हम निश्चय कर लें कि नदी वहाँ है ही नहीं और वहाँ जायें ही नहीं तो यह निश्चय भी हमारा ठीक है परन्तु परोक्ष है। और यदि जाकर देख लें कि यहाँ रेत के सिवाय कुछ भी नहीं है तो यह अपरोक्ष अनुभव होगा। अपरोक्ष अनुभव में मनुष्य की कृतकृत्यता और अपने पुरुषार्थ की समाप्ति हो जाती है। यह जीवन का अंतिम लक्ष्य है कि हमको अपने स्वरूप का ज्ञान कर लेना है। जगत् मिथ्या है, दुःख रूप है–इसका अपरोक्ष अनुभव करना चाहिए। अब देखो संसार में सुख है अथवा नहीं? आज सभी प्राणी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यही मानते हैं कि संसार सत्य है, सुख रूप है। यह अनादि काल की बात है—

संसारः परमार्थोयं संलग्नश्चात्मवस्तुनि
इति भ्रांतिरविद्यास्यात् विद्ययैषा निवर्तते।

यह भ्रांति हमको अनादिकाल से बैठी है कि संसारी पदार्थ सत्य हैं और इनसे हमको सुख और शान्ति मिल जायेगी, इसलिए इनको प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं। तो यह तो अनादि काल का हमारा संस्कार है और उसी संस्कार से प्रेरित होकर हम संसार की तरफ प्रवृत्त होते हैं। पर विचार की शैली तो प्रत्यक्ष अनुभव की है। अच्छा तो एक धन को ले लेते हैं–सबसे अधिक प्रिय धन है। तो धन के पीछे लोग पड़ते हैं और उसमें सुख शांति संतोष मानते हैं। तो विचार शैली यह कहती है कि बतलाओ धन में कितना सुख है? इसका उत्तर दो। अब कहेगा कि लाखों में है। तो जिनके पास लाख है उनको तो सुखी होना चाहिए न। तो लखपति तो भारतवर्ष में हो लाखों होंगे। तो उनसे पूछो भाई तुम सुखी हो पूरे? यदि वो कहें–हाँ। तो अगर तुमको दस लाख मिलें तो लोगे कि नहीं? तो अब जब लाख वाला दस लाख के लिए लालायित है, प्रयत्नशील है कि मैं किसी तरह से दस लाख वाला बन जाऊँ। तो फिर जब एक लाख में ही सन्तुष्ट था, तो अब दस लाख के पीछे क्यों दौड़े? तब कहो कि एक लाख में नहीं सुख तो दस लाख में मिलेगा। कोई बात नहीं, दस लाख वाले भी हैं। उनसे पूछो क्यों भाई, अगर तुमको करोड़ मिले तो लोगे नहीं? तो बोलेगा क्यों नहीं लेंगे? वह तो करोड़ के लिए कोशिश कर ही रहा है। तो यदि दस लाख में वो चीज उसको मिल रही है, जो वो चाहते हैं, तो फिर करोड़ के पीछे क्यों दौड़ रहे हैं? कोई कहे कि नहीं जो करोड़ वाले को सुख मिलेगा। तो करोड़ वाले से पूछो– बोलो तुम्हारा क्या हाल है? वो कहते हैं कि हम दस करोड़ वाले हो जाएँ। तो यह जो आगे-आगे दौड़ हो रही है इसका तात्पर्य क्या है? तो इससे यह सिद्ध होता है कि जो चीज यह चाहता था उसे लाख में नहीं मिली, पहले यह समझता था कि लाख में मिल जायेगी। परन्तु नहीं मिली। जैसे कोई घड़ी खरी-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दने किसी दुकान पर गया किंतु वह वहाँ नहीं मिली। फिर वह दूसरी दुकान पर गया वहाँ भी नहीं मिली। तो अब पूछा जाए कि पहली दुकान से आगे क्यों गया? तो वह यही कहेगा कि वहाँ पर हमारी जरूरत की चीज नहीं मिली। जाने की क्या आवश्यकता है? किन्तु आगे बढ़ना सिद्ध करता है कि उसको चीज मिल जायेगी तो फिर वह आगे नहीं जायेगा। मनुष्य जिस चीज को खोजता है, अगर वह मिल जाय तो खोज बन्द हो जातो है। वो फिर आगे नहीं जायेगा। अगर वह खोज रहा है तो अभी उसको मिली नहीं है। भूख पर ले लो। एक आदमी रोटी खाने बैठा। पाँच-सात खा लिया। परोसने वाला फिर आया– फुलके जी? उसने कहा कि दे दो। दो रोटो उसने और डाल दिया। फिर आया और सब खा कर बैठ गये। और चाहिए? दो और ले लिया। फिर आया। और चाहिए? दो और डाल दिया। अब इसका अर्थ यही है कि जब तक वह लेता रहे तब तक वह भूखा है। इसकी तृप्ति नहीं हुई। और तृप्ति जब हो जाए तो देने पर भी कभो नहीं ले। लालच हो साथ में तब भी नहीं ले। इसलिए जब लेना बन्द कर दे और देने वाले से लड़ने को तैयार हो जाए। पंडितों ने एक श्लोक बनाया है–

हूं हूं दद्यात् हाँ हाँ दद्यात् दद्यात् अंगुली तर्जने।
शिरः कंपते तदादद्यात् न दद्यात् सिंह गर्जने॥

कुछ ऐसे हैं जो खाने वक्त बोलते नहीं हैं। अगर वह कहे कि हूं– तो जरूर देना चाहिए उसको अभी पूरी तृप्ति नहीं हुआ। हाँ–कहे तो भी देना। सिर हिलाए तब भी देना। यानी सिर हिला कर मना करे तब भी जरूर देना। जब उठकर लोटा मारने को तैयार हो जाये कि अब तूने दिया तो सिर तोड़ दूँगा। तो तब नहीं देना (हँसी)।

मतलब यह निकला कि जब तक आदमी ले रहा है तब तक भूखा है। जो माँग रहा है वह तृप्त कहाँ से हुआ। जब देने वाला आये बोले कि तुमको दस लाख रुपया देने आये हैं और उसको जब डंडा लेकर मारने दौड़े तो समझो कि धन से तृप्त हो गया। अब बतालाओ धन से कौन तृप्त हुआ है? धन ऐसी वस्तु है कि जो चीज हम धन से चाह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रहे हैं वह इससे नहीं मिल रही है। एक लाख से दस लाख पर मन क्यों गया क्योंकि वहाँ इसको तृप्ति नहीं मिली। परन्तु लोग धन की ओर एक सम्भावना करके जाते हैं कि हो सकता है कि इसमें सुख मिले। पर जब धन मिलने पर भी सुख नहीं मिला तो फिर आगे जाते हैं। इससे विचारवान् पुरुष को यह निश्चय हो जाता है कि धन में वह वस्तु नहीं है जिसको हम ढूंढ रहे हैं। तो अब वृत्ति वहाँ से हटेगी न। इसी तरह संसार के पदार्थ में सुख और शान्ति नहीं है। एक विचार तो यह है। इसको बोलते हैं—अन्वय। दूसरा है—व्यतिरेक।

तो अन्वय-व्यतिरेक के द्वारा यह निश्चय हो जायेगा कि हमें जिस चीज की खोज है, उसे ये संसारी पदार्थ पूरा नहीं करेंगे। तो फिर उसके पीछे दौड़ना नहीं चाहिए। जैसे मृगतृष्णा के जल से कभी किसी की प्यास बुझ नहीं सकती। इसलिए उधर भटकना निरर्थक, समय खराब करना है और अपने आपको और अधिक दुःख में फंसाना है। यह जब निर्णय हो जाए तो उधर से वृत्ति हटेगी।

तो अन्वय से देखा कि संसारी पदार्थों में सुख नहीं है। अब व्यतिरेक को समझेंगे कि क्या है? तो इस विचार शैली से मनुष्य को साफ हो जाता है हमारा रास्ता क्या है।

ॐ पूर्णमदः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आत्मा ही जानने योग्य है

कल गणित के हिसाब से समझाया कि शून्य बटा शून्य और दस बटा दस बराबर हैं अर्थात् जब मनुष्य की सारी इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं तो वह मनुष्य पूरा सुखी होता है। यदि किसी को दस की जरूरत है और नौ मिल जाय तब भी वह पूरा नहीं होता क्योंकि वह तो ९/१० रहेगा। परन्तु दस बटा दस हो गया तो पूरा हो गया। पूरा होना माने समाप्त होना। कहते हैं न ? कि फलाना आदमी पूरा हो गया यानी समाप्त हो गया। पूरा हो गया माने मर गया। तो पूरा का अर्थ है– समाप्त होना, मर जाना। तो जब कहते हैं कि इसकी इच्छा पूरी हो गई तो इसका भी यही अर्थ है कि इसकी इच्छा खत्म हो गई, मर गई। इच्छा कब मरती है ? जब अभीष्ट पदार्थ मिल जाते हैं। इसलिए दस बटा दस वह आदमी है जिसकी दस इच्छायें थीं, उसको दस पदार्थ मिल गए हैं तो इच्छा शान्त हो गई। कोई इच्छा शेष नहीं रह गई। तो किसी इच्छा का शेष रहना–यह है दुःख। और कोई इच्छा न रहना, इसका नाम सुख। अब इच्छा न रहे तो इसके दो तरीके हैं कि एक तो इच्छा हो ही नहीं। देखो जो आदमी नींद में सोया पड़ा है वो सुखी है। क्यों है ? क्योंकि उसको कोई इच्छा नहीं है। इच्छा कोई नहीं है यानो कोई इच्छा उदित नहीं हो रही है। एक राजा इसलिए सुखी है कि उसको इच्छा हुई, वह पदार्थ मिल गया। इच्छा खत्म हो गई। उसकी इच्छा समाप्त हो गई। तो उत्पन्न होकर के खत्म होना या उत्पन्न ही न होना– दोनों बात एक ही हैं। परन्तु उत्पन्न होकर पूर्ण होने में कुछ समय तो लगेगा न। उत्पन्न होने के बाद पूर्ण हो जाये तो ठीक है। बिना पूर्ण बने सुखी नहीं हो सकता। परन्तु पूर्ण होने में समय तो लगेगा ही। उतना बिलम्ब तक दुःख होगा। जिसकी इच्छा उत्पन्न हुई ही नहीं उसको दुःख भी नहीं होगा। इसलिए उन्होंने कहा कि पूर्ण सुखी तत्त्वज्ञानी होता है–

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्म तृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते॥ गीता- ३-१७

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जिसकी रति परमात्मा में है। रत का अर्थ है—तत्परता। वह आत्मा में इतना रम गया कि परमात्मा के सिवाय उसको कुछ दीखता ही नहीं। कोई पुस्तकों में रम जाता है, कोई खेल में रम जाता है। तो रत होना माने तन्मय हो जाना। यानी परमात्मा के सिवाय उसकी वृत्ति कहीं जाए ही नहीं। यानी सबको भूल जाय। एक ही वस्तु उसके सामने रहे तो वो उसमें तन्मय हो गया। आत्मरति—आत्मा में ही जो रम गया—अर्थात् इतना तन्मय हो गया कि कोई वस्तु उसकी दृष्टि में है ही नहीं। इसी को महात्मा कहा, यही संत है—

वासुदेव सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः

सब कुछ उसको वासुदेव ही दीखता है— वासुदेव से इतर उसकी दृष्टि में कुछ नहीं रहता है। यह है आत्मरत, आत्मतृप्त और आत्म-संतुष्ट। तृप्ति उसको बोलते हैं कि जितनी वस्तु चाहिए उतनी मिल जाए। जैसे किसी को पाँच फुल्के की भूख है, पाँच उसको मिल गए तो वह तृप्त माना जाएगा और संतुष्ट उसको बोलते हैं कि जितना मिल जाय उसी में प्रसन्न हो जाए। पाँच की जगह अगर दो भी मिल जायें तो वह दो में भी प्रसन्न है। उसको संतुष्ट बोलते हैं। जितनी चाहिए उतनी मिलना तो तृप्ति है। अगर पाँच वाले को तीन मिले तो वह तृप्त नहीं कहा जा सकता। अभी उसको मिले तो दो और ले सकता है। परन्तु सन्तुष्ट तो वह है जो दो में भी प्रसन्न है। उसके लिए कोई शिकायत नहीं करता कि हमको नहीं मिला। इसलिए—

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौच कृत्वापि न निबध्यते ॥

गी०-४-२२

यानी दैव इच्छा से जो कुछ मिल जाय उसी में वह संतुष्ट है यानी प्रसन्न है। जो आत्मा में ही रत है, तृप्त है, आत्मा में ही सन्तुष्ट है— तस्य कार्यं न विद्यते—उसको कोई कर्तव्य नहीं रहा। कोई कर्तव्य नहीं रहा क्या ? तो आगे कहते हैं—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ।।
गी०- ३-१८

जो कुछ हम कर्म करते हैं उसमें हमारा प्रयोजन रहता है– इस लोक का और परलोक का। जो आस्तिक हैं, जो परलोक मानते हैं– उनको तो दो कर्तव्य हैं। इस लोक का भी और परलोक का भी। जो भौतिकवादी हैं उनको इसी संसार का कर्तव्य होता है तो उस कर्तव्य के लिए उनको कुछ करना पड़ता हैं।

परन्तु किए हुए कर्म से ज्ञानी को कोई प्रयोजन नहीं है। क्योंकि उसको कुछ प्राप्तव्य नहीं है। जब कोई वस्तु अप्राप्य होती है तो उसको पाने के लिए कर्तव्य बनता है। या तो इस लोक का कर्तव्य या फिर परलोक का कर्तव्य, दो कर्तव्य मनुष्य को रहते हैं। कर्म करने का अब उसको कोई कर्तव्य नहीं है। तस्य-उस तत्त्वज्ञानी को अब कर्म करने से कोई लाभ नहीं है। क्योंकि इस लोक का लाभ तो उसको इसलिए नहीं है क्योंकि इस लोक से वह विरक्त है। आत्मज्ञान का अधिकारी वही होता हैं जिसको इस लोक और परलोक के सारे पदार्थों में वैराग्य होता है। वही इसका अधिकारी होता है। योग दर्शन ने कहा है—

दृष्टानुश्रविक विषय वितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम् ।।
यो०द०- १-१५

दृश्य = इस लोक के, अदृश्य = स्वर्गादि लोकों के–ये सारे संसारी पदार्थों में जिसकी तृष्णा, जिसको रुचि समाप्त हो जाय वही वैरागी है। जिसने समझ लिया कि ये तो बाँधने वाले हैं। इनकी हमको आवश्यकता नहीं और उसकी पहचान यही है कि देने पर भी ना ले। उसी को तृप्त बोलते हैं। जो मनुष्य रोटी खा रहा है और परोसने वाले के आने पर ले रहा है। जब आए तो एक दो फुल्का ले ले तो इसका मतलब है कि वह भूखा है। अभी तृप्त नहीं हुआ है। जब लेना बंद कर दे तो समझो कि तृप्त हुआ। तृप्ति को पहचान है कि देने पर भी नहीं ले। जैसे नचिकेता। यमराज ने उसको सब कुछ दिया कि ये ले लो पर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आत्मविद्या मत माँगो। तो उसने कहा कि ये सब तुम्हीं रखो। तो देने पर भी जो न ले वही असल तृप्त है। तो संसारी पदार्थों से जो तृप्त हो गया–तृप्त दो तरह के होते हैं। या तो विचार से या फिर भोग करके। सबको दुःख रूप और विनाशी समझकर और इनसे जिसने रुचि हटा ली है वह तृप्त हो गया। वह है इस ब्रह्मविद्या का अधिकारी। तो देखो ब्रह्मविद्या होने के बाद तो पदार्थों में रुचि हो ही नहीं सकती है। क्योंकि जो ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के लिए ही इनको छोड़ चुका है तो फिर प्राप्त होने पर तो रुचि हो ही नहीं सकती। तो इस लोक के पदार्थ के लिए उनको कोई कर्तव्य नहीं है क्योंकि उनको तो वह चाहता ही नहीं। जब दे रहे थे तब नहीं चाहा तो अब वह क्यों उनकी इच्छा करेगा। इसलिए लौकिक पदार्थों की प्राप्ति के लिए उसको कोई कर्तव्य नहीं। अब रहा मोक्ष–तो मोक्ष के लिए कुछ कर्तव्य हो जाय। तो कहते हैं कि मोक्ष के लिए भी कोई कर्तव्य नहीं है। क्योंकि मोक्ष कर्म साध्य नहीं है। कर्म से मोक्ष नहीं होता है। कर्म से जो फल होते हैं, वो अनित्य हैं—

नास्त्यकृतः कृतेन

नित्य पदार्थ कर्म से कभी नहीं प्राप्त होगा। कर्म से जो होता है, वे हैं– उत्पाद्य, आप्य, विकार्य, संस्कार्य– ये चार प्रकार से पदार्थ प्राप्त होते हैं। अतः इसके लिए भी कुछ नहीं करना है। ज्ञान तो चाहिए मोक्ष के लिए। तो ज्ञान तो उसको हो चुका है न। जब तक ज्ञान नहीं हो तब तक उसको बहुत कर्तव्य हैं। यह तो ज्ञान होने के अनन्तर की बात है। कि–तस्य कार्यं न विद्यते तो ज्ञान के लिए भी उसको कोई कर्तव्य नहीं? क्योंकि उसे वह पा चुका है : अतः—

नैव तस्य कृतेनार्थो ना कृतेनेह कश्चन
गी०- ३-१८

अच्छा, कर्म न सही, परन्तु उसको प्रत्यवाय परिहार के लिए–जो विहित कर्म नहीं करे, उसको एक प्रायश्चित लगता है। जैसे कोई सरकारी कानून नहीं माने तो अपराधी माना जाता है। सरकारी अथवा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

समाज के विधान को मानना होता है। नहीं मानना एक अपराध है। उस अपराध का फिर दंड भोगना पड़ता है। इसी तरह शास्त्र के कुछ नियम हैं, उनको नहीं मानना भी एक अपराध है। तो उस अपराध से बचने के लिए उसको कुछ करना चाहिए। अतः– नाकृतेनेह कश्चन– शास्त्र की आज्ञा के अनुसार यदि वह नहीं बरतता, तो भी उसको कुछ कर्तव्य नहीं। क्योंकि उसने शास्त्र की सबसे बड़ी आज्ञा मान ली। क्या मान ली ? कि—

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितन्यो,
मैत्रेय्यात्मनि खल्वरे दृष्टेश्रुते मते विज्ञात इदूँ सर्वंविदितम् ।।
–वृहदारण्यक- ४/५/६

वेद की सबसे बड़ी आज्ञा यही है। सारा वेद, सारा शास्त्र मनुष्य को इसलिए प्राप्त हुआ कि वो परमेश्वर को जानकर मुक्त हो जाए। सम्पूर्ण बंधनों से छूटकर परम पद की प्राप्ति कर ले। सारे ऋषि, महर्षि और सारे संतों का यही प्रयोजन है।

वेद का तात्पर्य उस परमात्मा को जानने में है बस। जिसने उस अक्षर ब्रह्म को नहीं जाना, उसने वेद पढ़ भी लिया तो क्या फायदा ? उसके लिए कहा कि जैसे करछी खीर में घूमती रहे घंटाभर तो भी उसको खीर का क्या स्वाद ? अथवा—

यथा खरश्चन्दन भार वाही
–श्रीमद्भागवत्

गदहे के ऊपर चन्दन को लाद दिया और हाँक ले चले तो दूसरा गदहा मिल गया। बोला कि तू तो बड़ा किस्मत वाला है। क्या ? कि चंदन का भार उठाए जा रहा है। वो कहने लगा कि ले तू उठा ले। हमको तो चंदन हो चाहे दूसरो लकड़ी हो बोझ में तो कोई फर्क नहीं पड़ता। जैसे चंदन का बोझा उठाने वाला गदहा चन्दन के गुण को नहीं जानता, वैसे ही जिसने परमात्मा को नहीं जाना, उसने वेदों का बोझा ही उठाया है। खामख्वाह दिमाग खपाया। वेद स्वयं भी कह रहा है कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मेरा तात्पर्य तो अक्षर ब्रह्म को जानने में है। जिसने उस अक्षर ब्रह्म को नहीं जाना, उसने सारा ऋग्वेद कंठ भी कर लिया हो तो उसको परम फल नहीं हो सकता। उसको जीवन का असली लक्ष्य नहीं प्राप्त हो सकता। जिन्होंने उस अक्षर ब्रह्म को देखा वही जीवन का आनन्द ले रहे हैं, परमानंद में डूबे हैं। वेद पढ़ने का सबसे बड़ा प्रयोजन है–अक्षर ब्रह्म का दर्शन। यही है–आत्माव अरे द्रष्टव्यः। यदि संसार में आकर कुछ देखना है तो आत्मदर्शन करो बस। बाकी जो दर्शन है वो तो काम का नहीं है। क्योंकि इस दर्शन से तो दुःख ही बढ़ेगा। दर्शन तो वह है जिस दर्शन के बाद मनुष्य में तृप्ति आ जाय और देखने की इच्छा ही न रह जाय। तो वह तो आत्मदर्शन है। तो वेद की सबसे बड़ी आज्ञा है कि आत्मा को देखो–आत्माव अरे द्रष्टव्यः। जिसने आत्म दर्शन कर लिया अब वह छोटी छोटी आज्ञा माने चाहे न माने। इसलिए वो कहते हैं कि—

नैव तस्य कृते नार्थो नाकृते नेह कश्चन

उसको कुछ नहीं भी करने से कोई दोष नहीं है। वेद की आज्ञा परम आज्ञा को मानकर जिसने परमानंद प्राप्त कर लिया हो, उसको और कोई कर्तव्य की आवश्यकता नहीं है। कहते हैं विघ्न निवृत्ति के लिए करें–तो उसकी भी जरूरत नहीं। क्योंकि विघ्न तभी तक आते हैं, जब तक मनुष्य रास्ते में है। हम गाड़ी में चढ़े और चले दिल्ली को। तो जब तक वहाँ नहीं पहुंचते तभी तक गाड़ी उलटने का डर है न। जब घर पहुंच गए तो फिर विघ्न कैसा? तो विघ्नों की शक्ति मार्ग तक ही सीमित है। जब हम लक्ष्य पर पहुंच जाते हैं तो विघ्न कुछ नहीं कर सकते। तत्त्व ज्ञानी तो लक्ष्य को प्राप्त कर चुका है उसको विघ्न नहीं व्यापते। जो संसारी आदमी है उसको विघ्न व्यापते हैं। लिखा है–

कोटयो ब्रह्म विद्यायां तदर्धं हरि मंदिरे।
तदर्धं जाह्नवी तीरे, तदर्धं दक्षिणे करे॥

ब्रह्म विद्या प्राप्ति के लिए जब मनुष्य चलता है तो उसको एक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करोड़ विघ्न मार्ग रोक कर खड़े हो जाते हैं। उनको परास्त करे तब विद्या प्राप्त करे। उसके आधे अर्थात् जो भक्ति मार्ग में यानी सगुण की आराधना में लगाता है, उसके मार्ग में पचास लाख विघ्न आते हैं। ज्ञान में एक करोड़ विघ्न, भक्ति में पचास लाख विघ्न। तीर्थ आदि पुण्य कर्म करने में पच्चीस लाख विघ्न होते हैं और दान करने लगे तो उसमें साढ़े बारह लाख विघ्न आते हैं। इन विघ्नों को पार करके ही साधना किया जा सकता है। तो कहते हैं कि यह तो तभी तक है जब तक दान नहीं दिया। जब दान दे चुके तो विघ्न को क्या करना है। हरकी पैड़ी पहुंचने तक विघ्न है न। जब पहुंच कर स्नान कर लिया तो अब विघ्न क्या करेंगे? इसी तरह जब साकार भगवान् का दर्शन हो जाय तो अब विघ्न कुछ नहीं कर सकते। और जब आत्म दर्शन हो गया, ब्रह्म विद्या मिल गयी तो विघ्न क्या करेंगे?

इसलिये कहा कि विघ्न निवृत्ति के लिए भी कुछ कर्तव्य नहीं। क्योंकि—

तस्य देवाश्च न भूता ईशते

अब देवता भी उसको विघ्न डालने में समर्थ नहीं हो सकते। फिर मनुष्य क्या विघ्न डालेंगे। क्योंकि वह तो पहुंच गया जहाँ जाना था। अब उसको कर्तव्य नहीं रहा—

नैव तस्य कृतेनार्थो ना कृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्व भूतेषु कश्चिदर्थ व्यपाश्रयः॥ गी०- ३-१८

न तो उसको किसी से कुछ लेना न किसी को कुछ देना। तो भला अब क्या कर्तव्य हो। तो तत्त्वज्ञानी अब कर्तव्य से रहित हो जाता है। उसका कोई कर्तव्य नहीं रहता है।

तो कहते हैं कि तत्व ज्ञानियों को तो करते हुए देखा गया है, बहुत कुछ करते हैं। करना और बात है, कर्तव्य और बात। कर्तव्य उसको कहते हैं-जिसके नहीं करने में कुछ डर लगता। उसको डर से वह काम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करना पड़ता है। वो समझता है कि नहीं करूँगा तो मेरा नुकसान हो जाएगा। उसको कर्तव्य बोलते हैं। अपनी मौज से कुछ करे तो उसका नाम कर्तव्य नहीं है। इसीलिए कहा कि—तस्य कार्यं न विद्यते— उसको कोई कर्तव्य नहीं रहता है। अर्थात् अब वह भय से कुछ नहीं करता है। वैसे तत्त्वज्ञानी उपदेश करते हैं, तत्त्वज्ञानी कर्म भी करते हैं, उपासना भी करते हैं। तो वो उनका एक स्वभाव होता है। क्या करें? जब तक जीवन है, और कोई काम तो वे करते नहीं। तो जिसका अभ्यास है, उसी को करते रहते हैं। अगर किसी को शास्त्र का अभ्यास है तो शास्त्र पढ़ता रहा। किसी को समाधि का, किसी को भजन का अभ्यास है तो वह वही काम करता है। तो तत्व ज्ञान के बाद भी वही काम करता है। कोई नई बात नहीं करता। उसका कार्य स्वभावभूत हो जाता है। ऐसे कोई कार्य रहता नहीं है। अब तो वह कृत-कृत्य हो गया। कृत-कृत्य वह होता है जो प्राप्त-प्राप्तव्य हो। जिसको प्राप्त होने योग्य पदार्थ मिल गया। प्राप्त होने योग्य पदार्थ सबको तो है परन्तु ज्ञानी को नहीं। भगवान् ने अपने लिए कहा है—

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥ गी०- ३-२२

मेरे को कुछ भी अप्राप्त नहीं है। इसलिए मेरे को कुछ कर्तव्य भी नहीं है। जब कोई वस्तु प्राप्त करने योग्य हो और प्राप्त न हो तब तो कुछ करना पड़ता है। पर जितने प्राप्त होने योग्य पदार्थ हैं वो सब प्राप्त हो गए तो फिर क्या करना है। अनात्मा तो प्राप्त करने योग्य है नहीं। क्योंकि उसमें तो निश्चय हो गया कि यह तो विनाशी, दुःखरूप और बंधन का कारण है। जो नित्य पदार्थ है वही सुखरूप होता है। जो अनित्य है—आने जाने वाला, वह दुःखरूप होता है। इसलिए शास्त्र कहता है—

स योऽन्यमात्मनः प्रियं ब्रुवाणं ब्रूयात्
प्रियं रोत्स्यतीतीश्वरोह तथैवस्याद् —बृह० १-४-८

जिसके साथ तू आज प्यार कर रहा है, वह कल तुझको रुलाएगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

कल न सही परसों सही। क्योंकि इसको तो- जाना है और तुमने इसके साथ प्रेम कर लिया तो जब जाएगा तो रोना होगा।

एक कोई जमींदार आदमी हल चला रहा था। वो हल का जो लोहा होता है न, उसको कुश बोलते हैं। वह किसी चीज में फँस गया। उसने हल एक तरफ किया। खोद कर देखा तो ताँबे की डेगची निकली। और जब ढक्कन उठाया तो अशरफियाँ भरी हैं। अब तो उसका मन कूदने लगा आकाश में कि इतनी अशरफी आ गईं। अब मेरे को जरूरत क्या है हल चलाने की। अब तो मैं बड़ा मकान बनवाऊँगा और नौकर रखूँगा। वह हल चलाएगा। घोड़ा रखूँगा, गाड़ी रखूँगा। इसी मनोराज्य में वह बह गया। थोड़ी सी उसमें मिट्टी भी पड़ी थी। सोचा कि चलो इसको धोकर साफ कर लें। तो डेगची उठाकर पास की नदी में गया उनको साफ करने। उसने डेगची को नदी में डुबोया। कुछ तो सोने का भार, कुछ डेगची का भी भार, कुछ उसमें पानी पड़ गया और भारी हो गया। जब निकालने लगा तो हाथ से छूट गई। बस गई। नदी इतनी गहरी और वेगवती थी कि न जाने उसको कहाँ बहा ले गई। अब तो उसका मनोराज्य का जगत् नष्ट हो गया। अब किनारे पर बैठकर लगा रोने। हाथ आई थी चली गई। आयी थी चली गई। उधर से उसकी पत्नी आई रोटी लेकर। उसने देखा कि बैल-हल खड़े हैं, वह है नहीं। कहाँ गया? तो समझा कि पानी पीने गया होगा। तो रोटी रखकर पहुंची नदी पर। वो बैठा रो रहा है- "आई थी चली गई।" उसने समझा कोई स्त्री आई थी, चली गई। अब इसके हाथ नहीं आई। अब यह रो रहा है। तो यह हल चलाने नहीं जाता है। तो उसने एक लात मारा पीछे से। (हँसी) कि कौन आई थी? जो चली गई। बता पहले। बतला जल्द। उसने फिर देखा कौन है? यह तो अपनी घरवाली है। क्या बतलाएँ? लक्ष्मी आई थी और चली गई। यह लक्ष्मी कौन है-हमारे मोहल्ले की तो है नहीं। (हँसी) उसने समझा किसी दूसरे गाँव की होगी। वह बोला-लक्ष्मी माने धन, सम्पत्ति-वह आई थी। वह कैसे? तो उसने सारी बात सुनाई तो वह भी सुनकर रोने लगी। तूमने मेरे को क्यों नहीं बुलाया? दोनों मिलकर धोते। हाय मेरे को नहीं बुलाया। इतने में उनका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुराना परिचित कोई महात्मा आ गया। उसने देखा दोनों रो रहे हैं। अरे क्या बात हो गई ? क्यों रो रहे हो ? क्या बताएँ हमारा तो भाग्य फूट गया। कैसे फूटा ? तो सारी घटना कह सुनाया। महात्मा बोले कि वह इसीलिए आई थी कि तुम हँसते खेलते दिन बिता रहे थे, सन्तुष्ट थे, कोई चिन्ता नहीं थी। यह माया को पसन्द नहीं आया कि यह हँसता-खेलता क्यों है ? रोता क्यों नहीं। तो रुलाने का एक ढंग निकाला कि यूँ रुलाओ। तो डेगची के रूप में आई। जब तू उसके प्रेम में फँसा तो चली गई। अब उसकी इच्छा पूरी हो गई। अब तू इस बात को समझ कि वह तेरे को हँसाने नहीं रुलाने आई थी। उसका ख्याल छोड़ो। यह तो किसी को खुश रखना नहीं चाहती यह तो रुलाने ही आती है। इसलिए उपनिषद् की यह घोषणा कि—

प्रियं रोत्स्यतीति

तू जिससे आज प्यार कर रहा है, वह कल तुझको अवश्य रुलाएगा। जब वह जाएगा तो तुमको रोना पड़गा। इसलिए इसके साथ प्रेम मत कर। प्रेम उसके साथ कर जो तुमको छोड़कर कभी न जाए। तो तुमको रोना नहीं पड़ेगा। प्रेम में यह दोष है कि जिसके साथ प्यार हो जाए तो मनुष्य चाहता है कि वह हमसे कभी जुदा न हो हमेशा मेरे पास बना रहे। यही प्रेम का स्वभाव है। जब प्रेम का पात्र जाने लगता है तो यह उसको पकड़कर रोकने की कोशिश करता है कि रुक जाय और जब रुकता नहीं है तो अंत में रोता है। तो कहा कि प्रियं रोत्स्यतीति—यह तो विनाशीप्रिय है। अगर विनाशी पदार्थ के साथ तुम प्रेम करोगे तो अवश्य तुमको रोना होगा। इसलिए अविनाशी पदार्थ के साथ प्रेम करो क्योंकि उसको तो जाना नहीं फिर रोना भी नहीं पड़गा।

इसलिए एक अक्षर तत्व आत्मा जो है वही द्रष्टव्य है और एक मात्र वही प्रेम करने योग्य है। वैसे प्रेम है उसके साथ। देखो सबका अपने साथ प्रेम होता ही है। बल्कि संसार के पदार्थों से जो प्रेम है वह भी आत्मा के लिए ही है, वह गौण प्रेम है। क्यों गौण है ? कि यदि इनसे हमको कुछ सुख मिलता हुआ मालूम पड़ता है तो हम प्रेम करते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं और यदि इससे सुख की जगह दुःख की सम्भावना हो तो फिर हम उसको छोड़ देते हैं।

जयपुर की घटना है। वहाँ एक डॉक्टर पढ़ता था, एक लड़की भी डाक्टरी पढ़ती थी। दोनों में प्रेम हो गया। उन्होंने शादी का निश्चय कर लिया। उनका इतना प्रेम बढ़ गया। जहाँ जाएँ साथ जाएँ, साथ रहें। दैवयोग से उनके माता पिता ने उस लड़की की शादी दूसरी जगह कर दी, दूसरे के साथ। बस उसके हृदय में द्वेष की भावना इतनी प्रबल हो गई कि एक दिन दोनों पति पत्नी घूमने जा रहे थे। रास्ते में छुरा लेकर बैठ गया। जब वहाँ से वे दोनों निकले तो भाग कर उसने लड़की के पेट में छुरा मार दिया। उसको मार कर पुलिस में चला गया कि मैंने एक स्त्री को कत्ल कर दिया है। तो अब देखो वह कितनी प्रिय थी उसको, उसके लिए प्राण देने को तैयार था। परन्तु उसी के साथ इतना द्वेष हो गया कि उसे मार डाला। तो क्यों हो गया द्वेष? कि पहले वह जानता था कि मेरी हो जाएगी। पर जब दूसरे की हो गई तो उससे द्वेष हो गया। तो संसारी कोई पदार्थ ऐसा नहीं है जो सदा प्रिय रहे। उसमें जब तक सुख मिलने की सम्भावना होती है, तब तक ही वह प्रिय रहता है और जहाँ उससे सुख की सम्भावना मिटी कि वह अप्रिय हुआ। इसलिए इनको गौण प्रिय बोलते हैं।

आत्मा के साथ किसी को द्वेष नहीं होता। आत्मा के साथ सदा प्रेम रहता है। इसलिए आत्मा को परम प्रिय मानते हैं। यह निश्चित बात है कि प्रेम सुख में होता है। दुःख में किसी को प्रेम नहीं है। जब आत्मा में सबका प्रेम है तो मानना पड़ेगा कि आत्मा सुखरूप है। यदि आत्मा दुःखरूप होता तो उससे कोई क्यों प्रेम करे? किंतु सबका आत्मा के साथ प्रेम है, इसलिए आत्मा आनन्दस्वरूप है। दूसरा वह नित्य है। नित्य होने के कारण ही वह आनन्दरूप है। तो सिद्ध हो गया कि नित्य आत्मा ही सुखरूप है। और नित्य सुख को ही हम चाहते हैं। आत्मा की प्राप्ति से ही नित्य सुख की प्राप्ति होगी। तो इच्छा पूर्ण हो गई न? जब इच्छा समाप्त हो गई तो जीव परमानन्द स्वरूप हो गया। इच्छा की समाप्ति नाम ही सुख है। इच्छा का बना रहना ही दुःख है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसलिए हमारे शास्त्रकारों का सिद्धान्त है कि आत्मा प्राप्त हुए बिना किसी को सच्चा सुख, नित्य सुख नहीं मिल सकता।

तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-
स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥

कठ– २-२-१२

यमराज बोलता है कि जो अपने हृदय में उस नित्य सुखरूप भगवान् का साक्षात्कार कर पाते हैं, वही आत्म दर्शन कर सकते हैं। कौन कर पाते हैं ? जो बाहर से अपनी दृष्टि लौटा लेते हैं। जिनकी दृष्टि बाहर लगी हो वो उसको कभी नहीं देख सकते। जैसे बारह बजे का सूर्य निकला हो और सूर्य की तरफ पीठ करके कोई आदमी खड़ा हो जाए, उसकी दृष्टि चाहे जितनी तेज हो, चाहे सूर्य कितना ही प्रचण्ड प्रकाशित हो, तो क्या वह देख सकता है सूर्य को ? क्योंकि सूर्य पूरब में है, वह खड़ा है पश्चिम मुख करके। इसीलिए वह सूर्य को नहीं देख सकता। तो आत्मा है अन्दर और मनुष्य की दृष्टि है बाहर, तो वह उसको कैसे देख सकता है। चाहे वह सहस्राक्ष हो क्यों न हो ? अतः करना क्या है ? कि दृष्टि को घुमाना है। इसको बोलते हैं दृष्टि को अन्तर्मुख करना। बहिर्मुखता को छोड़कर अन्तर्मुख करना। बहिर्मुखता और अन्तर्मुखता का भी फर्क है। बहि = अनात्मा। अन्तः = आत्मा। क्योंकि आत्मा सभी के अन्दर है। उसके बिना तो किसी का भान ही नहीं होगा। जिस लोहे के अन्दर अग्नि प्रविष्ट है वह अन्धेरे में पड़ा भी चमक जाता है। जिस लोहे में अग्नि प्रविष्ट नहीं है उसका दर्शन अंधकार में नहीं हो सकता है। इसी तरह से जो वस्तु आत्मज्ञान में, आत्मचेतना में ओत-प्रोत हो जाती है, उसी का हमको भान होता है। जिसका हमारी आत्मा के साथ कोई सम्बन्ध नहीं, उसका हमको भान होता ही नहीं। तो वह आत्म चेतन सबके अन्दर है। और उसके अतिरिक्त जो कुछ भी है वह अनात्मा है। अन्दर बाहर का भेद तो शरीर की दृष्टि से है। ऐसे इसमें कोई अन्दर-बाहर नहीं है। अन्तर = माने आत्मा। बाहर = माने अनात्मा। तो बहिर्मुख दृष्टि माने अनात्म दृष्टि। जो दृष्टि आत्मा का चिंतन करे, वह अन्तर्मुख है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जो दृष्टि को लौटा सकता है, अनात्मकार को छुड़ाकर आत्मकार बना सकता है, वही आत्म दर्शन कर सकता है।

कश्चिद् धीरः प्रत्यागात्मानमैक्ष-
दावृत्त चक्षुरमृतत्व मिच्छन् ॥ कठ- २-१-१

और यह ऐसी बात है कि देखो कार में लाइट लगी होती है परन्तु उसका प्रकाश आगे जाता है। तो कार के बाहर का तो सब प्रकाशित होता है किन्तु जो कार के अन्दर है वह अंधेरे में रहता है। अथवा टार्च लो। उसको हाथ में लेकर जलाओ तो उसका प्रकाश भी आगे जाता है। सामने की चीज तो दीख जाती है पर जलाने वाला अंधेरे में रहता है। अब वह यदि अपने आपको देखना चाहे तो उसी टार्च का मुख घुमाना पड़ेगा। इसी तरह आत्मा को देखने वाली जो दृष्टि है, वृत्ति या मन—यदि बाहर का चिंतन करता रहा तो आत्म दर्शन कभी नहीं होगा। इसलिए उसको अन्तर्मुख करो। आत्मा की ओर मोड़ो तो फिर उसमें योग्यता आती है। इसीलिए आत्मा आनन्दरूप है। आत्मा ज्ञानरूप भी है। ज्ञान का ही नाम आत्मा है, आत्मा का ही नाम ज्ञान है। श्रुति का कहना है कि—

सत्यं ज्ञानमनंतम् ब्रह्म

सत्य वस्तु एक ज्ञान है, बाकी सब असत्य है। क्योंकि आत्मा आदि-अंत से रहित है। जो वस्तु आदि और अंत वाली होती है वह सत्य नहीं होती। जो वस्तु आदि-अंत वाली नहीं है, उसको बोलते हैं अनंत—वही वस्तु सत्य होती है। ज्ञान को छोड़कर कुछ भी आदि अंत रहित नहीं है। तो आदि अंत से रहित बहुत वस्तु तो नहीं होंगी, एक ही होगी। ज्ञान आदि-अंत से रहित होने के कारण सत्य है और ब्रह्म भी आदि-अंत से वर्जित होने के कारण सत्य है। तो क्या तीन सत्य हो गये? किन्तु सत्य हमेशा एक होता है। इसीलिए अर्थ निकला कि आत्मा, ब्रह्म और ज्ञान एक ही तत्त्व के नाम हैं, वस्तु एक ही है—

सत्यं ज्ञानमनंतम् ब्रह्म

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनंत होने के कारण ज्ञान सत्य है और जो सत्य होता है वही ब्रह्म होता है। अतः ज्ञान ही सत्य है, ज्ञान ही ब्रह्म है, वही आत्मा है। तो आत्मा नित्य ज्ञान स्वरूप है, वही ब्रह्म है। उसको जानकर हम दुःखों से बच सकते हैं। इसी बात को ठीक से समझना है कि ज्ञान आदि-अंत वर्जित होकर ब्रह्मरूप कैसे हो सकता है, जबकि नैयायिक सांख्य आदि ज्ञान का उत्पत्ति नाश मानते हैं। फिर ज्ञान आदि-अंत वर्जित कैसे हुआ, ब्रह्मरूप कैसे हुआ ? तो थोड़ा इस पर प्रकाश डालेंगे।

ॐ पूर्णमदः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ॐ

आत्मा सुखरूप है : आत्मा ज्ञानरूप है

सकल दुःखों की निवृत्ति ज्ञान से हो जाती है। छः दर्शन में चार तो ज्ञान के दर्शन हैं। एक मीमांसा थोड़ा कर्म को मानता है। किन्तु एक तरफ चार और एक तरफ एक, तो एक की बात तो नहीं मानी जा सकती। ज्ञान से ही मोक्ष होता है। मोक्ष का अर्थ है दुःखों से छुटकारा। आत्मा ज्ञान स्वरूप है, प्रकाश स्वरूप है—

सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म

हम उसे खोजें किन्तु खोजने के लिए पहचान की आवश्यकता पड़ती है, उसे बोलते हैं लक्षण। लक्षण–यानी पहचान, चिन्ह। जैसे देखो, चार आदमी बातचीत कर रहे हैं, तीन के सिर पर टोपी है और काला रंग है। एक नंगे सिर का आदमी है। अब कोई पूछे कि देवदत्त कौन है ? तो हम बोलेंगे कि जो नंगे सिर का आदमी है वह देवदत्त है। सारे संसार को दो भागों में बाँटो—

क– दृश्य–देखने योग्य

ख– द्रष्टा–देखने वाला

जाग्रत, स्वप्न और सुसुप्ति और समाधि में भी द्रष्टा और दृश्य रहते हैं। परन्तु चारों अवस्थाओं में दृश्य कुछ बदलता रहता है। जाग्रत में दृश्य कुछ और है, स्वप्न में और, सुसुप्ति में और तथा समाधि में दृश्य कुछ और है। जाग्रत का दृश्य क्या है कि भौतिक इन्द्रियों से भौतिक प्रपञ्च का दर्शन होता है। पंचभूतों से रचित पदार्थ और पंचभूतों से रचित इन्द्रियाँ, इसे विश्व बोलते हैं। यह है जाग्रत का द्रष्टा और दृश्य।

स्वप्न में भी दृश्य होता है, इन्द्रियाँ होती हैं। परन्तु ये भौतिक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं होतीं। वासना के बने दृश्य और इन्द्रियाँ होती हैं। संस्कार द्वारा निर्मित, बहुत सूक्ष्म। वो स्वप्न के दृश्य कहे जाते हैं।

सुसुप्ति में सबका अभाव रहता है। कुछ भान नहीं होता है। कुछ थोड़ा सा ज्ञान होता है। जैसे सुख से सोया इसका ज्ञान।

समाधि में भी दृश्य रहता है। वह क्या है कि सर्व-प्रपञ्च का अभाव उपलक्षित जो स्वरूप है, वह वहाँ दृश्य है।

इस प्रकार दृश्य का जो स्वरूप है वह परिवर्तनशील होने के कारण अनात्मा है और द्रष्टा एक होने के कारण आत्मा है। उसी का नाम 'मैं' है। देखो, जो स्वप्न में द्रष्टा था उसने दृश्य देखा और जागकर कहता है कि मैंने एक अमुक दृश्य देखा। देखने वाला 'मैं' था। मैं सोया, सोने वाला 'मैं' था। समाधि में भी मैं बना रहता है। जाग्रत से समाधि तक उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। किन्तु जो दृश्य है उसमें परिवर्तन होता है। तो जब द्रष्टा, दृश्य के साथ मिल जाता है तो उसको सुख-दुःख, क्लेश, अनुकूलता, प्रतिकूलता प्रतीत होता है। जब द्रष्टा, द्रष्टा ही रहे, दृश्य न बने, तब वह अपने स्वरूप में, आनन्द में, सुखरूप रहता है। इसीलिए आत्मा का सुख पाने के लिए दृश्य से हटना पड़ता है।

दीपक का प्रकाश यहाँ तक आ रहा है परन्तु उसकी गर्मी यहाँ तक नहीं आती। दीपक अगर एक फलांग पर हो तब भी वह दिखाई पड़ता है। लेकिन उसकी गर्मी प्रतीत नहीं होती। इसी तरह से आत्मा ज्ञान-रूप भी है और नामरूप भी है।

सत्यं ज्ञान आनन्दं ब्रह्म

आनन्द और ज्ञान दोनों आत्मा के लक्षण हैं परन्तु ज्ञान का जितना जल्द पता चल जाता है उतना जल्द आनन्द का पता नहीं चलता। इसीलिए मनुष्य चक्कर में पड़ता है कि आत्मा आन दरूप नहीं है। आनन्द कहीं बाहर से आता है और हम बाहर ही आनन्द की खोज

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करने लगते हैं। इसीलिए नैयायिक आदि ने आनन्द को आत्मा का आगन्तुक गुण मान लिया। यानी सुख और दुःख दोनों से युक्त। वेदान्त पूछता है कि आप सुख और दुःख को आत्मा का गुण मानते हैं? किन्तु सुख दुःख तो परस्पर विरोधी हैं। ये दोनों एक गुण के हो ही नहीं सकते। जैसे बर्फ का गुण ठंडापन तो कह सकते हैं परन्तु कहें कि बर्फ ठंडा भी है और गर्म भी है तो यह कोई नहीं मान सकता क्योंकि ठंडी और गर्मी एक ही समय में, एक आश्रय में नहीं रह सकतीं।

आत्मा दुःखरूप भी है और सुखरूप भी, ये दोनों बातें नहीं बनतीं। किन्तु प्रत्यक्षतः हम देखते हैं कि वह कभी सुखी भी होता है कभी दुःखी भी। जैसे जल कभी ठंडा भी होता है और कभी गर्म भी। इसी प्रकार आत्मा कभी सुखी दिखाई पड़ता है और कभी दुःखी भी। अगर ये आगन्तुक धर्म हुए तो इसका असली स्वरूप क्या होगा?

वेदान्त के आचार्यों ने कहा कि आत्मा सुखरूप है तो फिर दुखरूप कहाँ से आता है? इसका कारण यह है कि जब अपने स्वभाव से अलग हो जाता है तब दुखरूप हो जाता है। जैसे दीपक से दूर होने पर उसकी गर्मी नहीं प्रतीत होती। गर्मी कहीं निकल जाती है उसका भान नहीं होता।

जैसे मैं हूं, इसका भान सबको होता है। कोई अपने को जड़ नहीं मानता। बल्कि किसी को जड़ और मूर्ख कहें तो वह लड़ने के लिए तैयार हो जाता है। अपने को चेतन, बुद्धिमान सभी मानते हैं। किन्तु मैं आनन्दरूप हूं इसको नहीं मानते। कारण क्या है? कि आनन्दरूप होते हुए भी आनन्द की प्रतीति ही नहीं हो रही है। क्योंकि वह उससे दूर हो गया है।

वेदान्त कहता है कि आत्मा सुखरूप है और दुःख इसमें आगन्तुक है। किन्तु आत्मा सुखरूप है, इसकी प्रतीति तो होती नहीं तो कैसे मान लें कि सुखरूप है? तो जो वस्तु प्रतीत नहीं होती इसका अर्थ यह नहीं कि वह है ही नहीं। है, लेकिन प्रतीत नहीं हो रही है। इसका कोई कारण है। जब कारण को हटा देंगे तो प्रतीत होने लगेगी। जैसे आकाश

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में नक्षत्र मण्डल निरन्तर रहते हैं। लेकिन जैसे रात में चमकते हैं वैसे दिन में नहीं दिखाई पड़ते। दिन में नहीं दिखते इसका कारण सूर्य का प्रबल प्रकाश है। जब प्रकाश हट जाता है तब दिखाई देने लगते हैं।

तो आत्मा सुखरूप है लेकिन प्रतीत नहीं हो रहा है। इसका कारण है कि हम इससे दूर हट गए हैं। वह सुखरूप है किन्तु सुखरूपता तभी मालूम पड़ती है जब हम आत्मा के समीप पहुंच जाते हैं। आत्मा के समीप पहुंचना क्या है? तो दीपक जैसी दूरी और समीपता आत्मा में नहीं है कि हम उसके पास चले गए और दूर चले गए। आत्मा की समीपता और दूरी दूसरे प्रकार की है। जब हम दृश्य के दर्शन में लग जाते हैं तो यही आत्मा से दूरी है और जब हम दृश्य को लोप कर लेते हैं, दृश्य से अपनी वृत्ति हटा लेते हैं तो आत्मा के समीप पहुंच जाते हैं। यानी दूरी और समीपता का कारण दृश्य है। दृश्य का लोप होना ही आत्मा के समीप होना है।

अब हम परमात्मा के आनन्दरूप के समीप पहुंचने का प्रयास करें। यानी जो दृश्य है उससे स्वयं को हटाओ और अन्दर देखो। यानी अन्दर दृष्टि को जमाओ। दृष्टि कुछ देर तक जब जम जाए तो आनन्द का अनुभव होने लगता है। किन्तु एक और धोखा लगता है—जब हम कभी बाहर के प्रकाश से कमरे में जायें तो वहाँ इतना अंधकार लगता है कि मालूम पड़ता है कि वहाँ कुछ नहीं है। और हम घबड़ा कर बाहर चले आते हैं। लेकिन अन्दर जाकर वहाँ कुछ देर ठहर जाएँ तो धीरे-धीरे सब कुछ दीखने लगता है। जो आदमी घबड़ाकर बहिर्मुख हो जाता है, उसे आत्मानन्द का भान नहीं होता और जो मनुष्य थोड़ा धीरज रखे और थोड़ा वृत्ति को एकाग्र कर लेता है उसे आत्मसुख का भान हो जाता है। इसीलिए कहा कि दृश्य से अपनी वृत्ति को हटाओ। परन्तु दृश्य से मन को कैसे हटाएँ। तो कहा गया कि दृश्य की सत्ता पर विचार करो।

दृश्य की सत्ता क्या है? इसको वेदान्त में मिथ्या कहते हैं। मिथ्या का अर्थ असत्य नहीं। मिथ्या वह है जो कि दूसरे की सत्ता से सत्य हो। दूसरे के भान से जिसका भान हो और दूसरे के सौन्दर्य से जिसमें सौन्दर्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हो। अर्थात् न जिसकी अपनी सत्ता हो, न अपना भान हो और न अपना सौन्दर्य हो, उसे बोलते हैं मिथ्या। दूसरी परिभाषा यह है—जो भ्रान्ति सिद्ध पदार्थ हैं वे कहे जाते हैं मिथ्या, यानी भ्रान्ति काल में जो सत्य प्रतीत होते हैं। जब भ्रान्ति हट जाती है तो उसकी सत्ता भी समाप्त हो जाती है, वह तो है मिथ्या।

ये जो दृश्य हैं, आत्मा में इनको सत्ता नहीं है। जैसे सिनेमा का दृश्य तभी तक दिखाई पड़ता है जब तक हम हॉल में बैठे होते हैं। जब हॉल से बाहर आते हैं तो वे दृश्य दिखाई नहीं पड़ते। इसे कहते हैं अनात्म, द्वैत और प्रपञ्च। आत्मा निर्द्वन्द है।

आत्मा के अन्दर अनात्मा नहीं है परन्तु दिखता है। दिखने का कारण दूसरा है। आत्मा का अनुभव समाधि और सुसुप्ति में होता है क्योंकि वहाँ द्वैत दिखाई नहीं पड़ता। आत्मा में द्वैत है हो नहीं परन्तु जाग्रत और स्वप्न में दिखाई पड़ने के कारण है। योग वशिष्ठ में वशिष्ठ जी राम जी को समझा रहे हैं—

हे राम जी! यह जो द्वैत दिखाई पड़ रहा है वह वास्तव में है नहीं। इन्द्रियों में आकर जब चेतन प्रविष्ट हो जाता है तो फिर इसको द्वैत की प्रतीति होती है। जब चेतन इन्द्रियों से पीछे हट जाता है तो कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। उन्होंने एक दृष्टान्त भी दिया— जैसे सूरज की धूप होती है उसे हम लोग प्रकाश भी कहते हैं। इसका उल्टा अन्धकार कहलाता है। दिन को उल्लू कहता है कि रात आ गई। तो सूरज की धूप प्रकाश है कि अन्धकार, इसको क्या कहें? तो इसको कुछ नहीं कह सकते। यह तो अपनी-अपनी दृष्टि है। इसीलिए शास्त्र में इसका नाम अनिर्वचनीय रखा। इसका नाम नहीं रख सकते हैं क्योंकि हम कुछ कहेंगे, दूसरा कुछ कहेगा और तीसरा कुछ और कहेगा। इसीलिए भर्तृहरि इसे दूसरे प्रकार से कहते हैं—

अतीन्द्रियानसंवेद्यान् पश्यन्त्यार्षेण चक्षुषा।
ये भावान् वचनं तेषां नानुमानेन बाध्यते॥
—वाक्यपदीय, ब्रह्मकाण्डम्-३८

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कि हम संसार को एक नाम नहीं दे सकते। यदि संसार को सुन्दर मानें तो इसमें एक से एक कुरूप भी हैं। हम कहें कि इसमें बड़े विद्वान हैं तो एक से एक मूर्ख भी हैं। कहें कि यह सत्संग का घर है तो इसमें सुरा पीकर लड़ने वाले भी हैं। यह आनन्द का घर भी नहीं क्योंकि यहाँ रोना और व्याकुलता भी है। इसीलिये इसे एक नाम नहीं दे सकते। न तो अमृतमय, न विषमय। जो एक के लिए विषमय है वह दूसरे के लिए अमृतमय है। अर्थ निकला कि जगत् का कोई एक रूप नहीं है। इसका नाम है—अनिर्वचनीय।

इसी तरह सुख-दुःख की बात है। इसको सुखरूप और दुःखरूप भी नहीं कह कहते क्योंकि एक का जो सुख है वही दूसरे का दुःख हो सकता है।

एक ब्राह्मण अपने यजमान के यहाँ से यज्ञ करा कर, वहाँ से प्राप्त दक्षिणा लेकर चला। डाकुओं को पता चला तो वे पीछे-पीछे चले। सोचा कि जंगल में मार डालेंगे। ब्राह्मण जब नदी पार कर गया तो नदी में बाढ़ आ गई। डाकू बाढ़ के कारण पार नहीं जा पाए। ब्राह्मण बाढ़ से प्रसन्न हुआ कि उसको रक्षा हो गई। किन्तु चोर नदी को गाली देने लगे कि इसको अभी मौका मिला चढ़ने को। नदी की बाढ़ एक ही घटना है जो पंडित के लिए सुखद और चोर के लिए दुःखद है। इसी प्रकार संसार की अनेक घटनाएँ किसी के लिए सुखरूप और किसी के लिए दुःखरूप हैं। इसी का नाम शास्त्रों में अनिर्वचनीय है। यह मिथ्या है। जिससे स्वार्थ सिद्ध हो उसे सुखरूप मानते हैं जिससे स्वार्थ सिद्ध नहीं होता है उसे दुःखरूप मानते हैं। पुनः उससे स्वार्थ सिद्ध होता है तो उसे मित्र बना लेते हैं। यानी स्वार्थ के कारण हम किसी को मित्र, किसी को शत्रु बनाते हैं। वस्तुतः कोई शत्रु मित्र होता नहीं। क्योंकि असत्य पदार्थों का अपना कोई रूप नहीं होता। यह मृगतृष्णा के समान मिथ्या है, उससे क्या सुख मिलेगा ?

इससे मन को हटाना है। दृश्य से मन को हटाने के दो साधन हैं। एक तो विचार है दूसरे योग आदि द्वारा चित्त को निरोध करने की बात भी कही गई है। शंकराचार्य जी ने विचार को ही प्रधान साधन माना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। उन्होंने विचार द्वारा दृश्यमान पदार्थों से मन को रोकने की बात कही है। योग शास्त्र में यम, नियम, प्राणायाम आदि उपाय लिखे हैं—

रेचक– अन्दर को वायु को बाहर निकालना रेचक है।

पूरक– बाहर को वायु को अन्दर भरना।

कुम्भक–वायु को अन्दर रोकना कुम्भक है।

योग वाले ऐसा अर्थ करते हैं। किन्तु शंकराचार्य जी ने इसका दूसरा अर्थ किया। उन्होंने कहा कि वायु निकालने और भरने से कुछ नहीं बनता बल्कि—

निषेधनं प्रपञ्चस्य रेचकं प्राण संयम

हमने अपने अन्दर जो संसार भर लिया है, मिथ्या द्वैत का जो अभिमान कि मैं ब्राह्मण, क्षत्रिय या धनी, गरीब हूं, उसे निकालना है। इसी प्रकार शुद्ध चेतन तत्व जो कोरे कागज की तरह है उस पर अनादि काल से वासनाओं के चलते कुछ चित्र बन गया, कुछ अभिमान-सा हो गया। संस्कार के कारण कुछ मूर्तियाँ मन में बन जाती हैं। ये मूर्तियाँ नाना प्रकार की लकीरों से बनी हैं। जैसे ॐ लिखना है तो हिन्दी में दूसरे ढंग से लिखेंगे, अंग्रेजी में दूसरे ढंग से लिखेंगे और उर्दू में तीसरे ढंग से लिखेंगे। मतलब कि जितनी भाषाएँ उतने प्रकार से लिखेंगे। लेकिन ॐ है तो एक ही प्रकार का। अलग-अलग लिखने पर भी सभी ॐ ही पढ़ते हैं। इसका अर्थ यह है कि भिन्नता लिखने में है ॐ में नहीं। वह तो प्रत्येक भाषा में लिखा होने पर भी एक ही है।

उसी प्रकार आत्मा भी सब में एक ही प्रकार का है। किन्तु जो भिन्नता दिखाई पड़ती है उसका कारण बाहरी अभिमान है। अभिमान के कारण नाना प्रकार की मूर्तियाँ और भिन्नता दिखाई पड़ती हैं जैसे गोरा-काला, अमीर-गरीब आदि। यह अभिमान लाखों प्रकार का है। बल्कि चौरासी लाख प्रकार का है।

अब हमने यह समझना है कि यह द्वैत, यह अनात्मा, वास्तव में है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं। यह हमारे अन्दर बैठे अभिमान के चलते है। जब हम अभिमान को निकाल देंगे तो यह मूर्ति अपने आप निकल जाएगी। तो रेचक का अर्थ है कि अपने अन्दर से यह निकाल देना है कि मैं पुरुष नहीं, स्त्री नहीं, ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय नहीं। यानी अपने अन्दर से प्रपञ्च का निषेध करना है।

पूरक क्या है ? कि मैं अद्वैत चेतन हूं, इस भाव को भरना। यह वृत्ति स्थिर हो जाए कि मैं अद्वैत हूं, चेतन हूं, यही कुम्भक है।

शंकराचार्य की दृष्टि में यही प्राणायाम है। यानी अपने आपको कूटस्थ चेतन, अद्वैत निष्प्रपञ्च मानने का अभ्यास करना ही प्राणायाम है।

योगियों की दृष्टि में भी प्राणायाम द्वारा धारणा, ध्यान से मन हट जाता है, परन्तु द्वैत का अभिमान बैठा ही रहता है। और समाधि के बाद पुनः प्रपञ्च खड़ा हो जाता है। शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श इन पाँचों को निकाल दिया जाए तो जगत निकल जाता है। जब आँखें हैं तब रूप भी है। जब आँखें चली गईं तब उसके लिए रूप पदार्थ भी चला गया। अब यह जो शब्द है, यह कान तक है, बस। यदि कान खराब हो जाए तो शब्द की सत्ता गई। यदि किसी का चमड़ा खराब हो जाए तो स्पर्श सुख भी गया। घ्राण खराब हो तो गंध भी गई और जीभ खराब हो जाए तो स्वाद भी गया।

तो देखो पाँचों इन्द्रियों की अधीनता के कारण रूप, रस, स्पर्श आदि की सत्ता है। यानी द्वैत जगत का कारण इन्द्रियाँ हैं। यह तो एक बात हुई कि जब पाँचों खराब हो जाएँ तब जगत की सत्ता समाप्त होगी। नहीं, ये ज्यों के त्यों भी बने रहें तब भी हम दृश्य से मन को हटा सकते हैं। जैसे एक आदमी बोल रहा है, दूसरा सुन रहा है किंतु सुनने वाला कहता है जरा फिर से बोलना मैंने सुना नहीं। हमने सुना तो दिया, क्या कान खराब है तेरा ? नहीं कान तो ठीक है, मेरा मन कहीं चला गया था। यानी इन्द्रियों के साथ मन का संयोग होने से ही सुनते हैं। मन का संयोग नहीं हो तो नहीं सुन सकते। इसी प्रकार आँखों के सामने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से कोई दृश्य निकल जाए और देखने वाले से पूछें कि इधर से कोई गया है क्या ? उसने कहा कि हमने नहीं देखा। तुम्हारी आँखें खराब हैं क्या ? उसने कहा नहीं, आँखें तो ठीक हैं। तो देखो आँखें ठीक हैं और बैठा है घंटों से। किन्तु मन अन्यत्र होने के कारण देख नहीं पाया।

इसी प्रकार जैसे इन्द्रियों के खराब होने से देखना सुनना आदि समाप्त हो जाता है। उसी प्रकार इन्द्रियों के साथ यदि मन का संयोग नहीं हो, तब भी पदार्थ या दृश्य का भान नहीं होता। तो इन्द्रियों को नष्ट करने की जरूरत नहीं है। तो जिसकी सत्ता जिसके अधीन रहती है, उसी का उसे ज्ञान होता है।

जैसे इन्द्रियों के नहीं रहने से वस्तु का भान नहीं होता, उसी प्रकार इन्द्रियों से मन के हट जाने पर भी वस्तु का भान नहीं होता। इस जगत को खड़ा करने वाला, इन्द्रियों के साथ जुड़कर दिखाने वाला मन ही है।

तो शंकराचार्य के मत में एक ही उपाय है कि दृश्य का सत्यत्व जो हमारे मन में बैठा हुआ है, जो सत्य दीखता है; उसको निकालना है। वेदान्त कहता है कि जो दिखाई पड़ रहा है वह असत्य है, द्वैत है, प्रपंच है। इस मिथ्या जगत को निकाल देना है। जो दृश्य है वह अनात्म है, विनाशी है—

यो वै भूमा तत्सुखम्—यद्ल्पं तत् मर्त्यम्
—छान्दोग्य

जो भूमा है वही अमृत है, अविनाशी है। वेदान्त की परिभाषा में दृश्य मिथ्या है। सुसुप्ति में जगत प्रतीत नहीं होता। जो वास्तव में है नहीं, माया और अविद्या के चलते प्रतीत हो रहा है। योग दर्शन में इसी बात को स्वीकार किया गया है—

अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः।
—योग दर्शन- २/३

क्लेश पाँच प्रकार के हैं— अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष, अभिनिवेश

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और क्लेश। फिर आगे कहा—

अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणम् ॥

—योग दर्शन-२/४

एक ही मूल कारण है उसे अविद्या कहते हैं। चार उसकी शाखा हैं। वेदान्त में उसे माया कहते हैं। जब हम उस पर विचार करेंगे तो मन अपने आप हटेगा। और हटेगा तो जाएगा कहाँ? अपनी आत्मा की ओर जाएगा। आत्मा इसीलिए प्रतीत नहीं होता कि हमें इसे देखने में समय लगेगा। जब यह दृश्य हट जाएगा तो आत्मा का भान हो जाएगा।

जब द्वैत में अनास्था हो जायेगी, मिथ्यत्व बुद्धि हट जायेगी तो दृश्य अपने आप हट जायेगा। फिर आत्मा के आनन्द की उपलब्धि शनैः शनैः हो जाएगी और निश्चय हो जाएगा कि इसने ही हमें दुःख में डाला है। आगे और विचार करेंगे कि आत्मा सुखरूप क्यों है और अनात्मा दुःखरूप क्यों है?

ॐ पूर्णमदः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आत्म-दर्शन क्या है ?

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मस्य जन्तोर्निहितं गुहायाम्
—कठोपनिषद्- २/२०

जो अपने आत्मा का अपरोक्ष अनुभव कर लेता है, वह सम्पूर्ण दुःख-द्वन्दों से छूट जाता है। सबसे बड़ा संकट जन्म-मरण है। इसकी निवृत्ति अपरोक्ष अनुभव से हो जाती है। इसलिए दर्शन में कहा—

आत्मा-व अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञात इद् सर्वं विदितम् ॥
—वृहदारण्यक, चतुर्थ ब्राह्मण-६

जो जन्म-मरण से बचना चाहे, उस प्रयत्न में सफलता चाहे, वह आत्मा का दर्शन करे। दर्शन, लोक में नेत्रजन्य ज्ञान के रूप में प्रसिद्ध है। चाक्षुष ज्ञान को दर्शन बोलते हैं। ज्ञान के द्वारा ही हम किसी पदार्थ का निश्चय करते हैं। किसी पदार्थ का होना और ना होना जिससे सिद्ध हो, ज्ञान कहलाता है। ज्ञान दो प्रकार का है—

१- स्मृतिरूप
२- अनुभवरूप।

स्मृतिरूप उसे कहते हैं—जिस वस्तु को हम देख चुके हैं। फिर उसके स्मरण से कालांतर में उसका ज्ञान हुआ करता है—वही स्मृति ज्ञान है। संस्कारजन्य ज्ञान को स्मृति कहते हैं। संस्कार पूर्व अनुभव से होता है। अनुभव संस्कारजन्य नहीं है। अनुभव के भी दो भेद हैं—

१- परोक्ष अनुभव
२- अपरोक्ष अनुभव

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परोक्ष अनुभव में— वस्तु का सारा आकार, रूप भान नहीं होता। केवल इतना भान होता है कि वस्तु है। अपरोक्ष अनुभव में पूरा रंग रूप, उत्कर्ष-अपकर्ष, आकार-प्रकार, सबका भान हो जाता है। पाँचों इन्द्रियों से जो ज्ञान होता है, वह अपरोक्ष कहलाता है। इन्द्रियों के बिना भी अपरोक्ष अनुभव होता है। जैसे— भूख-प्यास का अनुभव। तो इसको तो देख नहीं सकते हैं। दूसरे की भूख का अपरोक्ष अनुभव हमको नहीं हो सकता है। तो स्मृति और अनुभव। स्मृति को छोड़ दें तो एक परोक्ष, एक अपरोक्ष अनुभव।

अब हमको ब्रह्म का अपरोक्ष होना चाहिए। यही ब्रह्म का दर्शन है। दर्शन का अर्थ नेत्र से होना ही नहीं है बल्कि दर्शन एक अपरोक्ष अनुभव है। नेत्रों से देखना अपरोक्ष अनुभव है। सूँघकर जो गंध का अनुभव हुआ, वह भी अपरोक्ष अनुभव है। घ्राण से जो अनुभव है उसको घ्राणज अनुभव बोलते हैं। स्वाद का अपरोक्ष चखकर होता है। जैसे भूख-प्यास का अपना अपरोक्ष अनुभव होता है। उसी प्रकार आत्मा का अपरोक्ष अनुभव होता है। ब्रह्म का भी परोक्ष और अपरोक्ष दोनों अनुभव होता है। परन्तु हमारा काम तो अपरोक्ष अनुभव से बनता है। क्योंकि संसार का अपरोक्ष अनुभव हो रहा है। इसको वही दूर कर रहा है जो कि अपरोक्ष है। अपरोक्ष भ्रान्ति को दूर करने के लिए अपरोक्ष प्रमा ही चाहिए। उसी से उसकी निवृत्ति हो सकती है।

इसीलिए ब्रह्म दर्शन का अर्थ है—ब्रह्म का अपरोक्ष अनुभव। अपरोक्ष अनुभव में दार्शनिकों में विवाद है। परन्तु मानते सभी हैं। इससे बढ़कर प्रबल प्रमाण भी नहीं है। इसके बारे में वेदान्त का कहना है कि— आत्मा द्रष्टव्य—आत्मा का दर्शन करो। तो दर्शन शब्द से भ्रम उत्पन्न होता है कि वह आँख से देखने की चीज है। परन्तु ब्रह्म में ऐसी कोई चीज नहीं है जो आँख से दिखाई पड़े। नेत्र से तो रूप का दर्शन होता है। योग दर्शनकार ने एक सिद्धि लिखी है—अन्तर्धान की। अन्तर्धान का मतलब है—अदृश्य हो जाना। सामने होने पर जो लुप्त हो जाए। यह एक सिद्धि है—

कायरूपसंयमात् तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुः
प्रकाशासम्प्रयोगेऽन्तर्धानम् ॥— योगदर्शन, विभूतिपाद-२१

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ॐ

दर्शन इसीलिए होता है कि हमारे शक्ति में एक रंग है– गोरा, काला आदि। उस रंग को नेत्र ग्रहण करते हैं। योग शरीर के रूप का संयम करता है और धारणा करता है कि मेरा शरीर रूप रहित है। ऐसी स्थिति वह बनाने का प्रयत्न करता है। करते-करते उसको दीखने लगता है कि मेरे शरीर में रूप नहीं है। तो रूप का लोप हो जाता है। जब रूप गायब हो गया तो चक्षु से उसका सम्बन्ध होता नहीं। क्योंकि चक्षु तो रूप पर टिकता है। रूप उसमें रहा नहीं, तो वह वहीं खड़ा रहे परन्तु उसको देख कोई भी नहीं सकेगा। रूप दब गया। जब योगी फिर उस ध्यान को हटा देता है तो उसमें रूप प्रगट हो जाता है। तो फिर दीखने लग जाता है। तो चक्षु से दर्शन होने में प्रधान कारण रूप है।

रूप आत्मा में तो है नहीं। रूप पृथ्वी, जल और तेज इन तीन में है। वायु, आकाश में भी रूप नहीं है। जो भौतिक पदार्थ हैं– आकाश, वायु, मन, दिशा आदि, जब इनमें रूप नहीं है तो फिर आत्मा तो सबसे सूक्ष्म है। उसमें रूप नहीं है तो उसका दर्शन कैसे होगा? इसीलिए नेत्रों से आत्मा का दर्शन तो बनता नहीं। तो दर्शन का अर्थ है–अपरोक्ष अनुभव। यह अनुभव कब होता है, जब हमारी वृत्ति उससे सम्बन्ध करके तदाकार हो जाती है–वहाँ अपरोक्ष होता है। यदि वृत्ति उस पदार्थ से सम्बन्ध नहीं करे तो फिर अपरोक्ष नहीं होगा। जैसे–धुँआ से आग का ज्ञान, परोक्ष अनुभव है। जब सामने आग है तो यह अपरोक्ष है। क्योंकि वृत्ति का अग्नि से सम्बन्ध हो गया। जब वृत्ति अपने स्वरूप से मिलकर तदाकार हो जाती है तो अपरोक्ष अनुभव हो जाता है। इसी का नाम दर्शन है। इसी का अनुभव करना है कि मैं नामरूप रहित, सबका प्रकाशक हूं। देहेन्द्रि आदि मैं नहीं। ऐसी वृत्ति बनाने से अपरोक्ष अनुभव हो जाता है। फिर दुःख-द्वन्द्व की निवृत्ति हो जाती है। फिर वह निर्भय हो जाता है। ब्रह्मवेत्ता जिस स्थिति में होता है, उसका नाश नहीं होता है। उस वृत्ति को बनाने का प्रयत्न करना है। एक छोटा सा प्रयत्न है– 'पहले किसी आकारवान पदार्थ पर अपनी वृत्ति को टिकावे। जब वृत्ति वहाँ रुक जाए तो उस पदार्थ को वृत्ति के आगे से हटा दे। फिर निराकार हो जाता है—

क्षणे क्षणे .... मुक्तासु सूत्रवत् बुद्धि विकल्पेषु

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्षण-क्षण में रूप बदलना मन का काम है। आत्मा वह है जो बदलता नहीं। मन में जो बात आती है उसका प्रभाव जीवन पर पड़ता है। जैसे मन रस्सी को साँप समझने से भयभीत हो गया। मन जिस बात को स्वीकार करे उसका प्रभाव पड़ता है। जिस बात को मन नहीं पकड़े तो कोई बात नहीं। तो यह बात सिद्ध हुई कि बाहर का पदार्थ कुछ भी नहीं परन्तु मन जो मानेगा उसका फल हमको होता है। बाहर साक्षात् भगवान् खड़े हों और मन समझे कि कोई मूर्ति खड़ी है तो उस भगवान् का कोई लाभ नहीं हमको। और यदि बाहर मूर्ति खड़ी हो और हमारा मन मान ले कि साक्षात् भगवान् खड़े हैं तो उसका फल अवश्य होगा। इसलिए ऋषियों ने मूर्तिपूजा का आविष्कार किया है।

धीरे-धीरे निराकार स्थिति में जब मन रहने लगेगा तो हमको अपने स्वरूप का अपरोक्ष अनुभव होगा। वृत्ति का वैसा बनना ही अपरोक्ष अनुभव है। जब यह हो जाय कि मैं यह हूं तब महावाक्य—तत्वमिसि काम करता है। शब्द का यह कायदा है कि जिस वस्तु को हम सम्बोधित करें तो वो सामने उपस्थित होनी चाहिए। जैसे देवदत्त नाम का व्यक्ति यहाँ बैठा है। कोई उससे मिलने आया तो इशारा कर दिया कि यही देवदत्त है। तो उससे वह आसानी से मिल लेगा। क्योंकि अपरोक्ष दर्शन हो गया। किंतु जब देवदत्त मुँह ढक कर बैठा हो तो उसका उसको अपरोक्ष नहीं होगा क्योंकि वह तो आवृत्त है न। इसी तरह— तत्वमिसि का भी कायदा है। तत्वमिसि कहता है कि तू ब्रह्म है। तो कम से कम तू तो अपरोक्ष होना चाहिए न। तू ही अपरोक्ष नहीं हो तो फिर ब्रह्म का अपरोक्ष क्या होगा? इसीलिए लक्षणा करनी पड़ती है। इसका अभिप्राय है हम पहले तू के स्वरूप को अपरोक्ष कर लें। जब तू या हम—हमारी वृत्ति के सम्मुख आ जाए तो अब हम उसको कह सकते हैं कि यह ब्रह्म है। जब तक अहं का अपरोक्ष नहीं हो तब तक इदम् का अपरोक्ष भी नहीं होता है। जैसे देवदत्त बुर्का पहनकर सामने ही बैठा है और हम कहें भी कि यह है देवदत्त, तो जब तक वह बुर्का उतार कर नहीं देखे तब तक उसको अपरोक्ष नहीं होता है। अहं भी आवृत्त है। कोई तो शरीर को ही अहं समझता है, कोई प्राण को, कोई मन को, कोई बुद्धि को, कोई चिदाभास को। तो इस तरह से जब तक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अहं का निर्णय नहीं हो जाये और तदाकार वृत्ति नहीं हो जाये, तब तक 'अहं ब्रह्मास्मि' इसका अपरोक्ष अनुभव नहीं हो सकता है। तब तक वह कृत-कृत्य भी नहीं हो सकता है। इसलिए उन्होंने कहा कि तुम पहले 'अहं' शब्द के अर्थ का निर्णय कर लो– मैं क्या हूं ? अब जब अहं का निर्णय हो जायेगा तो अहंब्रह्म का अर्थ स्वयं समझ में आ जायेगा। इसलिए शंकराचार्य ने अहं शब्द के निर्णय के लिए कई ग्रंथ लिखे। जब वह सामने आ गया तब उसको ब्रह्मरूप कहने में कोई बात नहीं है। जैसे व्यक्ति सामने खड़ा है तो कह दिया कि देवदत्त है। जब तक वह आँखों के सामने नहीं है तो चाहे हजार बार कहो कि यही देवदत्त है, तो वह कहेगा कि नहीं है। यों—

आत्माबारे द्रष्टव्यः

आत्मा का दर्शन करना। जब उसको पूर्ण निश्चय अपने स्वरूप का हो जाएगा तो वह दुःख-चिंता से मुक्त हो जायेगा। उसका यही फल है। एक फल तो यही है कि वह परम निर्भय होता है।

आनंदं ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति कुतश्चनः

तै०- २-९

आनंद स्वरूप ब्रह्म का जिसको अपरोक्ष हो गया, उसको कभी कहीं से भय हो ही नहीं सकता। दूसरा– विद्वान् हर्ष शोको जहाति– अनुभव के बाद उसको शोक-हर्ष नहीं होता है।

आत्म-दर्शन करो यही उपनिषद् की घोषणा है। दर्शन इसलिए कहा कि इसका अपरोक्ष अनुभव होना चाहिए। यदि परोक्ष अनुभव ही हुआ तो फिर जन्म-मरण का अभाव नहीं होता है। जब ऐसा अनुभव होने लगे कि मैं सम्पूर्ण आकारों से रहित निर्विकार हूं तो दुःख मिट जाता है। रूप रंग तो इन्द्रियों का खेल है। मन के आगे इनकी कोई सत्ता नहीं है। सुसुप्ति में इसका अनुभव होता है। वहाँ कोई नाम रूप नहीं होता है। 'सबका अभाव हो जाता है। इसलिए आकार रहित आत्मा का अनुभव करने का प्रयत्न युक्ति से करता रहे। फिर वैसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वृत्ति बन जाती है। आगे अपने आप रास्ता खुल जाता है। यही है आत्म-दर्शन। उसकी सम्बन्ध से वृत्ति होनी चाहिए। सुनता भी रहे और निदिध्यासन का भी अभ्यास करना चाहिए। जब अनुभव अपने स्वरूप का हो जाता है तो कृत-कृत्य हो जाता है और सम्पूर्ण साधनों से रहित हो जाता है।

इसके लिए थोड़े से साधन भी हैं। जैसे खेत में बीज डालने के पूर्व खेत की सफाई करनी पड़ती है। तो वैसे ही ज्ञान के बीज बोने हैं। उसके लिए भी शास्त्रकारों ने साधन लिखे हैं।

ॐ भद्रं कर्णेभि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं

परमात्मा ही उपादान कारण है और वही निमित्त कारण भी है। व्यास जी ने कहा—

प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा दृष्टान्तानुपरोधात्।

—ब्रह्मसूत्र १-४-२३

जगत् का प्रकृति उपादान कारण है। कारण दो प्रकार के होते हैं। उपादान कारण और निमित्त कारण। निमित्त कारण उसको बोलते हैं जिसकी कार्य की उत्पत्ति के लिए अपेक्षा होती है अर्थात् कार्य को उत्पन्न करने के लिए जिसको आवश्यकता पड़ें। पर कार्य उत्पन्न हो जाने के बाद उसकी कोई आवश्यकता नहीं। वह चला जाए या मर जाए। जैसे कुम्हार घड़े का निमित्त कारण है। क्योंकि घड़ा बनाने के लिए तो कुम्हार की जरूरत है। परन्तु जब घड़ा बन जाए तो उसकी कोई आवश्यकता नहीं, चाहे वह कहीं भी चला जाए। उसके चले जाने से उस बने हुए घड़े में कोई हानि नहीं। यह निमित्त कारण है।

उपादान कारण उसे बोलते हैं जिसकी अपेक्षा कार्य की उत्पत्ति के लिए भी है, कार्य उत्पन्न होने के अनन्तर उसकी स्थिति के लिए भी है और कार्य स्थिति के बाद विलय होने लगे तो भी उसकी आवश्यकता है। जैसे घड़े का उपादान कारण मृत्तिका है। मिट्टी नहीं हो तो घड़ा नहीं बन सकता चाहे एक कुम्हार बैठा हो या सौ कुम्हार बैठे हों। जब घड़ा बन जाए तो घड़े की स्थिति के लिए भी मृत्तिका चाहिए। यदि घड़ा बनने के बाद मृत्तिका खत्म हो जाए तो घड़ा रहेगा कहाँ? घड़े में से यदि मिट्टी निकाल लो तो बतलाओ अब घड़ा क्या रहा? जैसे दीवार से ईंट, चूना, मिट्टी आदि सब निकाल लें तो बोलो क्या दीवार रहेगी? तो घड़े के निर्माण और उसकी स्थिति के लिए मिट्टी को आवश्यकता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। उसी प्रकार घड़े के लय होने के लिए भी मिट्टी की आवश्यकता है। जब घड़ा टूटेगा तो मिट्टी में ही विलीन होगा। तो उत्पत्ति, स्थिति और विलय तीनों में जिसकी आवश्यकता पड़े उसको बोलते है उपादान कारण। अथात् जिसमें कार्य उत्पन्न होता है, उत्पन्न होकर जिसमें रहता है और उत्पन्न होकर अंत में जिसमें लीन हो जाता है उसका नाम है उपादान कारण —

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्मेति।
स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा॥

—तैत्तिरीयोपनिषद्-प्रथम अनुवाक्

तो जहाँ से सारे भूत उत्पन्न होकर जिसमें रहते हैं और जब प्रलय होने लगता है तब जिसमें लीन हो जाते हैं, वही ब्रह्म है। या जिसमें जगत् उत्पन्न हुआ, उत्पन्न होकर रहा तथा नष्ट होकर जिसमें लीन हो गया—वही ब्रह्म है। अर्थात् कार्य जिसको कभी छू नहीं सकता। जैसे जल और तरंग। जल में जैसे तरंग उठता है, उसमें रहता है और उसी में लीन हो जाता है। जल जैसे तरंग का उपादान कारण है। इसी तरह परमात्मा जगत् का उपादान कारण है। कुछ लोग मानते हैं कि ब्रह्म की सिद्धि के लिए ऐसा अनुमान कर रखा है। तार्किक ऐसा मानते हैं। किन्तु यह वास्तविकता है अनुमान नहीं। जगत् ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है, न कि प्रकृति या परमाणु से।

नैयायिक आदि परमाणुओं से जगत् की उत्पत्ति मानते हैं। सांख्यवादी प्रकृति से जगत् की उत्पत्ति मानते हैं। कोई कर्मों से मानता है, कोई स्वभाव से, कोई काल से मानता है और कोई ग्रहों से जगत् की उत्पत्ति मानता है। किन्तु वेदान्तवादी जगत् की उत्पत्ति ब्रह्म से मानते हैं। वेदान्त का सिद्धान्त असली सिद्धान्त है। तो ब्रह्म से कहने का मतलब यह नहीं कि अनुमान है। क्योंकि अनुमान से जो ज्ञान होता है वह परोक्ष ज्ञान है। जैसे धुँआ देखकर हम अग्नि का ज्ञान करते हैं। धुँआ देखकर अग्नि का जो ज्ञान है यह परोक्ष ज्ञान है। इसको अग्नि का दर्शन नहीं कह सकते। अग्नि है बस, इतना कह सकते हैं। वह अग्नि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अंगीठी में है या चूल्हे में है, यह नहीं कह सकते। तो धुँए से अग्नि का ज्ञान परोक्ष ज्ञान है। वह अपरोक्ष नहीं है। इसी प्रकार यदि अनुमान से ब्रह्म का ज्ञान मानें तो वह भी ब्रह्म का परोक्ष ज्ञान हुआ। परोक्ष का तो यही ज्ञान होगा कि ब्रह्म है, पर ब्रह्म है इतने मात्र से मनुष्य कृतार्थ नहीं होता। जब यह समझे कि ब्रह्म मैं हूं तब उसका जन्म-मरण कटेगा। अहं ब्रह्मास्मि– यह असली ज्ञान है। और ब्रह्म है यह तो एक आस्तिकता मात्र है। जैसे कोई यह समझ ले कि अग्नि है, तो इसको परोक्ष ज्ञान बोलते हैं। अनुमान से जितने ज्ञान होते हैं, वे सब परोक्ष ज्ञान होते हैं।

अब यदि जगत् की उत्पत्ति स्थिति देखकर हम ये अनुमान करें कि इसका निर्माता ब्रह्म होगा तो इतने मात्र से मनुष्य कृतार्थ नहीं हो सकता। वह आस्तिक मात्र बन सकता है। परन्तु हमको तो ब्रह्म का दर्शन चाहिए।

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्योमन्तव्यो निदिध्यासितव्यः

वृहदारण्यकोपनिषद्-२-४-५

कहा कि आत्मा का दर्शन करो। दर्शन अनुमान से नहीं होता। दर्शन के लिए तो इन्द्रियाँ हैं अथवा शास्त्र हैं। ये दो ही साधन हैं। इन्द्रियजन्य ज्ञान तो ब्रह्म का है नहीं। कुछ लोगों ने इन्द्रियजन्य ज्ञान भी माना है कि इन्द्रिय से ब्रह्म का ज्ञान है। इसलिए अपरोक्ष है। अपरोक्ष इसलिए भी मानना पड़ता है कि यह जो संसार है यह भी अपरोक्ष है। इसकी निवृत्ति अधिष्ठान के अपरोक्ष ज्ञान से ही हो सकती है। यदि ब्रह्म का परोक्ष ज्ञान हो तो परोक्ष ज्ञान से प्रत्यक्ष भ्रान्ति का निवारण नहीं हो सकता। अतः उसका मोक्ष नहीं हो सकता। इसलिए वो कहते हैं कि ब्रह्म का ज्ञान अनुमान मात्र नहीं है क्योंकि ब्रह्म से जगत् उत्पन्न हुआ। अतः ब्रह्म जगत् का उपादान कारण है। इसीलिए जगत् ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं है। क्योंकि जो वस्तु जिसका उपादान हुआ करती है, उससे अलग उसका कोई कार्य नहीं होता है। जैसे घट मृत्तिका से अलग कुछ नहीं है। मृत्तिका को छोड़कर घट एक क्षण भी रह नहीं सकता। उत्पत्ति हुई तो मृत्तिका में, रहा तो मृत्तिका में, जब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लीन हुआ तो मृत्तिका में। इसीलिए ब्रह्माजी भागवत् में कहते हैं—

अज्ञानसंज्ञौ भवबन्धमोक्षौ, द्वौ नाम नान्यौ स्त ऋतज्ञभावात्।
अजस्रचित्यात्मनि केवले परे, विचार्यमाणे तरणाविवाहनी ॥

भा० १०-१४-२६

भगवान् ने उद्धव से कहा, हे उद्धव—

न यत्पुरस्तादुत यन्न पश्चान्मध्ये च तन्न व्यपदेशमात्रम्
भूतं प्रसिद्धं च परेण यद् यत्, तदेव तत् स्यादिति मे मनीषा

भा० ११-२८-२१

संसार रूपी बन्धन तो अज्ञान भ्रांति से है। ज्ञान में दोनों, बन्धन और मोक्ष एक से हैं। जैसा बन्ध है वैसा ही मोक्ष है। बंधन भी कहने के लिए है तो मोक्ष भी कहने के लिए है। न बन्धन वास्तव में है न मोक्ष वास्तव में है। क्योंकि ज्ञान-स्वरूप आत्मा सत्य है वो ही था पहले। क्योंकि जब दूसरी वस्तु थी ही नहीं तो बन्धन कहाँ से आया। उपनिषद् में कहा कि—

एकमेवाद्वितीयम्। छा० ६-२-१

ऐसा ही ऋग्वेद में नासदीय सूत्र आता है। उसमें लिखा है—

तस्मान्नान्यं किंचन

कि उस परमेश्वर से भिन्न दूसरा कोई था ही नहीं। नहीं था तो फिर बन्धन कहाँ से आ गया? और जब बन्धन था ही नहीं तो यह मोक्ष कहाँ से आ गया। इसलिए बंधन मोक्ष तो कहने मात्र के हैं। जब किसी को बन्धन दिखाई दे रहा है—जैसे किसी को साँप दिखाई दे रहा है—है रस्सी। किन्तु उसे कोई साँप मानकर डर रहा है। तो उसको कहना पड़ता है कि यह तो रस्सी है साँप नहीं है। यदि किसी को साँप दीखे ही नहीं, वह रस्सी ही देख रहा है। साँप देख ही नहीं रहा है। तो जिनको बंध प्रतीत हो रहा है, उनको कहना पड़ता है कि बन्ध है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं, आत्मा तो नित्यमुक्त है। शंकराचार्य ने कहा—

मायां कृतौ बन्धमोक्षौ न तौ स्वात्मनि वस्तुतः।
निष्क्रियायां यथा रज्वां सर्पाभास गमागमौ ॥

बंध और मोक्ष यानी बंध की निवृत्ति–दोनों माया से हैं अर्थात् बंधन भी माया से है तो उसकी निवृत्ति भी माया से है। यह नहीं है कि जब बंध मायिक है तो निवृत्ति कोई सचमुच हो जाएगी। अपने स्वरूप में ये दोनों वस्तुतः नहीं है।

कहते हैं एक कोई आदमी था वो प्रातःकाल मैदान में शौच जाया करता था। एक दिन क्या हुआ कि उसके एक लड़की थी, उसने कपड़ा रंग कर वो रंग का बर्तन बाप के सिरहाने चारपाई के नीचे रख दिया। अब बाप उठा प्रातःकाल। लड़की ने तो लोटे में रंग भर रखा था न? वह नित्य नियम के अनुसार उठा। लोटा उठाकर चला गया। जंगल में शौच हुआ। लोटे से हाथ धोया। जब उठा तो देखा कि हाथ लाल है। हाथ लाल कहाँ से हो गया? फिर जहाँ शौच हुआ था, वहाँ गया। देखा तो खून ही खून है। उसने सोचा अन्दर मेरी नाड़ी फट गई है और सारा खून निकल गया। अब तो मैं मरा। धीरे-धीरे गिरता-पड़ता घर पहुंचा। चक्कर आने लगा। पैर लड़खड़ाने लगे। कई जगह बैठकर घर आया। घर वाले पूछें कि आपको क्या हो गया? हो क्या गया? मैं तो मरा। तुम जल्दी डाक्टर को बुलाओ। डाक्टर को बोलना कि मेरी तो अन्दर की नाड़ी फट गई है और सारा खून निकल गया है। उधर आदमी को भेजा। इधर लड़की लगी रंग का लोटा खोजने: जब गई चारपाई के नीचे तो लोटा नहीं मिला उसको। उसने हल्ला मचाया, मेरा रंग कौन ले गया, रंग कौन ले गया, लोटा कौन ले गया? उसने पूछा मुन्नी क्या बात है? मैंने रात को आपके चारपाई के नीचे रंग भर कर एक लोटा रखा था। वो खबर नहीं कौन ले गया? रंग का लोटा था वो? तुमने रखा था चारपाई के नीचे? हाँ, चट कूद खड़ा हो गया कि मैं राजी-खुशी हूं। और आदमी को भेजा कि वापस बुलाओ उसे। डाक्टर की कोई जरूरत नहीं। मेरे इलाज की जरूरत नहीं है। असल रोग तो था ही नहीं। उसको तो रंग के कारण भ्रांति हो गई कि खून

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की नली फट गई है और एक लोटा खून निकल जाना कोई साधारण बात थोड़े है ? इतना खून मेरा निकल गया तो मेरा रहा क्या ? परन्तु जब यह निश्चय हो गया कि वह खून नहीं था तो रोग भाग गया। तो भाग क्या गया ? रोग था ही नहीं। जब रोग हुआ ही नहीं तो फिर भागना क्या है ? उसको तो एक गलत निश्चय बैठ गया था कि मेरा खून निकल जाया।

तो इसी प्रकार बन्धन नहीं है। क्योंकि जब एक अद्वितीय परमात्मा है तो बन्धन करने वाली कोई चीज नहीं है।

माया कृतौ बंध मोक्षौ

तो बंध भी मायिक है और उसकी निवृत्ति भी मायिक है। माने कहने के लिए रोग है और कहने के लिए ही निवृत्ति भी है। पहले उसने मान लिया कि मेरी नाड़ी फटी और मैं मरा और अब मान लिया कि खून क्या, वह तो रंग था। खून थोड़े निकला है। तो यह तो मानी हुई बात है—माया कृतौ बंध मोक्षौ— यह तो मायाकृत है तो उसकी निवृत्ति भी मायाकृत है—

न तौ स्वात्मनि वस्तुतः

ये आत्मा में नहीं है। क्यों दृष्टान्त देते हैं—

निष्क्रियायाम् यथा रज्जवाम्

जैसे रस्सी अपने स्वरूप में ज्यों की त्यों है और भ्रांति होने पर मनुष्य की दृष्टि में उसमें साँप भी आ गया और फिर किसी के उपदेश से साँप निकल गया। तो भ्रांत पुरुष की दृष्टि में साँप आया और फिर रस्सी के तत्वज्ञान से साँप निकल भी गया। पर रस्सी से पूछो कि उसमें साँप आया था ? तो रस्सी की दृष्टि में साँप थोड़े ही आया था ? फिर कहाँ से आ गया ? रस्सी तो अपने स्वरूप में ज्यों की त्यों है। उसमें—सर्पाभास गमागमौ। साँप का भास कल्पित है। झूठा साँप आ भी गया और चला भी गया। इसी प्रकार भ्रांति से हमको बंधन प्रतीत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होता है और जब वह भ्रांति हट जाती है तो उसी का नाम मोक्ष है, और कुछ नहीं है।

यह बात समझाने के लिए सृष्टि की बात कही गई है। अगर सृष्टि को ब्रह्म से न मान कर प्रकृति से मान लें तो फिर बात सिद्ध नहीं होती। क्योंकि एक हो गया ब्रह्म और दूसरी हो गई प्रकृति तो फिर द्वैत तो बना रहा। अद्वैत कहाँ रहा ?

एक मेवाद्वितीयम्

श्रुति ठीक नहीं बैठेगी। इसीलिए इस बात को खंडन करने के लिए कि ना जगत् प्रकृति से बना और न जगत् परमाणुओं से बना। किन्तु यह ब्रह्म से बना है। अतः—

यत् पुरस्तादुत यन्न पश्चान्मध्ये च तन्न व्यपदेशमात्रम्

भा० ११-२८-२१

जो वस्तु पहले भी नहीं रहती और पीछे भी नहीं रहती तो वो फिर बीच में नहीं होती। केवल कहने के लिए होती है—

भूतं प्रसिद्धं च परेण यद् यत्।

जो किसी दूसरे के आधार पर प्रतीत हो रहा है, वह वही है। उससे अलग कुछ नहीं है। दृष्टान्त देते हैं सुवर्ण का—

यथा हिरण्यं स्वकृतं पुरस्तात्
पश्चाच्च सर्वस्य हिरण्मयस्य।
तदेवमध्ये व्यवहार्यमाणं
नानापदेशैरहमस्य तद्वत् ॥ भा० ११-२८-१९

जैसे सोने की डली रखी थी। घंटे भर में आदमी आया तो देखता क्या है कि आभूषण फैले पड़े हैं। फिर सायंकाल को देखा तो सुवर्ण का सुवर्ण। एक भी आभूषण नहीं—तो—यथा हिरण्यं स्व कृतं पुरुस्तात्— जैसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आभूषण से पहले भी वह स्वर्ण था और आभूषण मिट जाने पर भी वह स्वर्ण रहा। तदेव मध्ये व्यवहार्यमाणं– तो फिर बीच में जो आभूषणों का नाम पड़ गया, वह भी सोना ही है कुछ और नहीं। आभूषण कोई अलग वस्तु नहीं है, बल्कि स्वर्ण में कल्पित है। आभूषण कल्पित है, मिथ्या है, सोना सत्य है। मृत्तिका सत्य है, घट कल्पित है, मिथ्या है।

तो यही बात समझनी है कि जगत् को अगर ब्रह्म से अलग मान लिया जाय तो फिर वह निष्प्रपञ्च अद्वैत सिद्ध नहीं होता है और 'निष्प्रपञ्च ब्रह्म मैं हूं'– इस ज्ञान से मोक्ष होना है। सप्रपञ्च ब्रह्म मैं हूं–इससे तो मोक्ष होना नहीं। ब्रह्म निष्प्रपञ्च आत्मा है–यह समझने के लिए अब सृष्टि को ब्रह्म से कहा। अगर यह निश्चय हो जाए कि ब्रह्म अद्वैत हो नहीं सकता और अगर सृष्टि ब्रह्म से है तो वह ब्रह्म से भिन्न हो नहीं सकती। इसलिए जगत् ब्रह्म उत्पन्न करके भी निर्द्वन्द्व अद्वैत रह जाता है। तो प्रतिज्ञा और दृष्टांत ऐसी चीज है कि एक के ज्ञान से सबका ज्ञान कहा? प्रकृति अलग है, जगत् अलग है, ब्रह्म अलग है, तो ब्रह्म के ज्ञान से जगत् का ज्ञान कैसे हुआ? गौ के ज्ञान से भैंस का ज्ञान नहीं हो सकता। और भैंस के ज्ञान से घोड़े का ज्ञान नहीं होता। तो अगर प्रकृति ब्रह्म से अलग है और ब्रह्म प्रकृति से अलग है, तो फिर प्रकृति से हुआ जगत् उत्पन्न। ब्रह्म से तो हुआ ही नहीं। तो ब्रह्म के ज्ञान से सबका ज्ञान कैसे होगा। उपनिषद् में तो यही कहा गया है कि ऐसा कौन तत्व है कि जिसके एक के ज्ञान से सबका ज्ञान हो जाए। तो अब एक के ज्ञानसे सबका ज्ञान तभी सिद्ध हो जब एक ही एक हो, दूसरा उससे भिन्न कुछ हो ही नहीं। तो दूसरा भिन्न तब नहीं है जब उसी का परिणाम माना जाए। उसी की मिथ्या प्रतीति अनेक रूप से है। इस बात को सिद्ध करने के लिए सृष्टि कही जाती है। सृष्टि कोई अनुमान रूप में नहीं है। अनुमान का तो ब्रह्म विषय ही नहीं, क्योंकि उसे अतर्क्य कहा गया है। यानी वह तर्क का विषय नहीं, मन का विषय नहीं, संसारी शब्दों का विषय नहीं। तो उसका ज्ञान अहं ब्रह्मास्मि, तत्वमसि– इन उपनिषद् वाक्यों से होता है। इसीलिए यह कहने के लिए कि ब्रह्म एक है, उसमें मनुष्य की स्थिति हो जाए, क्योंकि दूसरा है ही नहीं। दूसरे से भय होता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जो नाना प्रकार का ब्रह्म से भिन्न दिख रहा है वह तो इन्द्रियों के कारण होता है। अंधा आदमी स्वप्न में भी रूप नहीं देखता है। हमारे पास एक अंधा आता था। उससे हमने पूछा कि तुमको स्वप्न में क्या दिखाई पड़ता है। वह बोला कि जैसे मैं यहाँ पर डंडा लेकर चलता हूं वैसे ही स्वप्न में भी डंडा पकड़कर चलता हूं। उसको वहाँ भी रूप आकार नहीं दिखाई पड़ता है। यह जो रूप आकार दिखाई पड़ रहा है वह आँखों की कृपा है। यह जो शब्द सुनाई पड़ रहा है, वह कानों के कारण। तो इन्द्रियों से नीचे उतर जाएँ तो नाम रूपात्मक जगत् रहे ही नहीं। जाग्रत में तो इन्द्रियों से दिखता रहता है और स्वप्न में मन से दिखता है। यदि इन्द्रियों और मन दोनों से पीछे हट जाएँ तो न तो वहाँ स्वप्न जगत् है न जाग्रत का। इसीलिए कहा कि— द्वैत मिव भवति। यानी द्वैत–जैसा दिख रहा है। जैसे लोग पीला ऐनक लगाते हैं तो सफेद पदार्थ भी पीला दिखने लगता है। तो वह पीला हो नहीं जाता है बल्कि पीला दिख रहा है। तो चश्मा पीला होने से सफेद पदार्थ भी पीला दिख जाता है। उसी प्रकार नेत्र में एक खूबी है कि आँख खुलते ही नाम रूप दिखाई देने लगते हैं। नाम रूप आँखों में बसा हुआ है। जब हम आँखों से पीछे हट जाते हैं तो नाम रूप छूट जाते हैं। इसी तरह कानों के अन्दर शब्द बसे हैं। कान हैं तो कुछ न कुछ सुनाई पड़ेगा। जब पाँचों इन्द्रियाँ और छटे मन से भी पीछे हट जाएँ तो बस, न स्थूल जगत्, न कारण जगत् और न सूक्ष्म जगत्। इसीलिए उपनिषद् में द्वैत के साथ इव लगाया। यानी द्वैत जैसा दिख रहा है। जैसे सिनेमाघर में सारा बाजार और न जाने कहाँ-कहाँ के दृश्य दिखाई देते हैं किन्तु आप उस बाजार से दो आने का सामान चाहकर भी नहीं खरीद सकते। क्योंकि वहाँ है कुछ नहीं लेकिन दिख रहा है। इसी तरह से ये कहते हैं–यत्र द्वैतं इव भवति, यहाँ द्वैत जैसा होता है। एक द्वैत ब्रह्म को समझने के लिए कहा गया है कि द्वैत तो परमात्मा की अन्यथा प्रतीति है। जैसे आभूषण स्वर्ण की अन्यथा प्रतीति है। आभूषण आदि आकार सोने में कल्पित हैं, वास्तविक नहीं। पहले आभूषण बना कर तौला तो उसका वजन पाँच तोला था पुनः हाथी बना लिया। फिर हाथी बनाकर तौला तो वजन पाँच तोला ही। तो सोने का वजन पाँच तौला था। तो हम पूछते हैं कि हाथी का वजन कहाँ गया? पाँच तोला तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सोना ही था। जब उसमें हाथी आया तो उसका वजन बढ़ना चाहिए न। किन्तु पाँच का पाँच ही रहा। तो निष्कर्ष यह निकला कि हाथी का वजन था ही नहीं। अच्छा हाथी का वजन है पाँच तोला। उसमें से सुवर्ण का वजन घटा दें। दो चीज अलग-अलग हों तो वजन तो दोनों का होगा न। जैसे सेर भर दूध में पाव भर पानी मिला दें और पाव भर मिला दें चोनी। तो डेढ़ सेर हुआ कि नहीं वजन उसका। कि सेर ही रह जाएगा ? यदि सेर का सेर है तो न उसमें पानी मिला और न उसमें चीनी मिली। पर जब उसमें पानी और चीनी डाला तो उसका भार बढ़ना चाहिए। तो पाँच तोला सोना और उसमें उत्पन्न हुआ हाथी। तो हाथी का कुछ तो वजन होना चाहिए न। पर जब तौला तो ज्यों का त्यों। एक रत्ती भी ज्यादा नहीं। तो हमको कहना पड़ेगा कि हाथी का वजन है ही नहीं। तो वजन क्यों नहीं ? क्योंकि वजन तो तब हो जब कोई चीज हो। वहाँ तो केवल आकार है जो कि सोना ही सोना है। सुवर्ण ही हाथी के शकल में दिख रहा है अगर उस पर हथौड़ा मारो तो शकल मिट जायेगी लेकिन स्वर्ण ज्यों का त्यों रहेगा। सुवर्ण सत्य है और जो सत्य होता है वह निर्भय होता है। सुवर्ण निर्भय है। चाहे अग्नि में डालो, कूटो, परन्तु वह ज्यों का त्यों रहेगा। लेकिन हाथी को अग्नि में डालो तो हाथी गया। हथौड़ा मारो कि हाथी गायब। तो रूप नाम डरपोक है, मिथ्या है, है ही नहीं। इसीलिए कहा कि आभूषण और हाथी केवल कहने के लिए हैं वास्तव में केवल सुवर्ण ही है। वैसे ही जगत् केवल कहने के लिए है वास्तव में ब्रह्म ही है। जगत् की उत्पत्ति ब्रह्म से कही—

तदेत्सयं यथा सुदीप्ताव्यावकाद्विस्फुलिङ्गाः सदृशः प्रभवन्ते स्वरूपाः।
तथाक्षराद्विविधाः सोमभावाः प्रजायन्ते चैवापियन्ति।

—मुण्डक- २-१

सृष्टि की उत्पत्ति का क्रम कई प्रकार से लिखा है। इसका कारण है कि वह तो है ही नहीं। तो क्या क्रम और क्या अक्रम। अतः सृष्टि को छोड़कर एक अद्वितीय ब्रह्म को समझना है। मतलब यह कि सृष्टि में कोई आस्था नहीं रखनी चाहिए और न इसमें अनुमान करना चाहिए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनुमान से तो केवल परोक्ष ज्ञान होगा। जिससे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। जब एक अद्वितीय ब्रह्म को समझ लो तो मनुष्य का अपरोक्ष भ्रम दूर हो जाता है। अपरोक्ष भ्रम दूर होने से इसका कल्याण हो जाता है। और भी शंकाएँ हैं उन पर आगे प्रकाश डालेंगे।

ॐ पूर्णमदः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वप्न तथा जाग्रत अवस्था का विचार

तो इसमें कहा कि मनुष्य को अपने स्वरूप का ज्ञान ही मुख्य कर्तव्य है।

ज्यों नानक बिनु आपा चीन्हें,
मिटे न भ्रम की काई।

यह संसार जिसमें हम बैठे हैं इसका मूल कारण अज्ञान है। तो शंकराचार्य जी ने लिखा है—

कोऽहं कथमिदं जातं को वै कर्ताऽस्य विद्यते।
उपादानं किमस्तीह विचारः सोऽयमीदृशः॥
अपरोक्षानुभूति-१२

मैं कौन हूं, यह जगत् कैसे हुआ ? तो कोऽहं का उत्तर दिया था उन्होंने—

नाहं भूतगणो देहो नाहं चाक्षगणस्तथा।
एतद्विलक्षणः कश्चिद्विचारः सोऽयमीदृशः॥
अपरोक्षानुभूति–१३

इसका कारण कौन ?—

अज्ञान प्रभवं सर्वं ज्ञानेन प्रविलीयते।
संकल्पो विविधः कर्ताविचारः सोऽयमीदृशः॥
अपरोक्षानुभूति-१४

यह जगत् अज्ञान से उत्पन्न है। ज्ञान में ही लीन हो जाता है। क्योंकि ज्ञान ही अज्ञान को दूर कर सकता है। जैसे रात्रि को स्वप्न होता है वह जागने से ही दूर हो सकता है। जहाँ आँख खुली नहीं कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वप्न का संसार गया। स्वप्न के प्रपञ्च की रचना निद्रा से होती है। और जब मनुष्य जागता है तो निद्रा रहती नहीं। क्योंकि निद्रा की निवृत्ति का नाम ही जागरण है। इसीलिए स्वप्न प्रपञ्च को निवृत्ति का कोई दूसरा उपाय नहीं है। जगा देना, बस ! स्वप्न प्रपञ्च निद्रा से उत्पन्न हुआ है इसलिए जागरण से दूर होता है। अपने स्वरूप में आना हो जागना है। तुलसीदास जी ने कहा है—

उमा कहौं मैं अनुभव अपना,
सच हरि भजन जगत सब सपना।

हे पार्वती, जगत् सपना है। इसमें सच्चा सिर्फ भगवान् है और सब मिथ्या है। यदि कोई मनुष्य जाग्रत में राजा है और स्वप्न में भिखारी भी बन जाए तो उसका क्या नुकसान है ? और कोई भिखारी स्वप्न में राजा हो जाए तो जागने पर क्या लाभ ?

सपने होई भिखारी नृप, रंक नाक पति होई।
जागे लाभ न हानि कछु तिमि प्रपञ्च जग सोई॥

जैसे भिखारी सपने में राजा बन जाए और जागे तो फिर भिखारी का भिखारी। एक सेकेण्ड राज्य भोग लिया तो क्या फायदा ? स्वर्गपति स्वप्न में भिखारी बना। जागा तो इन्द्र का इन्द्र ही है। तो उसको क्या हानि ? जिस प्रकार स्वप्न के लाभ और हानि का कुछ भी महत्व नहीं, ठीक उसी प्रकार इस प्रपञ्च के लाभ-हानि का भी कोई महत्व नहीं। क्योंकि जब जायेंगे तो खाली हाथ। कुछ भी साथ नहीं जायेगा। तो कहते हैं कि संसार की सबसे बड़ी हानि भी हानि नहीं और लाभ भी लाभ नहीं। क्योंकि यह स्वप्नवत् है, झूठा है। सबसे पहला उपदेश यही है कि संसार स्वप्न है। स्वप्न का कारण निद्रा है। निद्रा एक प्रकार का अज्ञान है। बाहरी जगत् के ज्ञान को भूल जाना ही निद्रा है। हम सो जाते हैं तो यह भी पता नहीं रहता कि कहाँ सोए ? स्वप्न के कष्ट से किसी को बचाने का उपाय यही है कि उसको जगा दो। मनुष्य स्वप्न के लाभ-हानि को सत्य मानकर इसमें फँसा हुआ है। मनुष्य जिस स्थिति में है उसका अनुभव करना जागरण है और जिस स्थिति में है उसको भूल जाना, और जिसमें नहीं है उसका अनुभव करे इसको स्वप्न कहते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैं। स्वप्न में क्या होता है कि मनुष्य कमरे के अन्दर चारपाई पर लेटा है और अनुभव कर रहा है कि बाजार में सौदा खरीद रहा है। तो लेटा है घर में और पहुंच गया बाजार में। अच्छा तो दो बजे रात में कौन सा बाजार खुला है कि वह सौदा खरीद रहा है? तो न कोई बाजार है, न वह कहीं गया है। है तो अपने कमरे में। किन्तु जो विद्यमान स्थिति है उसको भूल गया और जो स्थिति नहीं है उसका अनुभव कर रहा है। तो विद्यमान स्थिति को भूल जाना और अविद्यमान स्थिति का अनुभव करना, इसी का नाम स्वप्न है।

अच्छा, जागरण क्या है? जिस स्थिति में है, उसी का अनुभव करना जागरण है। जागेगा तो क्या अनुभव करेगा कि वह कमरे में पड़ा है। तो जिस स्थिति में है उसका वैसा ही अनुभव करना जागरण है और जो स्थिति नहीं है उसका अनुभव करना स्वप्न है। और नींद क्या है? किसी भी स्थिति का अनुभव नहीं करना यही नींद है। न विद्यमान का न अविद्यमान का। जब गहरी नींद में होते हैं तो न यही पता चलता है कि हम चारपाई पर हैं और न यही पता चलता है कि बाजार में सौदा कर रहे हैं। यानी कि जब कुछ भी अनुभव नहीं हो उस स्थिति का नाम निद्रा है—

मोह निसा सब सोवनहारा,
देखहिं सपन अनेक प्रकारा।

मोह नाम अविद्या का है। अविद्या की रात्रि में सब स्वप्न देख रहे हैं। यानी जगत् का जो स्वरूप देख रहे हैं वह स्वप्नवत् है। अच्छा जब हम स्वप्न देखते हैं तब थोड़े पता चलता है कि हम स्वप्न देख रहे हैं। वहाँ तो यही प्रतीत होता है कि जैसे जागने पर देखते हैं, वैसा ही देख रहे हैं। स्वप्न में शेर देखा और डर कर भाग चले। तो स्वप्न को स्वप्न-काल में सत्य मानते है। अब जागना क्या हुआ? इस पर विचार करें तो—

जानिए तबहि जीव जग जागा,
जब सब विषय विलास विरागा।

संसार को स्वप्न समझने का अर्थ यह है कि इसके हानि-लाभ में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

फँसे नहीं। बड़े से बड़े लाभ पर खुश नहीं हो और बड़ी से बड़ी हानि पर पश्चाताप न करे। तो कहा जागे जीव की पहचान यही कि विषय, विलास से वैराग्य हो जाए। वैराग्य का अर्थ यही है कि यहाँ की हानि-लाभ, यहाँ का सुख-दुःख, यहाँ की उन्नति-अवनति उसको बाधा नहीं पहुंचाए। जो हुआ, ठीक है। बुरा सपना, वह भी ठीक। अच्छा सपना, वह भी ठीक। उसमें कोई हानि-लाभ नहीं—

दृश्यमान् प्रपञ्च यह सपन तेरा,
सत मान बैठा तू इसें और फँस गया।

जब तक स्वप्नकाल है तब तक सपने का प्रपञ्च सत्य मालूम पड़ता है। जब हम जाग जायेंगे तब यह स्वप्न प्रतीत होगा। एक कोई सेठ था। उसके कई मिलें थीं, कारखाने थे। सबसे बड़ी कपड़े की मिल थी जिसमें लाखों रुपए की रुई पड़ी थी। वह सेठ सत्संगी भी था, वेदान्त का रसिक था। एक दिन क्या हुआ कि वह सोया था। उसे स्वप्न आया कि उसको कहीं का राजा बना रहे हैं। कपड़े वपड़े पहना दिए। चँवर छत्र लेकर खड़े हैं। पण्डित वेदमन्त्र बोल रहे हैं। अब माथे पर मुकुट चढ़ने ही वाला है। अब कुर्सी पर बैठाकर सिर्फ घोषणा कर देनी है कि वह राजा हो गया। वह बहुत प्रसन्न था। इसी बीच उसके मिल में आग लग गई। रुई को जलने में क्या देर लगती है। जो कपड़े बने थे वह भी जल कर भस्म हो गये। वहाँ का मैनेजर दौड़कर सेठ जी को खबर देने आया। सेठ सोया था और सपने में मग्न था। मैनेजर ने कहा कि मिल में आग लग गई। उसकी बात सुनकर सेठ ने आँखें खोलो और हँसा तो मैनेजर ने समझा कि सेठ जी अभी सोए हैं अभी हमारी बात समझे नहीं। उसने फिर कहा कि आप हमारी बात समझे कि नहीं। सेठ बोला हाँ समझ गया। तो फिर हँसे क्यों? तो बोला कि हँसा इसलिए कि मेरे को राजतिलक हो रहा था। मैं भूमण्डल का राजा बनने वाला था। तुमने जगा कर मेरा राज्य समाप्त कर दिया। वह राज्य भी गया, कुर्सी भी गई और राज्य देने वाले भी गए। यहाँ तुम सुना रहे हो कि मिल खत्म हो गई। अब मैं सोच रहा हूं कि किसके लिए रोया जाए। मेरे को हँसी आ रही है कि तुमने जगाकर सब गड़बड़ कर दिया। उधर राज्य चला गया और इधर मिल चली गई। अब रोऊँ तो किसके लिए?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसके लिए या उसके लिए।

निष्कर्ष यह निकला कि जगत् को स्वप्न समझ लें तो यहाँ हानि से उसे दुःख भी नहीं होता और यहाँ के लाभ का सुख भी नहीं होता। विद्वान् को ऐसा नहीं होता। तो विद्वान् किसको कहते हैं? विद्वान् का लक्षण लिखा है—

न प्रहृष्येन्नित्प्रयं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चा प्रियम्।
स्थिरबुद्धिरसंमूढ़ो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः॥

गी०- ५-२०

यानी जिसने हर्ष शोक दोनों को मार डाला है वही ज्ञानी है। हर्ष भी एक विकार है और शोक भी एक विकार है। बड़ी से बड़ी सम्पत्ति और बड़ा से बड़ा लाभ भी उसके मन में खुशी नहीं उत्पन्न करता है।

ब्रह्माण्डमण्डलीमात्रं किं लोभाय मनस्विनः।
शफरीस्फुरितेनाब्धिः क्षुब्धो न खलु जायते॥

वैराग्य शतकम्-९२

अरे जागे हुए मनुष्य को, तत्वज्ञानी को सारे संसार का राजा बनाएँ, चौदह भुवन का राज्य भी उसे दे दिया जाए तो भी उसे लालच नहीं होगा।

जैसे किसी भिखारी को ग्लोब (संसार का नक्शा) दे दिया जाय कि ले तू इस संसार का मालिक हो गया, तो उस ग्लोब के संसार से उसका क्या लाभ? बेकार में उस गोले को भी सम्भालना पड़े। तो वह कहेगा कि तू ही रख ले।

तो इसी तरह तत्वज्ञानी की दृष्टि में संसार उस गोले के समान है।

संसार में छोटी सी मछली के दौड़ने से महासमुद्र में जैसे तरंग नहीं उठ सकती हैं उसी प्रकार उस महापुरुष के हृदय में संसार का हानि-लाभ कुछ भी हलचल पैदा नहीं कर सकता। वह शान्त चित्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रहता है। महापुरुष का चित्त शान्त रहता है।

दृश्यमान् प्रपञ्च यह स्वप्न तेरा

यानी यह जो संसार दिखाई पड़ रहा है, यह तेरा स्वप्न ही है। किन्तु जब जागे, तब-तब स्वप्न को स्वप्न माने। अब देखो, इससे छूटने का कोई उपाय है नहीं। सिवाय जागने के कोई मार्ग नहीं है।

ज्यों सपने सिर काटै कोई।
जागे बिनु न दूर दुःख होई॥

जागने का अर्थ है अपने रूप में आना। यानी वास्तविक स्थिति में आना। यानो तू भूमा है, ऐसा अनुभव कर। भूमा अद्वैत को कहते हैं।

नान्यत् जानाति शृणोति यः —उपनिषद्

जहाँ भेद दर्शन हो—द्रष्टा, दर्शन, दृश्य—यह त्रिपुटी जहाँ दिख रही हो, उसका नाम अल्प है। वह परिछिन्न है। जहाँ त्रिपुटी नहीं है, उसे तुरीय अवस्था बोलते हैं, वही भूमा है। तो जागने का अर्थ है कि तू अपने शरीर में स्थिर हो जाओ। तो माया का जो चमत्कार है उससे दूर हो जाओ। पता है नहीं और ढूँढ रहा है। तो शंकराचार्य जी ने कहा—

अज्ञानं प्रभवं सर्वं ज्ञानेन प्रविलीयते।
संकल्पो विविधः कर्ता विचारः सोऽयमीदृशः॥

अपरोक्षानुभूति-१४

जो कुछ दिख रहा है वह अपने आपको भूलने से दिख रहा है। ज्ञान हो जाने पर इसका अभाव हो जाता है। जैसे जागने पर स्वप्न मिथ्या सिद्ध हो जाता है। तो जागने का लक्षण किया—

अनादि माया सुप्ते यदा जीवे प्रबुद्धयेत्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तुलसीदास के शब्दों में—

जानिए तबहिं जीव जग जागा
जब सब विषय विलास विरागा।

माण्डूक्यकारिका में इसी को कहा—

अनादि माया सुप्ते तथा जीवो प्रबुद्धयेत्

अनादिकाल की माया में यह जीव सोया पड़ा है। एक स्वप्न से दूसरे स्वप्न में यानी एक शरीर से दूसरे शरीर में जाता है।

अज-नाम है जाग्रत प्रपञ्च से रहित का। जाग्रत प्रपञ्च का द्रष्टा जो अभिमानी है उसे विश्व बोलते हैं। जाग्रत, स्वप्न, सुसुप्ति ये तीनों से उठकर जब अद्वैत का अनुभव करने लग जाए तब समझो कि जाग गया।

अज्ञान से यह संसार होता है और ज्ञान होने पर समाप्त हो जाता है। इसीलिए शंकराचार्य जी ने कहा—

कुरुते गंगासागर गमनं
व्रत परिपालनमथवा दानं

ज्ञान के बिना मोक्ष नहीं। मोक्ष का अर्थ है क्लेशों से छुटकारा पाना। दुःख-क्लेश वास्तव में स्वप्न हैं। और स्वप्न तभी हटता है जब कि जाग जाए। तो जागने का अर्थ है ज्ञानवान् होना। ज्ञान से रहित सब साधन करे किन्तु मोक्ष नहीं हो सकता। चाहे लाख तीर्थ करे, व्रत करे, तपस्या करे, दान करे, सब कुछ करे पर यदि उसको ज्ञान न हो तो परिणाम यही निकलेगा कि सैकड़ों जन्म में भी मुक्ति नहीं हो सकती। मतलब यह कि मुक्ति के लिए ज्ञान प्राप्ति जरूरी है। तीर्थ, व्रत आदि का यहाँ निषेध नहीं है। इसका अर्थ यह नहीं कि शुभ कर्म छोड़ देना चाहिए। कई लोग ऐसा समझते हैं कि हमने तो गंगा स्नान कर लिया, हम तो मुक्त हो गए, अब क्या करना है ज्ञान लेकर। जैसे कोई आठवीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पास लड़का चपरासी लग गया। वह सोचता है कि हमको तो नौकरी लग गई, अब क्या करना है आगे पढ़कर। पर यह खोटी दृष्टि है। नौकरी मिलना अलग बात है और ज्ञान की प्राप्ति अलग बात है। बी.ए., एम.ए. करने पर अच्छी नौकरी मिल सकती है। तो केवल स्नान करने से मोक्ष नहीं मिल सकता है। गंगा स्नान करो पर भजन साधन भी करते रहो। गंगा स्नान से केवल पवित्रता का फल मिलेगा, पवित्र हो जाएगा, स्वर्ग चला जाएगा। जिस भावना से स्नान करेगा उस फल की प्राप्ति हो जाएगी। यदि सकाम भावना को लेकर कोई काम या पुण्यकर्म किया जाता है तो उसकी प्राप्ति हो जाती है पर मोक्ष नहीं मिलता। यदि कोई मनुष्य ऐसा अभिमान कर ले कि हमने दान कर लिया है या चान्द्रायण व्रत कर लिया है, अब हमको सत्संग या ज्ञान की जरूरत नहीं है तो यह उसकी भूल है। मनुष्य को इतने से ही सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिए। तो यह सब तो छोटे-छोटे साधन हैं। इनसे पुण्य का फल तो हो जाएगा पर मोक्ष नहीं होगा। मोक्ष तो तभी होगा जब ज्ञान होगा। उसके लिए तो अपने स्वरूप को जानना होगा। सैंकड़ों जन्म में भी ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती। इसीलिए कहा कि–

ज्यों नानक बिन आप चिन्हें,
मिटै न भ्रम की काई।

तो यह तो भ्रम है न। और भ्रम अज्ञान से होता है। जैसे रस्सी में साँप का भ्रम हो जाना। रस्सी तो रस्सी है, वह साँप कभी बन नहीं सकती। परन्तु अज्ञान ने उसमें साँप का भ्रम डाल दिया। तो भ्रान्ति मूल अज्ञान है। भ्रम कब मिटेगा, जब ज्ञान हो। रस्सी के ज्ञान के बिना साँप का भ्रम मिटेगा नहीं। अपने स्वरूप के अज्ञान से यह संसाररूपी भ्रम खड़ा हुआ है। इसकी निवृत्ति कब हो? जब कि अपने स्वरूप का अज्ञान दूर हो। अपने स्वरूप का अज्ञान कब दूर होगा, जब अपने स्वरूप का सही ज्ञान होगा। इसीलिए मैं कौन हूं इसका ज्ञान अनिवार्य है—

कोऽहं कस्त्वंकुत आयातः, का मे जननी को मे तातः।
इति परिभावय सर्वमसारं, सर्वं त्यक्त्वा स्वप्न विचारम्॥

चर्पट पंजरिका-१४

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मैं कौन हूं ? कहाँ से आया हूं ? यह संसार क्या है ? इसका विचार करना अनिवार्य है।

मैं पंचभूतों से परे हूं। जो कुछ दिख रहा है, वह अज्ञान के कारण। तो वेदांत अज्ञान की निवृत्ति का उपाय करता है। अज्ञान की निवृत्ति होती है ज्ञान से। जैसे अंधकार की निवृत्ति प्रकाश से होती है। कोई जप करे, पूजा करे किन्तु अन्धकार तो तभी दूर होगा जबकि प्रकाश हो जाय। इसी तरह से कुछ भी साधन करते रहो, परन्तु अज्ञान की निवृत्ति तो ज्ञान से ही होगी, अन्य साधनों से नहीं। किन्तु अन्य साधन भी पुण्य देने वाले हैं। तीर्थ, दान आदि से पुण्य मिलता है और कामनाओं की पूर्ति हो जाती है। पुण्य कर्मों के फल भी दो प्रकार के हैं। एक सकाम फल, दूसरा अन्तःकरण की शुद्धि। निष्काम भाव से किया जाए तो अन्तःकरण की शुद्धि हो जाती है। शुद्ध अन्तःकरण में ज्ञान का उदय होता है। जैसे अन्न पैदा करना है तो धरती में अन्न का दाना डालना पड़ेगा। घर में अन्न दाना भरा रहे तो उससे अन्न थोड़े ही पैदा होगा। बीज डालने से पहले खेत की सफाई करनी पड़ती है। उसमें कई प्रकार की घास है, पत्थर हैं, कंकड़ हैं इसकी सफाई अनिवार्य है। मिट्टी को साफ बनायेंगे, हल चलायेंगे। मिट्टी जब स्वच्छ और मुलायम बन जाएगी तब कहीं जाकर बीज अंकुरित होगा। उसी प्रकार अन्तःकरण भी एक प्रकार का खेत है। इसमें एक प्रकार का ज्ञानरूपी फल उत्पन्न करना है। विचार इसका बीज है। सत्संग रूपी जल डालने से ज्ञान का अंकुर पैदा होगा। निष्काम कर्म करने से अन्तःकरण निर्मल होता है। निर्मल अन्तःकरण से वैराग्य उत्पन्न होता है। पुनः उसमें विवेक का उदय होता है।

तो मैं कौन हूं ? यह संसार क्या है और कहाँ से पैदा हुआ है ? इस पर विचार करना है। दृश्यमान् जगत् का कारण अज्ञान है। इस कारण को समाप्त करने के लिए ज्ञान की आवश्यकता है। सुसुप्ति में तो संसार है ही नहीं। अज्ञान और नाना प्रकार के संकल्प, मिल कर जगत् को खड़ा करते हैं। खाली अज्ञान हो और संकल्प नहीं हो तो जगत् खड़ा नहीं होता। सुसुप्ति में अज्ञान है, पर कोई संकल्प नहीं,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसीलिए वहाँ जगत् नहीं बनता। जब संकल्प पैदा होता है तब संसार खड़ा होता है।

अब प्रश्न आता है कि जगत् का उपादान कारण कौन है ? अज्ञान हुआ जगत् का कारण, संकल्प हुआ कर्त्ता, तो परमात्मा का क्या हुआ ? ज्ञान मार्ग से चलकर जो अपने स्वरूप को प्राप्त करता है वह मुक्त होता है, वही उत्तम अधिकारी है। मध्यम अधिकारी के लिए श्रवण, मनन, निदिध्यान आदि नाना साधन बतलाए हैं। जैसे देखो रेलगाड़ी चलती है। उसमें एअर-कंडीशन डिब्बे भी होते हैं, फर्स्ट क्लास, सेकेण्ड क्लास और थर्ड क्लास डिब्बे होते हैं। यदि सारी गाड़ी को एअर कंडीशन कर दिया जाए उसमें बैठने वाले मिलेंगे ही नहीं। इसीलिए सारे क्लास बनाए। इसी प्रकार उत्तम, मध्यम और निकृष्ट अधिकारी भी हैं। सर्वज्ञ ऋषियों ने सबके लिए साधन बताए, तो श्रवण निदिध्यासन भी साधन है, इस पर आगे प्रकाश डालेंगे।

ॐ पूर्णमदः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आत्मा को वश में करने के उपाय

यह कहा कि प्रणव के द्वारा, ओंकार के द्वारा, मंत्र के द्वारा मनुष्य अपने मन को आत्मा में पहुंचा सकता है। उसमें धनुष बाण का दृष्टान्त दिया है। जैसे कि हम धनुष के द्वारा बाण को लक्ष्य में पहुंचा सकते हैं, इसी प्रकार मन को परमात्मा में पहुंचाने के लिए एक साधन है प्रणव।

प्रणवो धनुःशरोह्यात्मा, ब्रह्म तल्लक्ष्य मुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥

मुण्डक- २-३

परन्तु यह ख्याल रखना चाहिए कि जिस तरह बाण छोड़ने वाला पुरुष अपने लक्ष्य पर पूरा ध्यान रखता है। यदि उसकी दृष्टि लक्ष्य से चूक जाती है तो बाण लक्ष्य में नहीं लगेगा। इसीलिए कहा कि तन्मय होना है। तो जो सारा प्रपंच है उसको ओंकार में लय कर देना है। इसका तरीका क्या है? देखो, संसार में दो प्रकार के पदार्थ दिखाई देते हैं। एक चेतन, दूसरा जड़। जड़ वह है जो न अपने को जाने न किसी दूसरे को। जैसे घड़ा, पत्थर, दीवार। जो अपने आपको भी जानता है और दूसरे को भी जानता है वह चेतन है। जड़ पदार्थ में फिर दो भाग हैं। एक नाम है, एक नामी–एक शब्द है दूसरा अर्थ। एक वाचक है दूसरा वाच्य। पदार्थ जितने हैं वो अर्थ कहे जाते हैं। पद = शब्द, अर्थ = वस्तु। जिस शब्द से जिस वस्तु का बोध होता है वही उसका अर्थ कहा जाता है। जैसे घट बोलने पर कलश के आकार का बोध होगा। तो घट का अर्थ मिट्टी का कलश हुआ। मनुष्य वाच्य है और शरीर अर्थ है अथवा पदार्थ है। तो जड़ में दो भेद हो गए। अब देखना यह है कि जितने अर्थ हैं वो सब अपने-अपने नाम के अन्तर्गत हैं। वो नाम से भिन्न नहीं हैं। क्योंकि पदार्थ से पहले नाम होता है और पदार्थ के बाद में भी नाम रह जाता है। राजा नल इस समय नहीं हैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पर उसका नाम चालू है। तो वस्तु के नहीं रहने पर भी नाम विद्यमान रहता है। वस्तु के उत्पन्न होने के पहले भी नाम आ जाता है। जब कोई चीज बनानी होती है तो उसका नाम हम पहले रख लेते हैं कि अमुक चीज बनानी है। तो नाम पहले आया और पीछे तक रहा। अर्थ पीछे उत्पन्न हुआ और पहले नष्ट हो गया। जो वस्तु जिसके रहते हुए समाप्त हो जाए वो उससे अलग नहीं मानी जा सकती। जैसे आभूषण है—सुवर्ण से आभूषण भिन्न नहीं है क्योंकि आभूषण के बनने के पहले भी सुवर्ण विद्यमान था और जब आभूषण टूट गया तब भी सुवर्ण रह गया। तो सुवर्ण के रहते-रहते आभूषण आता है और जाता है। इसीलिए आभूषण सुवर्ण से कोई अलग चीज नहीं है। इसी प्रकार नाम के रहते-रहते अर्थ आता है, जाता है। तो अर्थ नाम से भिन्न नहीं है। इसीलिए जितने भी अर्थ हैं उसे अपने-अपने नाम के साथ मिला लो तो नाम शेष रह गया और जितने नाम हैं अब ओम् का रूप हैं। ओंकार से ही सभी नाम निकले हैं—

ओंकारश्चऽथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा।
कण्ठं-भित्त्वा विनिर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ॥

मनुस्मृति

पहले जब शब्द उत्पन्न हुआ तो ॐ और अस् दो ही शब्द निकले। इनसे सारे शब्द निकले। तो ओंकार जो कि सारे शब्दों का मूल है उसमें ही सारे शब्द जाकर मिलते यों सारे अर्थ अपने-अपने नाम से अभिन्न हो गये और सारे नाम ओंकार से अभिन्न हो गए तो ओंकार का उच्चारण करते हुए मनुष्य यह ध्यान करे कि अतिरिक्त कुछ है ही नहीं।

मन का स्वभाव है कि वह एक वस्तु को छोड़कर दूसरी पर चला जाता है। अर्थात् एक पदार्थ का चिन्तन करते-करते उसको छोड़कर दूसरे का चिन्तन करने लग जाता है यही इसका स्वभाव है। तो जब ओंकार को छोड़कर अन्यत्र जाने लगे तो उसको वहाँ से लौटाना चाहिए। कैसे कि उसको यह समझाओ कि ओंकार के सिवाय और कुछ है नहीं, केवल ओंकार ही ओंकार है। जब यह मन समझ ले कि जो वस्तु है ही नहीं तो फिर उसका क्या चिन्तन करना। यह समझ आ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाने पर मन संसार को छोड़ देता है। इसीलिए भगवान् ने कहा—

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥

गीता- ६-२६

मन का स्वभाव चञ्चल है। जिस-जिस कारण को लेकर यह बाहर जाता है उस-उस कारण से इसको हटाना। बहिर्मुख का अर्थ है कि मन परमात्मा को छोड़कर किसी संसारी पदार्थ के चिन्तन में पड़ जाता है। जब ऐसा हो कि जिस पदार्थ को यह पकड़े तो उसी पदार्थ का अभाव कर देना चाहिए। शंकराचार्य ने लिखा है—

यत्र यत्र मनोयाति ब्रह्मणस्तत्रदर्शनात्।
मनसो धारणं चैव धारणा सा परामता॥

अपरोक्षानुभूति-१२२

जहाँ-जहाँ मन जाए वहाँ उस पदार्थ का अभाव करो और उसमें ब्रह्म का दर्शन करो। उन्होंने कहा कि प्रत्येक पदार्थ का पाँच विभाग करो– अस्ति, भाति, प्रियता, नाम, रूप। अस्ति = है, यानी पदार्थ को विद्यमानता। भाति = दिखाई देना। प्रियता = सुन्दरता, अच्छाई। नाम और आकार। जहाँ पर भी मन जाए उसमें से नाम-रूप को हटाकर अस्ति, भाति, प्रियता जो कि परमेश्वर का रूप है उसमें जोड़ देना चाहिए। तो माया भाग को हटाकर—

अस्ति भाति प्रियं रूपं नामं चेत्यंश पंचकम्।
आद्यत्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम्॥

दृक्दृश्यविवेकः-२०

अस्ति, भाति और प्रिय ये तो परमात्मा के अंश हैं। जैसे काला लोटा है। वह अंधेरे में पड़ा रहेगा तो दिखाई नहीं देगा। उसको यदि अग्नि में तपा कर लाल कर दें और अंधेरे में फेंक दें तो दूर से ही दिखाई पड़ेगा कि गोला पड़ा है। वह तो अग्नि के कारण दिखाई पड़

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रहा है। लोटे में अपनी चमक तो है नहीं। तो जो लोटे में चमक है वह तो अग्नि की है और जो चमक दिखाई पड़ रही है वह लोहे की है। अग्नि में गोलाई नहीं और लोटे में चमक नहीं। तो दोनों ने मिलकर एक दूसरे का रूप धारण कर लिया। इस प्रकार अस्ति, भाति और प्रियता तो ब्रह्म का अंश हैं। नाम और रूप माया का अंश हैं क्योंकि वह बदलता रहता है। तो मायारूप को छोड़कर ब्रह्मरूप पर आ जायें तो फिर मन परमेश्वर में लगेगा।

पहले ओंकार ध्वनि वाणी से, फिर कण्ठ से, फिर हृदय से– तीन भाग करके करना है। हृदय से जब उच्चारण होने लगे तो शब्द के द्वारा मूल में पहुंचे कि कहाँ से यह उच्चरित हो रहा है तो हृदय में पहुंचकर ओंकार का उच्चारण भी शान्त होने लगता है। क्योंकि उसमें एक प्रयत्न होता है और प्रयत्न में थकावट होती है। इसीलिए ब्रह्म को निष्क्रिय माना क्योंकि क्रिया है दुःखरूप। यदि ब्रह्म में क्रिया रह जाए तो वह आनन्दरूप हो नहीं सकता। क्रिया दुःखरूप कैसे है? जैसे कोई मनुष्य भागा जा रहा है तो फिर थक जाता है अब वह भागना छोड़कर के धीरे-धीरे चलने लगता है। भागना इसलिए छोड़ दिया क्योंकि उसमें दुःख था। धीरे-धीरे इसलिए चलने लगा क्योंकि उसमें सुख मालूम पड़ने लगा। भागने में दुःख क्यों था और मंदगति में सुख क्यों है। भागने में क्रिया बहुत होती है, मंदगति में कम है। मंदगति से चलने पर खड़े भी थकता है तो फिर बैठता है। बैठने से भी थकता है, फिर सो जाता है। क्योंकि बैठने में जो क्रिया हो रही थी वह लेटने में समाप्त हो गई। इसलिए दुःख भी समाप्त हो गया। लेटे-लेटे भी जब तंग आता है तो सो जाता है। बस नींद में चला गया। अब वहाँ पर कोई क्रिया नहीं है। यह तो सिद्ध हुआ कि क्रिया जितनी अधिक बढ़ती जाती है उतना ही दुःख बढ़ता जाता है जितनी कम होती जायेगी उतना दुःख कम होता जायेगा। तो ब्रह्म को माना निष्क्रिय। सबसे बड़ी सिद्धि यही है। देखो प्राण रोकते हैं, मन रोकते हैं क्योंकि ये सब क्रिया हैं ना। अष्टावक्र ने, कहा कि सुखी कौन है? तो जो सच्चा आलसी है वही पूरा सुखी है। तो सुनने वाले कहने लगे कि आलस तो तमोगुण है। वह तो एक दोष है। तुम कहते हो सुखरूप है। नकली आलसी, तो नकली

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आलसी तो दुःखरूप है। आलसी भी दो तरह के हैं। नकली वह है जो कि कहने के लिए तो आलसी है पर वास्तव में आलसी नहीं है। एक असली आलसी है। आलस्य शब्द का अर्थ है निष्क्रिय। जो कोई क्रिया नहीं करे वही पूरा आलसी है। तो अष्टावक्र जी कहते हैं कि—

व्यापारे खिद्यते यस्तु निमेषोन्मेषयोरपि।
तस्यालस्य धुरीणस्य सुखं नान्यस्य कश्यचित्॥

—अष्टावक्र गीता ६/४

वह जो आलसियों का लीडर है— आलस धुरीन-माने जो सर्वोत्तम सच्चा आलसी है—वह कौन है? तो जिसको आँख खोलने और बन्द करने में भी आलस लगता है। आँख खुल गयी तो खुल गयी, बन्द नहीं करता और बन्द हो गयी तो खोलने का प्रयत्न नहीं करता। और जो श्वास प्रश्वास आ जा रहा है। यह भी जिसको पसन्द नहीं है। तो जिसने श्वास रोक दिया, और जिसने संकल्प-विकल्प रोक दिया—वही पक्का आलसी है। क्योंकि सारी क्रिया उसमें बन्द है। वही आलसी सुखी है। तो यह आलसी कौन है— जो निर्विकल्प समाधि में बैठा है वही असली आलसी है। पूरा सुख उसी को होता है। उससे नीचे कुछ न कुछ क्रिया होती है। जहाँ क्रिया है वहाँ दुःख है। इसीलिए ब्रह्म निष्क्रिय माना गया—क्योंकि वह तो आनन्दरूप है। अगर उसमें क्रिया मान लिया जाये तो उसमें दुःख का प्रवेश हो जायेगा। संसार दुःखरूप इसीलिए है क्योंकि इसमें क्रिया रहती है।

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहा।
नैष्कर्म्य सिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति॥

गीता- १८-४९

भगवान् ने कहा कि जीवन की सबसे बड़ी सफलता निष्क्रियता है। इतना निष्क्रिय हो जाय कि उसके मन का स्पंदन भी खत्म हो जाय, और मन का स्पंदन जब खत्म होता है तो प्राण का स्पंदन भी समाप्त हो जाता है, और जब प्राण का और मन का स्पंदन समाप्त हुआ तो शरीर में भी कोई क्रिया नहीं होगी। इस तरह जब मनुष्य पूरा निश्चेष्ट

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होता है तो यह 'परमांसिद्धि' है—यानी यही जीवन की सबसे बड़ी सफलता है। कोई करोड़पति हो जाय तो यह कोई सफलता नहीं है। चक्रवर्ती राजा होना भी कोई सफलता नहीं है, क्योंकि बाद में पतन है। चक्रवर्ती राजा भी भीख माँगते-फिरते हैं। पूरी सफलता तो स्वरूप स्थिति है। नैष्कर्म्य भाव की प्राप्ति। इसकी प्राप्ति के बाद फिर पतन नहीं है। इस उन्नति की समाप्ति नहीं है।

ये स्थिति प्राप्त कैसे होती है— "संन्यासेनाऽधिगच्छति"। संन्यास का अर्थ त्याग है। यानी यह स्थिति त्याग से होती है। जो हमने पकड़ा है उसको छोड़ने से यह होता है। इसमें पकड़ना कुछ नहीं है, क्योंकि पकड़ना तो बन्धन है। जो पकड़े हो उसको छोड़े जाओ। पहले तो बाहर के पदार्थ पकड़े हैं। बाहर के पदार्थों में अहंता ममता करना ही पकड़ना है। शरीर को अपना मान बैठे हैं—

मत्वा कर्माणि सिद्धयन्ते स एव मनुष्यः।

जो सोच-विचार कर कार्य करे वही मनुष्य है। जो अन्धा-धुन्ध कार्य करे वह कैसा मनुष्य। तो इसने संसार को अपना मान लिया है किन्तु अपनी चीज तो वह है जिसको हम साथ ले जा सकें। अपनी वस्तु की यही पहचान है जिस वस्तु को हम अपने साथ ले जा सकें। जिसको अपने साथ नहीं ले जा सकें वह अपनी है ही नहीं। तो बतलाओ जब मनुष्य शरीर छोड़कर जाता है तो क्या ले जाता है? कुछ भी साथ नहीं जाता है, तो फिर हम इनको अपना क्यों कहें। तो मन से इन बातों का त्याग करना है। यही समझना है कि यहाँ मेरा कुछ नहीं है। इसलिए—

'संन्यासेन अधिगच्छति'

यदि पदार्थों को मन से त्याग दें तो नैष्कर्म्य सिद्धि को प्राप्त होता है—

यतो-यतो निर्वतते,
ततो-ततो विमुच्यते

जहाँ से ये निवृत्त हो जाता है, अपना सम्बन्ध छोड़ देता है, उससे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसका छुटकारा हो जाता है। और जब सबसे सम्बन्ध छोड़ दिया तो मुक्त हो गया। तो छोड़ना ही समस्या है।

ॐकार का उच्चारण भी एक क्रिया है। उसमें भी थकावट होती है। वो भी अपने आप छूटने लगता है। चित्त भी जब क्षीण होने लगे तो सुख मिलता है।

चित्त क्या है– जो कि बाहर के पदार्थों का चिन्तन करता है। अन्तःकरण जब किसी पदार्थ का स्मरण करता है तो उसे चित्त कहते हैं। बीती बातों को सोचना, जब भविष्य की कल्पना करता है तो उसको मन कहते हैं। जब किसी पदार्थ या कार्य में अभिमान कर लेता है तो वह अहंकार है। जब किसी पदार्थ का निर्णय करता है तो उसको बुद्धि कहते हैं। तो भिन्न-भिन्न काम करने के कारण उनका नाम चार पड़ गया है–मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार।

परन्तु वह तत्त्व एक ही है। जब उच्चारण करते-करते बुद्धि भी थक जाय तो वह अवस्था भी ज्ञात होती है। उसका भी हमको ज्ञान होता है कि इतने समय तक मेरा चित्त शान्त रहा। चित्त के शान्त होने पर, उस अवस्था को अनुभव करने वाला जो तत्त्व है–वही विष्णु है, वही ब्रह्म है, वही मैं हूं– 'इतिविदुर्यम्'–अभ्यास करने से धीरे-धीरे यह अवस्था बनती है। योगदर्शनकार से पूछा गया कि समाधि कितने दिन में लग जाएगी? उन्होंने कहा कि समय की बात नहीं है, यह तो पुरुषार्थ की बात है। जैसे किसी को दस मील जाना है तो पैदल चले तो तीन घन्टा लगे और कार में चले तो दस मिनट भी नहीं लगे। यह तो चाल की गति पर निर्भर है। तो उन्होंने कहा कि समाधि का समय निर्धारित नहीं किया जा सकता। यह तो साधन पर निर्भर है—

तीव्रसंवेगानामासन्नः।

यो. द. १-१२

जिनका वैराग्य तीव्र है, उनके लिए समीप है जिनके वैराग्य में मन्दता है उनके लिए अधिक समय लगेगा। यह तो अभ्यास पर निर्भर है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्काराऽऽसेवितो दृढ़भूमिः ।

यो. द. १·१४

तो अपने मन को संसार से निकालकर अपने अन्तःकरण में विद्यमान जो भगवद्ज्योति (आत्मा) है उसमें लगाना है। बस इतना ही काम करना है। वहाँ से हटाने का नाम वैराग्य है और परमात्मा में लगाने का प्रयत्न करना—इसका नाम अभ्यास है।

अभ्यासवैराग्याभ्याम् तन्निरोधः ।

गीता- १.१२

अभ्यास धीरे-धीरे होता है। एक से निकाला, दूसरे से निकाला, तीसरे से निकाला, फिर वाणी पर लगाया, उपांसु पर लगाया, मानसिक जप पर लगाया। ऐसे कुछ काल तक अभ्यास करते-करते चित्त में अन्तर्मुखता के संस्कार पड़ते हैं, बाहर के संस्कार लुप्त हो जाते हैं और वह आत्मदर्शन करता है। पर इसमें बहुत धैर्य, विश्वास और श्रद्धा की आवश्यकता है। पूरी लगन से लग जाय तो फिर काम होता है। संसारी कामों में भी पूरी लगन की जरूरत होती है, ऐसे उसमें भी सफलता नहीं मिलती।

परमार्थ की सिद्धि तो बहुत सूक्ष्म है। इसमें तो और धीरज की जरूरत है। इसीलिए उपनिषद् में कहा गया है—

कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मनमैक्ष-
दावृत्तचक्षुरमृत्वमिच्छन् ।

कठ. २.१

यह तो किसी धीर पुरुष का काम है कि वह परमात्मा का दर्शन कर सके। जो अधीर और डरपोक हैं उनसे नहीं होगा। यह तो निर्भय पुरुष का काम है। भर्तृहरि ने तीन तरह के मनुष्य लिखे—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्यविघ्ननिहता विरमन्ति मध्या-
द्विघ्नैर्मुहुर्मुहुरपि प्रतिहन्यमानाः।
प्रारब्धमुत्तमगुणा न परित्यजन्ति ॥

नीतिशतक- ८३

एक आदमी इतना डरता है कि विघ्न की कल्पना करके ही काम छोड़ देता है। तो जो कल्पित भय से डर जाय– जैसे मार्ग में चलते हुए डरते हैं भूत मिल जाय, कोई चोर ना मिले। जो कल्पना मात्र से डरते हैं वे तो नीच दर्जे के मनुष्य हैं। दूसरे दर्जे का मनुष्य वह है जो कि कार्य शुरु कर देता है, पर जब कोई विघ्न आया तो झट छोड़ दिया। तीसरी कोटि का आदमी वो है कि चाहे कितना ही कष्ट आये, विघ्न आये, पर जब तक कार्य पूरा नहीं हो, छोड़ता नहीं है। इसी को धीर कहा है।

न निश्चितार्थं विरमंति धीरा–धीर पुरुष वह है जो लक्ष्य की प्राप्ति से पहले ठहरे ही नहीं।

विकारहेतो सति विक्रियन्ते

विकार का कारण होने पर भी जो विचलित नहीं हो, वही भगवद्-दर्शन कर सकता है। जो छोटी-छोटी बातों से घबड़ा जाते हैं उनको भगवद्-दर्शन तो क्या देव-दर्शन भी नहीं हो सकता है। इसीलिए उन्होंने कहा कि– धैर्य, विश्वास और उत्साह–ये तीन चीजें अवश्य होनी चाहिए। ऐसे पुरुषों के कार्य की सफलता अवश्य होती है। हमारे भीतर जो चेतना है, जिसकी कृपा से सम्पूर्ण इन्द्रियाँ अपना-अपना कार्य कर रही हैं वही सबका मूल है—

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह,
वाचं सऽप्राणस्य प्राणः।
चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोका-
दमृता भवन्ति ॥

केन–२

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जो आँख का भी आँख है, जो कान का भी कान है, जो वाणी का भी वाणी है–अर्थात् जो सम्पूर्ण कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों को प्रेरणा और चेतना देने वाला तत्व है, उसको हमको जानना है। वह अनुभव तभी हो सकता है जब मन को बाहर से हटाकर हृदय में लगावें। उसके लिए कई सहायक साधन हैं। तो योग की दृष्टि से शंकराचार्य ने विचार को प्रधानता दी है। विचार से मनुष्य को वही होता है जो योग से होता है। बल्कि जो योग से नहीं होता वह भी विचार से होता है।

चितस्य शुद्धये कर्म, न तु वस्तूपलब्धये।
वस्तुसिद्धिर्विचारेण न तु किंचित् कर्म कोटिभिः॥

विवेक चूड़ामणि-११

विवेक के द्वारा मनुष्य भगवद् स्वरूप का अनुभव कर सकता है। तो विचार के लिये– श्रद्धा, उत्साह और धैर्य आवश्क है। उसके लिए थोड़े साधन करने पड़ते हैं। तो उन पर प्रकाश डालेंगे।

ॐ पूर्णमदः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपासना की महिमा

कल कहा था कि—

कुरुते गंगा सागर गमनं, व्रतपरिपालनमथवादानम् ।
ज्ञानविहीनम् सर्वमतेन मुक्तिभंवति न जन्म शतेन ।।

अब इस श्लोक में कहते हैं कि—

भगवद्गीता किञ्चिदधीता, गंगाजललव कणिका पीता ।
येनाकारि मूरारिसमर्चा तस्य यमः किं कुरुते चर्चाम् ।।
चपर्ट-पञ्जरिका-१३

जो आदमी थोड़ा भगवत्गीता का विचार करता हो, जिसने गंगा जल की एक बूँद भी पी ली हो और जिसने एक बार भी भगवान् कृष्ण की पूजा की हो, यमराज उसकी चर्चा छोड़ देते हैं। अर्थात् वह मृत्यु के भय से मुक्त हो जाता है। यहाँ तो यह कह रहे हैं कि गंगा की एक बूँद जल से यमराज के भय से बच जाता है और कल कह रहे थे कि चाहे सौ जन्म भी गंगासागर का स्नान करे तो भी मृत्यु का भय नहीं छूटता। तो दोनों बातों में कितना आपसी विरोध है। एक ही व्यक्ति एक ही समय में दो विरोधी बातें बोल रहा है। कहाँ तो एक बूँद से मृत्यु का भय छूट रहा है और कहाँ सौ जन्म स्नान करने पर भी मोक्ष नहीं मिलने वाला। अतः इन परस्पर बातों का भाव ढूँढना पड़ेगा।

तो कल के श्लोक में यह कहा था कि ज्ञान के बिना मोक्ष नहीं होता। पर गंगा स्नान आदि जो हैं वह अन्तःकरण की शुद्धि करके ज्ञान प्राप्ति में सहायक होते हैं। फिर ज्ञान से मनुष्य को मोक्ष होता है। इसी लिये यहाँ कहा कि—गंगाजल लव कणिका पीता— जिसने गंगा जल की एक बूँद भी पी ली है वह यमराज के चक्कर में नहीं पड़ता। अर्थात्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गंगा स्नान छोड़ना नहीं। तो तीर्थ, व्रत, पुण्य, ये पवित्र कर्म हैं। मनुष्य के अनादि काल के जो दोष हैं उनको दूर करते हैं। इसीलिये इनको करते रहना चाहिये। दान, यज्ञ और तप इन तीन बातों को गीता में बहुत महत्व दिया है—

यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।
गीता- १८-५

यज्ञ, दान और तप मनुष्य के अन्तःकरण को पवित्र करते हैं। किस बात को पवित्रता है? तो यज्ञ मनुष्य के हृदय से विषय वासना को हटाता है। कारण क्या होता है कि जब किसी के पास बहुत धन हो जाय तो उसको पदार्थों में व्यसन लगेगा। पैसा जो आ गया। उसको खर्च तो करना है। परिणाम यह निकलेगा कि व्यसन में उसका रुपया जायेगा और व्यसनी होकर उसका पतन होगा। इसीलिए नियम रखा कि इतना रुपया जिसके पास हो जाए उसको इतना यज्ञ कर लेना चाहिए। तो परिणाम यह होगा कि वह धन जनता में चला जायेगा, बंट गया। जब पास में अधिक धन रहे ही नहीं तो व्यसन का कोई भय भी नहीं। तो तरीका था धन को बाँटने का। जैसे कम्युनिस्ट लोग धनियों से जबरदस्ती धन छीन लेते हैं और लोगों में बाँटते हैं। हमारे यहाँ जबरदस्ती नहीं है। उनको एक आकर्षण दिया गया कि तुम्हारे पास जितना धन हो उसके अनुसार अमुक यज्ञ अवश्य करो। एक यज्ञ है उसका नाम है— 'विश्वजीत'। विश्वजीत का कायदा है कि उसमें सर्वस्व दान करना चाहिये। तो जो सर्वस्व दान करेगा तो उसको तो खाने-पीने की मुश्किल पड़ेगी। फिर वह व्यसन क्या करेगा? तो यज्ञ इसलिए है कि मनुष्य में विलासिता न बढ़ने पावे। धन रहेगा तो वह मनुष्य को विषयों की ओर खींचेगा। क्योंकि उसका यही स्वभाव है। यदि वह यज्ञ में चला गया तो सबको बँट जाता है। कुछ ब्राह्मण ले जायेंगे, कुछ गरीब ले जायेंगे। दान इसीलिए बनाया कि सबको पैसे की आवश्यकता होती है। जरूरत पड़ने पर दूसरे से लेना पड़ता है। दूसरे से नहीं लें तो हमारा काम रुक जाएगा। किन्तु किसी से माँगने में हम संकोच करते हैं। इसीलिए दान की प्रणाली रखी कि इतना पैसा हो तो उसमें से इतना दान कर दो। जो अधिकारी होता है उसको मिल जाता है। साथ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में यह भी कह दिया कि दान लेना महापाप है। जो आदमी दान लेगा वह आगे गरीब बनेगा। जो दान देगा वह आगे धनी बनेगा। इसका परिणाम यह निकलेगा कि जिसको अत्यन्त जरूरत होगी वही दान लेगा, दूसरा नहीं लेगा।

तप नाम है– अपने कर्त्तव्य कर्मों में जो कुछ कष्ट हो रहा है उसको सहन करने का। कष्ट के भय से उस कर्म को छोड़े नहीं। तो यज्ञ, दान, तप, तीनों के करने से हमारा अन्तःकरण पवित्र होता है। उसमें से विषय-वासना, स्वार्थवृत्ति निकल जाती है और सहनशक्ति आ जाती है। तीनों ज्ञान के लिये उपयोगी हैं। गंगा जल लव कणिका पीता–माने पवित्र कर्म करते रहना चाहिए। परन्तु इतने में सन्तुष्ट भी नहीं होना चाहिए। उसको श्रवण, मनन आगे तक जाना है।

भगवद् स्वरूप को पहचानने का जो असली साधन है वह है विचार। शंकाओं के समाधान करने का नाम विचार है। कोई प्रश्न खड़ा हुआ–उसका उत्तर दिया। प्रश्नोत्तर का नाम भी विचार है। उसका नाम रखा–अन्वय व्यतिरेक। अन्वय व्यतिरेक की युक्ति से किसी बात की सत्यता का निर्णय हो जाता है। अब समझना चाहिए कि अन्वय व्यतिरेक क्या है? जैसे एक मनुष्य रोगी है और वह दो प्रकार की दवा खा रहा है। डाक्टर की दवा भी खा रहा है और वैद्य की भी। उसको कुछ आराम होने लग गया। अब देखना है कि उसको किस दवा से लाभ हो रहा है? वैद्य से अथवा डाक्टर से। पहले एक दवा छोड़कर देखो। वैद्य की दवा छोड़ दो। अब देखो कि रोग में वैसा ही आराम हो रहा है कि नहीं। यदि वैद्य की दवा छोड़ने से रोग बढ़ जाए तो फिर हम वैद्य की दवा ही खायेंगे। उसको खाकर देखें कि रोग की क्या हालत है? तो हमको यह निर्णय हो गया कि वैद्य की दवा लाभकारी है। अगर वैद्य की दवा छोड़ने पर भी रोग से आराम होता ही रहे तो हम समझेंगे कि डाक्टर की दवा से आराम हो रहा है। तो इसका नाम है अन्वय व्यतिरेक।

अन्वय नाम है–होना, व्यतिरेक नाम है–नहीं होना। जिसके होने पर जो हो और जिसके होने पर जो न हो, उसका उसके साथ अन्वय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

व्यतिरेक मिलता है और वही उसका कारण होता है। तो डाक्टर की दवा खाते हुए भी रोग में फर्क नहीं पड़ रहा है। वैद्य की दवा खाने में हमको आराम मालूम पड़ा—वैद्य की दवा छोड़ दी तो आराम होना बन्द हो गया। तो जिसके होने पर जो हो और जिसके नहीं होने पर जो न हो वो अन्वय व्यतिरेक है। इससे हमको कार्यकारण भाव का निर्णय हो जाता है। उसी तरह अब संसारी पदार्थों, धन, पुत्र आदि को हम सुखरूप मानते हैं। पर अन्वय व्यतिरेक घटाकर देखें तो घटता नहीं। अन्वय क्या होगा कि धन होने पर सुख होना चाहिये। धन से अगर सुख है तो धनवान् को सुखी होना चाहिये और निर्धन को दुःखी होना चाहिये। परन्तु इसका उल्टा अगर देखने में आए तो फिर अन्वय व्यतिरेक नहीं बनता। देखो धन होता है जागृत मे और जागृत में दुःख भी होता है। तो धन होने पर भी सुख नहीं है। सुसुप्ति में धन नहीं होता है किन्तु वहाँ सुख होता है। यदि धन से ही सुख होता है तो नींद में सुख नहीं होना चाहिये। क्योंकि नींद में धन का कोई सम्बन्ध नहीं है। और पशुओं को भी सुख नहीं होना चाहिए क्योंकि उनके पास धन होता ही नहीं। मनुष्य के पास धन है इसीलिए इसको सुखी होना चाहिए। कहो जी थोड़ा है। चलो थोड़े वाले को छोड़ दो। जिसके पास अटूट धन है, उसको तो पूरा सुख होना चाहिए। परन्तु वे भी पूरे सुखी नहीं। तो देखो धन होने पर भी सुखी नहीं है। धन नहीं होने पर सुख है। तो फिर धन सुख का हेतु नहीं। यह सिद्ध हो गया। जैसे वैद्य की दवा से रोगी को आराम मिला तो हम यही निष्कर्ष करेंगे कि वैद्य की दवा ही अच्छी है। डाक्टर की दवा से कोई लाभ नहीं। इसी ढंग से सारे संसारी पदार्थों को ले लो। यदि संसारी पदार्थों में सुख होता तो जागृत में तथा जिनके पास सारे पदार्थ विद्यमान हैं, उनको दुःख नहीं होता। परन्तु खोज कर देखा कि—

नानक दुखिया सब संसार

एक की बात नहीं है। धनी क्या निर्धन क्या सभी दुःखी हैं। धनी को चिन्ता है कि बढ़े कैसे, निर्धन को चिन्ता है कि मिले कैसे। तो दोनों दुःखी। और—

सो सुखिया जो नाम अधार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो अब अन्वय व्यतिरेक से देखा गया कि संसारी पदार्थ जागृत में थोड़े बहुत सबको हैं, पर साथ-साथ उनको दुःख भी है। तो यदि ये पदार्थ सुखरूप होते तो इनमें सुख ही मिलना चाहिये था, दुःख नहीं होना चाहिये। संसारी पदार्थ सुसुप्ति में अथवा पशुओं के पास नहीं होते हैं तो उनको सुख होता है। अतः सिद्ध हो गया कि पदार्थ सुख का हेतु नहीं है। किन्तु सुख का हेतु कुछ और है। वो क्या है—

अशांतस्य कुतो सुखम्

अशांत पुरुष को सुख नहीं होता है। जिसके पास पूरा संसारी पदार्थ विद्यमान हो परन्तु उसके मन में अशांति आ जाए तो उसको कभी भी उस पदार्थ से सुख नहीं हो सकता। जैसे कोई भूखा है। कल उसने व्रत रखा तो आज उसको खूब भूख लगेगी। वह मन के पसन्द के अनुसार और इच्छा भर खाना चाहता है और उतना उसके सामने रख दिया जाय और कहा कि लो भाई खालो और वह खाने लगे तब तक उसको ऐसी खबर मिल जाए कि तुम्हारा युवा लड़का ट्रक के नीचे आकर मर गया तो बोलो वो अन्न उसको सुख देगा? तो गड़बड़ क्या हुआ? अन्न तो ज्यों का त्यों है, भूख भी ज्यों की त्यों है। परन्तु मन में अशान्ति आने से सुख रूप पदार्थों में भी सुख नहीं मिलता है। कोई कल सारी रात जागरण किया। आज उसको नींद आ रही है। वह सोना चाहता है। सोने का उत्तम से उत्तम प्रबन्ध भी हो गया। सोओ भाई आराम से। वह सोने लगा। तब तक खबर लगी कि तुम्हारे लड़के की बुरी हालत है। तो नींद गायब हो गई। तो क्या कसर हुई कि उसका चित्त अशांत हो गया। मन अशांत हो जाए तो संसारी सामग्री कितनी ही विद्यमान हो तो उसको उसमें सुख नहीं हो सकता। इसलिये कहना पड़ा—

अशांतस्य कुतो सुखम्

और यदि मन में शांति है तो किसी पदार्थ से भी काम चल सकता है। देखो छोटे बच्चों को कितनी नींद आती है। खेलकर आते हैं, रोटी माँगते हैं। माँ कहती है कि नहीं बनी है। बस सो गए। रोटी की भी चिन्ता नहीं और सोए भी तो चटाई पर। न तकिया, न बिस्तर,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुछ भी नहीं। और माता-पिता उठाकर रोटी खिला दिए और चारपाई पर डाल दिया। फिर सो गया। उठकर कहता है—रात मुझको रोटी क्यों नहीं दी ? रोटी खाई, पर पता नहीं है कि कब खाया और किसने मुझे चारपाई पर सुला दिया। इतनी गहरी नींद आने का कारण है कि उसका चित्त शांत है। तो शांत चित्त वाले को ही निद्रा आयेगी और उसी को भूख आयेगी। अर्थात् उसको अन्न सुख होगा, बिस्तरे का सुख होगा। अशांत पुरुष को न अन्न सुख दे सकता है, न बिस्तरा सुख दे सकता है। तो सुख हुआ शांति में, बस। तो शान्ति किसका नाम है ? शांति नाम है चित्त को स्थिरता का। शांति और कोई चीज नहीं। हमारे चित्त में जितने संकल्प विकल्प अधिक होंगे उतने ही दुःखी होंगे। जितने कम संकल्प विकल्प होंगे, उतने सुखी होंगे। इसी आध्यात्म शास्त्र का यह मूल सूत्र है कि—शांतस्य सुखम् और अशांतस्य दुःखम्। इसीलिये अन्वय व्यतिरेक से सिद्ध हो गया कि सारे पदार्थ चिन्ता को बढ़ाते हैं। जितने पदार्थ बढ़ते हैं, उतनी ही अशान्ति बढ़ती है। जितना मनुष्य अन्तर्मुख रहे, भगवन् चिन्तन में रहे, शास्त्र अनुशीलन में रहे उतना ही उसका मन शांत रहता है। यह ठीक है कि बाहर के पदार्थ की उसको कमी रहती है किन्तु उसकी वह चिन्ता नहीं करता है। मन शांत हो तभी शान्ति है—

हृदयं शीतलं यस्य, तस्य शान्तं जगत्त्रयम्।
अन्तस्तापतप्तानाम् दवदाव मयं जगत्॥

यदि किसी का हृदय शीतल है, शांत है, संतुष्ट है—उसको सर्वत्र शीतलता है, आनन्द ही है। उसके लिये जगत् आनन्दरूप है। जिनके मन में चिन्ता, ताप, असंतोष, भय भरा हुआ है। चाहे वो वैकुण्ठ में भी चले जाएँ तो उनको वहाँ भी दुःख ही रहेगा। तो अन्वय व्यतिरेक से सिद्ध होता है कि सुख शांति में है। पदार्थों से शांति हो नहीं सकती। बल्कि इनसे तो अशांति बढ़ेगी। एक-एक पदार्थ के साथ दस-दस अशांति होती हैं। एक आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए नौ फालतू और आ गई। अब नौ को पूरा करो तो फिर एक के साथ दस-दस और होंगी। तो फिर मिलाकर नब्बे हो जायेंगी। तात्पर्य यह जितना ही मनुष्य संसार की तरफ बढ़ेगा, उतना ही अशांति और दुःख क्लेश बढ़ता ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाएगा। और जितना अपनी आत्मा की तरफ बढ़ेगा उतना शांति और संतोष बढ़ेगा, आनन्द बढ़ेगा। बच्चे में और बड़े में यही फर्क है। बच्चा कितना प्रसन्नचित्त है। उसमें कोई चिंता ही नहीं। चाहे वह गरीब हो या अमीर हो। चाहे वह पशु का हो। परन्तु वह प्रसन्न रहता है। ज्यों-ज्यों उसका शरीर बढ़ता है उससे दस गुनी उसकी इच्छाएँ, चिंताएँ और भय बढ़ते हैं। इसीलिये बुढ़ापा आते-आते वह चिंता का भण्डार हो जाता है। उसको नींद आती ही नहीं है। आध्यात्म शास्त्र का यही कहना है कि तुम बाहर की तरफ से मन को लौटाओ और अपनी अन्तरात्मा में जोड़ो। इसलिये लिखा है कि—

नानक दुखिया सब संसार।
सो सुखिया जो नाम अधार॥

तो नाम का आश्रय जिसको हो गया वह निश्चित है, उसी को सुख-शांति होगी। इसी बात को यहाँ समझाया गया है कि तुम अपने असली रूप का जिसको ब्रह्म कहा है, भगवान् कहा है, परमात्मा कहा है—उसको जानो। भागवत् में स्पष्ट कहा है—

जीवस्य तत्त्व जिज्ञासा, नार्थो यश्चेह कर्मभिः।

मनुष्य जीवन की सफलता तत्त्व जिज्ञासा में है। जो संसार में सार वस्तु है, जो संसार का आधार है, जो नित्य है, जो अविनाशी है, उसको प्राप्त करना ही जीवन की सफलता है। तत्त्व की खोज में ही हमारी सफलता है।

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज् ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।

उनका कहना है कि तत्त्व वही है जो दूसरे पदार्थ के मिश्रण से रहित है। वह ज्ञान है। ज्ञान ही सार वस्तु है उसी को—ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते— उसी को उपनिषदों में ब्रह्म कहा है। उसी को पुराणों में भगवान् कहा है, उसी को दार्शनिकों ने परमात्मा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहा है। तो एक ही वस्तु के अनेक नाम रखे गये हैं। जैसे देशभेद से एक ही पदार्थ के कई नाम होते हैं। जैसे एक पंजाबी था उसने 'बताऊँ' की सब्जी बनाई। तो काशी का रहने वाला आया। उसने पूछा कहो भाई क्या सब्जी बनाई। उसने कहा 'बताऊँ'। वह समझता है कि कुछ सोच-समझ कर बतायेगा। दस मिनट के बाद फिर पूछा—तुमने बताया नहीं क्या सब्जी बनाई? कहा न बताऊँ? फिर वह चुप हो गया। शायद कोई ऐसी बात होगी। फिर तीसरी बार पूछा—तुम बताते नहीं, बताऊँ-बताऊँ किए जाते हो। तो वह अन्दर से उठाकर ले आया कि यह क्या है? यह तो बैंगन है। इसी की सब्जी है। तो चाहे बताऊँ कहो, बैंगन कहो या भोंटा कहो, है तो एक ही। इसी तरह भागवतकार कह रहे हैं कि चीज एक ही है उसी का लोगों ने अलग-अलग नाम रखा है। कोई ब्रह्म कहा है, पुराणों में भगवान् कहा और दर्शनों में ईश्वर या परमात्मा कहा, पर वस्तु वही है। कौन—

अद्वैयम् ज्ञानम्

इसी प्रकार शिव, विष्णु, देवी, हनुमान जी, जो अलग-अलग प्रतीत हो रहे हैं, वह एक का ही नामरूप है। जो विष्णु हैं वही शिव हैं, जो शिव हैं, वही विष्णु हैं। परन्तु हमने अपनी रुचि के अनुसार नाम-रूप की कल्पना कर ली है जो हमको अच्छा लगा। हमने देखा भगवान् कृष्ण का फोटो, मूर्तियाँ जो मारवाड़ में हैं, उन्होंने मारवाड़ी पगड़ी पहनी हुई है और धोती लगाई हुई, तनोदार कमीज पहनकर हाथ में छड़ी लेकर खड़े हैं। उन्हीं कृष्ण को जब महाराष्ट्र में देखा तो उन्होंने तंग पाजामा पहना है, मराठी कमीज पहनी है और मराठी पगड़ी पहनी है। मतलब वहाँ मराठा बनकर खड़े हैं और यहाँ मारवाड़ी बनकर खड़े हैं। कृष्ण तो एक ही हैं न। परन्तु हमने अपनी रुचि के अनुसार उनका वेश परिवर्तन कर दिया। अपनी रुचि के अनुसार उनका खान-पान और वेशभूषा बदल दिया।

एक वैरागी हैं अहमदाबाद में। उसने रामजी की बड़ी फोटो दीवार में लगाई है। उनको धनुष-बाण पकड़ाया है। एक तरफ धनुष और एक तरफ बाण है। और विशेषता यह है कि उसने रामजी की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मूँछें भी बना रखी हैं। जो कि कहीं उनको होती नहीं हैं। मूँछें भी राणा प्रताप जैसी खूब पहलवान जैसा बनाकर खड़ा किया है। सारे वैरागी बिगड़ गए उन पर। तुमने राम जी को मूँछें लगाकर उनका अपमान किया है। तो कहने लगे कि राम कोई हिजड़ा था क्या? (हँसी) जिसने रावण जैसे पहलवान को मारा तो क्या कोई नपुंसक है? वो तो कोई वीर पुरुष है और मूँछें वीरता की निशानी हैं। जिसको मूँछें नहीं होती वो नपुंसक होता है। वह कमजोर होता है। राम जी तो वीर हैं इसीलिए मूँछें हैं। तो कारण यह था कि वह साधु खुद पहलवान है। उसको बिना मूँछ के राम जी अच्छे नहीं लगे। मतलब यह है कि हम अपनी रुचि के अनुसार परिवर्तन कर देते हैं। इसमें किसी के बैर विरोध और छोटे-बड़े की बात नहीं है। भगवान् तो सर्वरूप हैं। उनको जिस रूप में चाहो रखो। पर श्रद्धा विश्वास होनी चाहिए। भगवान् कुछ भी बन सकते हैं। मत्स्य बने, वाराह बने, नरसिंह बन जायें। वामन बनें या विराट बन जायें। जो चाहे बन जायें। वे तो सर्वरूप हैं। सारे नाम और सारे आकार उसी के हैं। तुम अपनी रुचि देख लो, जो नाम रूप आपको अच्छा लगे उसी को भजो। अट्ठारह पुराणों के अट्ठारह देवता हैं और हर एक पुराण में यही लिखा है कि इसी से सारी सृष्टि हुई। शिवपुराण में लिखा है कि शिव से सारी सृष्टि हुई और विष्णु पुराण में लिखा है कि विष्णु से सारी सृष्टि हुई। तो सुनने वाला कहेगा कि दोनों झूठ हैं। अब एक सृष्टि दोनों से तो नहीं हो सकती। एक से होगी तो दूसरा झठा पड़ा। परन्तु वो कहते हैं कि शिव नाम परमात्मा का है। तो परमात्मा से सृष्टि हुई। और विष्णु नाम भी परमात्मा का है। इसका अर्थ भी कि परमात्मा से सृष्टि हुई। तो सारे पुराणों की एक ही बातें हैं।

तो विचार से यह निर्णय होता है कि धन होने पर भी मनुष्य को दुःख होता है और धन नहीं पर भी सुख होता है। धन नहीं होने पर भी पशु-पक्षी सुखी हैं और धन होने पर भी करोड़पतियों को दुःख है। इससे सिद्ध हुआ कि संसारी पदार्थ सुख के हेतु नहीं। बल्कि यह हमारी थोड़ी आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। इनका इतना ही उपयोग है। जैसे कुनैन कोई सुख रूप नहीं है पर बुखार चढ़ जाये तो कुनैन लेने से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

थोड़ा आराम मिलता है। बस इतना ही फल है। इसी तरह संसारी पदार्थ जो हैं, वो जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति मात्र हैं। जैसे अन्न का काम क्षुधा निवृत्ति है उसी तरह वस्त्र शरीर ढकने के काम आता है। तो यह जो क्षुधा, प्यास आदि रोग हैं, उनकी औषधि हैं अन्न, जल। इसी प्रकार कहीं आने-जाने के लिये पैसे की जरूरत पड़ती है, रहने के लिए मकान की। ये चीजें हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जरूरी हैं। बाकी कहो कि हम इनसे सुखी हो जायेंगे और जन्म-मरण के चक्कर से छूट जायेंगे तो यह बिल्कुल निकम्मी बात है। हमारे शास्त्रकारों ने इसी बात पर जोर डाला है कि किसी प्रकार से इसका जन्म-मरण कट जाए। बाकी की बातें तो चाहे जैसे गुजारा कर लो। सन्तों ने पत्ते खाए और जल पीकर गुजारा किया है। इस बात की कोई परवाह नहीं की कि हमको क्या मिल रहा है। वल्कि जल भी त्यागा। केवल पवन लेकर गुजारा किया। परन्तु जन्म-मरण से मुक्त होने का प्रयत्न नहीं छोड़ा। इसको वैराग्य बोलते हैं। हमारा मन जो संसारी पदार्थों में फँसा हुआ है, वहाँ से निकलता नहीं है और भगवान् में प्रविष्ट नहीं होता—

मनमाया में रम रह्यो निकसत नाहिं मीत।
नानक मूरति चित्र ज्यों छाड़त नाहिन भीत।

जिस तरह दीवार पर तस्वीर बना दी जाए। अब उस चित्र को दीवार से अलग करना कठिन काम है। जैसे दीवार से चिपटे चित्र को दीवार से अलग करना कठिन काम है। उसी प्रकार माया से फँसे मन को निकालना भी मुश्किल है। जब तक वहाँ से निकाले नहीं तब तक परमात्मा में प्रविष्ट नहीं होता। मन को परमात्मा में लगाने का एक तरीका है कि संसार में ज़ो सुख बुद्धि हो रही है, उसको हटाओ। तो अन्वय-व्यतिरेक, युक्ति और तर्क तथा लोगों का दृष्टांत देखकर तुम मन को वहाँ से हटाओ। और जब मन वहाँ से हट जाए तो उसे अपने स्वरूप में लगाओ। तो अपना स्वरूप क्या है? तो उन्होंने उत्तर दिया—

वदन्ति तत् तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कि दृश्य और द्रष्टा, ज्ञाता और ज्ञेय, ये दो चीजें नजर आती हैं। जो ज्ञेय अंश है उसको हटा दो। ज्ञाता और ज्ञेय, दोनों मिलकर एक भान हो रहा है। जैसे बरसात का जल मैला हो जाता है। हम मैले जल में फिटकरी या निर्मली घोल कर डालते हैं। परिणाम यह होता है कि मैल नींचे जाता है और जल निर्मल हो जाता है। इसी प्रकार संसार के अन्दर जो कुछ भी दिख रहा है उसमें जड़ और चेतन दोनों मिले हैं। जड़ भाग परिवर्तनशील, विनाशी और निकम्मा है। चेतन अंश ही सार है, तत्त्व है, असली चीज है, वही आत्मा है। ये कहते हैं कि तुम उस आत्म तत्त्व को असारतत्त्व से अलग करने का प्रयत्न करो। उसके लिए विवेक की जरूरत है– क्षीर, नीरवत्। जैसे दूध में पानी मिला होता है। हंस दूध को पीकर जल को छोड़ देता है। इसी तरह से रेत में लोहे का चूरा मिल गया। अब चूरे को रेत से कैसे निकालें ? तो चुम्बक घुमा दो। जैसे चुम्बक की सहायता से रेत और लोहे को अलग कर सकते हैं। उसी तरह विवेक द्वारा आत्मा और अनात्मा को भी कर सकते हैं। जो जड़ तत्त्व है वह प्रकृति का अंश है। इसीलिए अनात्मा और विनाशी है। जो चेतन तत्त्व है वह एकरस है, वही ब्रह्म है, वह अविनाशी है। शरीर में बचपन से बुढ़ापे तक कितना विकार हो गया। इसीलिए यह एकरस नहीं, यह आत्मा नहीं। जो एकरस है, जानने वाला है, वह बालक में भी है, युवक में भी और बूढ़े में भी वही है। चेतन के अन्दर कुछ अन्तर नहीं आता। चाहे छोटा हो या बड़ा हो। अतः तुम इस बात का निर्णय करो कि इसमें चेतन तत्त्व कौन है और जड़ तत्त्व कौन है ? जब यह निर्णय हो जाए कि चेतन तत्त्व देखने वाला है और जड़ तत्त्व दिखाई देने वाला है। दृश्य–जड़ है, ज्ञेय है। दृष्टा–ज्ञाता है, चेतन है। इसके लिए मन की स्थिति को पहचानना पड़ेगा कि किस तरह हमें पदार्थ का ज्ञान होता है ? कैसे वस्तु का दर्शन होता है ? यह युक्ति जब आ जाएगी तो अपने मन को सहज में ही संसारी पदार्थों से खींचकर द्रष्टा में लगा सकते हैं। वही द्रष्टा है, ज्ञाता है, और उसी का नाम चेतन भी है। उसी को ज्ञान भी कहते हैं। क्योंकि चेतना ज्ञान की होती है। जो देखता है, सुनता है, बोलता है, सर्दी-गर्मी का अनुभव करता है– उसी का नाम चेतन है। एक शिला धूप में पड़ी है। वह तप गई है। लेकिन उसको सर्दी-गर्मी का अनुभव नहीं होता। उसके पास यदि दूसरी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वस्तु पड़ी है तो उसका भी ज्ञान उसको नहीं होता क्योंकि उसमें ज्ञान नहीं है। जिसमें ज्ञान नहीं है उसको जड़ या अचेतन कहते हैं। हमारे अन्दर जो ज्ञान शक्ति है उसी को ज्ञाता, द्रष्टा या आत्मा और 'मैं' कहते हैं। उसी को खोजने का नाम विचार है। इसीलिए शंकराचार्य जो ने कहा—

कोऽहं कथमिदं जातं को वै कर्त्तास्य विद्यते।
उपादानं किमस्तीह विचारः सोऽयमीदृशः॥

अपरोक्षानुभूति-१२

इसी का नाम विचार है। विचार नाम कुछ प्रश्नों का उत्तर ढूँढना है। उन्होंने चार प्रश्न लिखे हैं— मैं कौन हूं? हरेक मनुष्य मैं शब्द का प्रयोग करता है। तो 'मैं' शब्द का प्रयोग सब कर रहे हैं और जो शब्द होता है उसका अर्थ भी होता है। तो पूछा जाय कि मैं किसको कह रहे हो? तो वे सोचेंगे कि मैं किसको कहें? तो उन्होंने उत्तर दिया कि खोजो कि मैं कौन हूं? यह पुस्तक किसकी है? तो मेरी। तो कौन है तेरा जो अपने को मेरी कह रहा है? तो मैं शब्द का प्रयोग सब कर रहे हैं। परन्तु पूछा जाय कि मैं किसको कह रहा है तो इसको ही ढूँढना है। फिर "कथमिदं जातं?" यह जो संसार दिख रहा है—यह कहाँ से उत्पन्न हुआ और इसका उपादान क्या है? इन प्रश्नों का उत्तर ढूँढना ही विचार है। विचार से फिर सिद्ध हो जाएगा कि मैं कौन हूं और कैसा हूं? तो इस पर आगे विचार करेंगे।

ॐ पूर्णमदः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आत्मलाभ क्या है ?

जिसका अन्तःकरण पवित्र हो गया, उसी को जन्म-मृत्यु, दुःख-शोक देखकर वैराग्य होता है। पवित्र मन वाले को एक बार देखकर अथवा सुनकर ही वैराग्य हो जाता है। जैसे गौतम बुद्ध को संसार के दुःखों के प्रथम दर्शन में ही वैराग्य हो गया।

अन्तःकरण पवित्र कैसे होता है ? जो पाप हो चुके वे तो हो चुके, परन्तु कम से कम आगे का तो बन्द हो जाये। जैसे हम कपड़ा धोते हैं तो दो काम करते हैं। एक तो उसमें साबुन लगाना पड़ता है और दूसरा जल डालकर धोना पड़ता है। तो साबुन मैल को काटता है और जल उसको बाहर निकाल देता है। अगर उस पर मिट्टी घुला हुआ जल डालते रहे तो साबुन क्या करेगा? अब जो नया मैल पड़ा उसको तो साबुन नहीं धो सकता है। तो जो पाप हमने किये हैं वो तो भोग रहे हैं परन्तु अब हम भविष्य में कोई पाप नहीं करेंगे तो साधन के द्वारा एक दिन ऐसे परम पवित्र हो जायेंगे कि फिर ज्ञान होने में देर नहीं लगती है—

ज्ञानं उत्पद्यते पुंसां क्षयात् पापस्य कर्मणः

किसी को जल्द ज्ञान होता है, किसी को देर से। इसका कारण भी यही है। दो आदमी साथ-साथ साधन करते हैं। उनमें से एक को चटपट अपरोक्ष हो जाता है, दूसरे को नहीं होता है। इसका कारण भी यही है कि एक में कम पाप था, दूसरे में अधिक है। जप, तप, उपवास आदि अन्तःकरण की शुद्धि के लिए ही हैं। फिर मनुष्य शुद्ध होकर दिव्य बल की प्राप्ति करता है और अपने आत्मा का स्वरूप जान लेता है।

एक बार भगवान् अर्जुन को सुना रहे थे कि देखा अर्जुन ! प्रत्येक मनुष्य में दैत्य भी होता है, देवता भी होता है। परन्तु दोनों साथ काम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं करते हैं– कभी देवता जागता है और दैत्य सोया हुआ होता है। कभी दैत्य जागता है और देवता सोता है। जब देवता जागता है तो उसके आचार-विचार देवताओं जैसे होते हैं। हम उसको देवता बोलते हैं। जब दैत्य जाग जाए तो अपराध, व्यभिचार आदि करने लगता है। तो फिर क्या करना चाहिए? दैत्य जगा हुआ हो तो सुला देना चाहिए और देवता को जगाना चाहिए। ऐसे ही बातचीत करते जा रहे थे। आगे उन्होंने देखा कि कोई मछली मार रहा है। (कहानी पहले आ चुकी है)

यह जो हमारे शरीर में आत्मा है, वही सब में है। इसीलिए एक दूसरे के प्रति दया, परोपकार, सेवा आदि चली आ रही है नहीं तो एक आदमी दूसरे की क्यों सेवा करे? क्यों सुख पहुंचाने का प्रयत्न करे? जो दूसरे को दुःख देता है हम कहते हैं कि बुरा कर रहा है। तो क्यों कर रहा है? वह जो दूसरे को दुःख दे रहा है वह अपने को ही दुःख दे रहा है। क्योंकि जब यह बात सिद्ध हो गई कि जो आत्मा हमारे अन्दर है वही दूसरे के अन्दर है। तो जो हमको दुःख दे रहा है वह अपने को ही दुःख दे रहा है। हम जो दूसरों को दुःख दे रहे हैं वह अपने को ही दुःख दे रहे हैं। इसी प्रकार हम भलाई करते हैं तो वह अपनी ही कर रहे हैं।

पैर के नाखून से सिर तक हम एक हैं। इसमें तो कोई संशय नहीं है। पैर के साथ हम प्रेम करते हैं तो क्या किसी दूसरे के साथ कर रहे हैं? या हाथ को सुख पहुंचाएँ तो वह भी हम अपने आप से ही प्रेम करते हैं। क्योंकि सिर से पैर तक हमी जो हैं। इसी प्रकार हमारी बुद्धि यदि मान ले कि जैसे सिर से पैर तक हम ही हैं तो सारे ब्रह्माण्ड में हम ही हैं। यही सर्वात्मभाव है। भगवान् ने स्वयं अर्जुन को समझाया कि—

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखम् स योगी परमोमतः॥

गीता- ६-३२

अपना जो रूप मान रखा है, इसी को दृष्टान्त रखकर और सबके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साथ व्यवहार करना। जैसे इस शरीर का सुख-दुःख अपना है वैसे ही दूसरे के सुख-दुःख को अपना ही समझो। दया, परोपकार, प्रेम आदि जो सद्गुण हैं—वह दूसरे को इसीलिए देना है क्योंकि सभी में तो हम हैं। सभी तो अपने ही रूप हैं। वही परम योगी है जो सब में अपने आपको देखता है—

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सु दुर्लभः।

सबको अपना भगवान् समझता है—यही भक्ति का रहस्य है। तो ज्ञान और भक्ति दोनों एक ही बिंदु पर मिलते हैं। यही सात्विक बुद्धि है—

अविभक्तं विभक्तेषु

यह सात्विक, सुखदायी और सच्चा निश्चय है। भेद बुद्धि रजोगुण में होता है। जहाँ भेद बुद्धि है, वहीं क्लेश तथा दुःख उत्पन्न होता है। सत्वगुण में प्रेम आ जाता है—वहाँ सुख होता है।

किसी को हम दुःख नहीं दें तो इसका कारण क्या है? भौतिकवादी तो इसका उत्तर देते हैं कि हम दूसरे को दुःख देंगे तो वे भी दुःख देंगे और सुख देंगे तो वे सुख देंगे। पर आध्यात्मवाद यह युक्ति नहीं देता है। उनका कहना है कि सभी तो अपने ही रूप हैं तो फिर उनको सुख पहुंचाना अपने को ही सुख पहुंचाना है।

दूसरे को पीड़ा पहुंचाने को पाप कहा गया है। पाप इसलिए कहा गया कि दूसरा तो कोई है ही नहीं तो हम अपने आपको ही दुःख पहुंचा रहे हैं। तो फिर हम अपने साथ बुराई क्यों करें?

पाप का कारण आसक्ति है। जब हम किसी पदार्थ में आसक्त हो जाते हैं तो उसको लेने की कोशिश करते रहते हैं। उसी को लेने की कोशिश दूसरा भी करता है तो फिर संघर्ष होना स्वाभाविक है। एक बात पर जहाँ दो अड़ जाएँ तो झगड़ा अवश्य होगा।

महाभारत में एक कथा आती है। दो भाई थे— सुन्द-उपसुन्द।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दोनों ने ब्रह्मा जी की प्राप्ति के लिए तपस्या की। दोनों में बहुत प्रेम था। दोनों साथ ही पैदा हुए थे, साथ ही पले, साथ ही बढ़े, साथ ही रहे और तपस्या भी साथ-साथ किए। ब्रह्मा जी प्रगट हुए। कहे कि वर माँगो– तो बोले कि हम मरें नहीं अमर हो जायें। ब्रह्मा जी बोले कि ऐसा वर तो नहीं दे सकते। तुम किसी निमित्तविशेष से वर माँगो– कि अमुक से हमारी मृत्यु हो। उन्होंने विचार कर वर माँगा कि हमारी मृत्यु तभी हो जब हम आपस में लड़ें। तब ब्रह्मा जी ने कहा कि ठीक है। उनको विश्वास था कि हममें इतना प्रेम है कि आपस में लड़ाई हो नहीं सकती और दूसरा कोई मार नहीं सकता तो हम अजर-अमर हो गये न? ब्रह्मा जी वर देकर चले गये। उन्होंने अपने आपको अजर-अमर मानकर उपद्रव मचाना शुरु कर दिया कि लोग तबाह हो गये। देवलोक में भी उपद्रव मचाना शुरु किया। देवता लोग ब्रह्मा जी के पास गये कि आपके चेले तो हमको बैठने नहीं देते। तो उन्होंने कहा कि वर तो मैंने दे दिया किन्तु उनकी आपस में तुम लोग लड़ाई करा दो। वे बोले कि यह तो मामूली बात है। उन्होंने तिलोत्तमा नामक अप्सरा को उनके पास भेजा। ब्रह्मा जी ने संसार की सारी सुन्दरता में से तिल-तिल चुनकर उसको बनाया। वह इतनी सुन्दर बन गई–सुन्दरता की मूर्ति बन गई। जब वह बन कर तैयार हुई तो उसको देखने के लिये ब्रह्मा जी के चार मुख पैदा हो गये। ब्रह्मलोक में जितने लोग थे वे सभी तिलोत्तमा को ही देखने लगे। वह ब्रह्मा जी के पास गई। चरणों में नमस्कार करके बोली कि मुझको किसलिये बनाया है, बताओ? उन्होंने कहा कि तुम जाओ भूतल में और सुन्द-उपसुन्द में झगड़ा कराओ। वह पहुंची तो दोनों नदी के किनारे टहल रहे थे। देखा कि सामने से कोई सुन्दरी आ रही है। उसकी आकृति देखकर दोनों मोहित हो गए। एक बाँह एक ने पकड़ ली और दूसरे ने दूसरी बाँह पकड़ ली। लगे अपनी तरफ खींचने। उसने छोटे की ओर मुँह फेर कर कहा कि हम तुमसे शादी करेंगे। परन्तु यह हमको छेड़े नहीं। इसको मारो पहले। फिर उधर से मुँह हटा कर दूसरे से बोली कि तुमसे तो हमारा प्रेम है, पर यह क्यों तंग करता है? इसको मारो। बस, दोनों उसको छोड़कर आपस में लड़ गए। दोनों मर गए और तिलोत्तमा ब्रह्मलोक में चली गई।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो देखो संघर्ष का कारण–एक वस्तु पर दो की इच्छा होना है। इसीलिए प्रह्लाद समझ रहा है कि हिरण्याक्ष को विष्णु ने नहीं मारा। वह तो अपने कर्मों से मरा। जिसके ऊपर आपत्ति आती है वह उसके कर्मों के फलस्वरूप आती है। हम बेकार में किसी से द्वेष कर लेते हैं कि उसने ऐसा कर लिया। मनुष्य इस बात को समझ कर अपने मन, अपने इन्द्रियों को सुधार ले तो कोई झगड़ा ही नहीं। परन्तु यह बात तभी आ सकती है जब शरीर में राग और आसक्ति हट जाए। इसीलिए भगवान् ने कहा कि जो सबको अपना ही रूप समझता है, उसकी किसी से लड़ाई क्यों होगी ?

सर्वभूतेषु येनैक भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ॥

गीता- १८,२०

यह सात्विक और सुखदायी निश्चय है। इससे मनुष्य को निर्भयता प्राप्त होती है।

आत्मज्ञान सबसे बड़ा ज्ञान है। किन्तु कुछ लोगों ने आत्मा को प्रत्येक शरीर में भिन्न-भिन्न माना है। उसका कारण यह है कि-वो यह समझने लगे कि शरीर ही आत्मा है। इसलिए उनका कहना है कि आदमियों का स्वरूप भी भिन्न-भिन्न है। कोई हिंसक है, कोई दयालु है। तो यह सब फिर क्यों है। यहाँ एक शंका आती है। नैयायिक आदि भी इस शंका के आधार पर आत्मा को भिन्न-भिन्न मान बैठे।

वेदान्त कहता है कि यह तो निकम्मी शंका है। उनकी शंका का कारण देहात्म बुद्धि है।

आत्मानं चेद् विजानियाद् यमस्मीति पूरुषः

प्राणीमात्र दुःखों से छुटकारा और सदा सुखी रहना चाहता है। उसमें इसको सफलता नहीं मिलती है। तो इसका कारण क्या है ? उसके ऊपर विद्वानों ने विचार किया तो समझाया कि इसका तरीका जो है, गलत है। दुःखों की निवृत्ति जिससे होनी थी वहाँ तो यह जाता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं। जिस मार्ग में जाने पर दुःखों की वृद्धि होती है वही काम करता है। इसी गलती को सुधारने के लिए आध्यात्मवाद है।

यदि वह पुरुष अपने असली स्वरूप को जान जाए तो फिर कौन-सी वस्तु इसको अप्राप्य है और कौन सा कष्ट इसको सता सकता है? किन्तु शब्द बता रहा है कि वह अपने स्वरूप को ठीक से जानता नहीं है।

जैसे किसी के घर में खजाना दबा हुआ है और वह भूखों मर रहा है तो पहला काम तो यही है कोई उसको बताए कि तुम्हारे घर में खजाना दबा पड़ा हुआ है। खजाने का स्थान बतला दे तो सबसे पहले तो प्रमाणिक पुरुष होना चाहिए जो बतलाए कि अमुक स्थान पर खजाना है। फिर वह खोदने का सामान लाकर जमीन को खोदे। उसके ऊपर कोई शिला आदि पड़ी हुई है, उसको हटाए और किसी घड़े में रुपया रखा हुआ है तो उसको निकाल कर प्राप्त करे तो उसकी गरीबी दूर होगी। तो खजाना उसके घर में ही था कहीं बाहर से नहीं लाना पड़ा है। परन्तु मालूम नहीं होने के कारण वह वर्षों से दरिद्र बना था। जैसे—

आप्तोक्ति खननं तथो परिशीलाद्

उसको चार बातें करनी पड़ती हैं जिसको गढ़ा हुआ धन प्राप्त करना है। पहले तो आप्त पुरुष का उपदेश, फिर जमीन को खोदना, फिर शिलादि को हटाना और फिर सम्पत्ति प्राप्त करना।

जैसे जमीन में दबा हुआ धन इन चार बातों की अपेक्षा रखता है। खाली वहाँ जाकर पुकारे कि हे धन देवता, मैं दुःखी हो रहा हूं। तुम बाहर निकल कर आ जाओ। मेरी निर्धनता दूर करो तो धन नहीं आएगा। पुरुषार्थ तो उसको करना पड़ेगा ही—

तद्वत् ब्रह्मविदोपदेश मननं ध्यानादिभिर्लभ्यते

यहाँ पर भी ठीक उसी तरह से वह जो असली सुख है जिसके आने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से दुःखों की एकदम निवृत्ति हो जाती है, इसके लिए किसी ब्रह्मवेत्ता पुरुष का उपदेश सुनना चाहिए। उससे जाने कि असली सुख क्या है, कैसे मिलता है और कहाँ है। तत्व ज्ञानी बतलाएगा कि असली सुख तुम्हारे अन्दर ही है—

यो वेद निहितं गुहायाम्

तैतरीय में कहा है कि—

सत्यं ज्ञान अनन्तम् ब्रह्म, यो वेद निहितं गुहायाम् तै० २-१

सत्य = अविनाशी, ज्ञान = स्वयं प्रकाश, अनन्तम् = जिसका देश काल से अन्त नहीं हो, ऐसा आनन्दस्वरूप जो ब्रह्म है, वह हरेक के अन्दर छिप कर बैठा है। यह भेद जो जान ले, जो उसको ढूँढ ले, वही अविद्या की ग्रन्थि को खोल पायेगा, उसी का जीवन सच्चा जीवन है वह गुफा कौन है ? योग सूत्रकार ने योग भाष्य में लिखा है—

न पातालं न च विवरम् गिरिणाम्
नैव अंधकारम् कुत्सयो नोदधिनाम्
गुह्य यस्य निहितं ब्रह्म शाश्वतम्
बुद्धि वृत्तिवशिष्टताम् कवयो वेदयन्ते।

वह जो गुफा है जिसमें परमात्मा छिप कर बैठा है वह कोई हिमालय की गुफा नहीं है, ना वह गुफा कहीं पाताल में है, कहीं अंधकार में भी नहीं है। यानी जिसमें वह ब्रह्म छिपकर बैठा है वह गुफा बाहर नहीं है। तो फिर कहाँ है ? हमारे अन्तःकरण में जो ज्ञानरूपी वृत्ति है, जिसमें चेतन का प्रतिबिम्ब पड़ता है, बस वही गुफा है।

यह जो अहं करके फिर रहा है, इसी का नाम ब्रह्म है, यही आत्मा है। ढूँढो कि मैं कौन हूं ? इसलिए शंकराचार्य ने लिखा है—

उक्त साधन युक्तेन, विचार पुरुषेणतु।
कर्तव्यो ज्ञान सिद्धयर्थम्, आत्मनः शुभमीक्षता॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जो अपने आत्मा का कल्याण चाहे, उसको चाहिए कि विचार करे। पर विचार करना भी अकेले नहीं हो सकता। इसलिए कहा कि—

तद्वत् ब्रह्मविदोपदेश मननं ध्यानादिभिर्लभ्यते।
मायाकार्य तिरोहितम् सयमलम न दुर्युक्तिभिः॥

देखो कोई पुरुष है और बुर्का पहनकर तुम्हारे सामने आ जाए तो क्या पता लगता है कि कौन है? जब तक उसके ऊपर बुर्का है, उसके वास्तविक स्वरूप को हम नहीं जान सकते। बुर्का हटाने पर उसका सब कुछ पता लग जाता है। इसी प्रकार ये जो पंचकोष है उसका बुर्का पहनकर परमात्मा हमारे समक्ष आ गया है। अब हम पहचानते नहीं कि हैं कौन? जब एक ही बुर्का में पहचानना मुश्किल है तो यहाँ तो पाँच बुर्का हो गये।

इसलिए कहा कि पहले उपदेश सुने और फिर उसका मनन करे। उपदेश में कोई ऐसी बातें आती हैं जो जल्द समझ में नहीं आती हैं। अतः जो नहीं समझे उसे पूछे। यही श्रवण या सत्संग है। यही विचार है। फिर मनन करें। निदिध्यासन करें। माया का कार्य जो पंचकोष है इसी में वह आत्मा छिपकर बैठा है। कैसे ढूँढें? तो इन चार प्रश्नों का उत्तर ढूँढें—

कोऽहं कथमिदजातम्, कर्ता कोवास्य विद्यते।
उपादानम् किमस्तीह, विचारः सोयमीदृशः।

आत्मा एक है, किन्तु शरीर अनेक हैं। इसी अनेकता से ही व्यवहार चल रहा है। अगर सभी एकरूप होते तो क्या पता चलता कि किसका कौन है? बड़ा मुश्किल हो जाता।

एक बार की घटना है दो आदमी शादी करके अपनी बहुएँ लेकर चले। एक ही डिब्बे में दोनों बैठे, वर के कपड़े भी एक जैसे थे। बहुएँ थीं, उनके भी एक जैसे। संयोग से पास ही बैठे। एक ही स्टेशन पर दोनों उतरे। तो बहुएँ घुँघट किए हुए थीं। अब उसकी बहू उसके साथ चली गई, और उसकी बहू उसके साथ। जब अपने-अपने घर पहुंचे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो मुँह देखने लोग आए। अब देखा तो घबराये, यह कौन आ गई। यह तो हमारी थी नहीं। उसका हाल भी यही हुआ। परन्तु बहुत देर और दूर की बात नहीं थी, झट उनको पता लग गया कि असल में बदल गई है। फिर अपना बदल लाए।

तो समरूपता में, व्यवहार चलाने में बड़ी मुश्किल होगी। विभिन्नता के कारण ही व्यवहार चल रहा है। सबकी एक ही आकृति हो तो कौन किसका बाप है, कौन किसका बेटा है पहचानना मुश्किल होगा।

इसलिए अद्वैत पद को अव्यवहारिक कहा है। माण्डूक्य में उस आत्मा का स्वरूप बतलाया है—

अव्यवहार्यम्.....

वह अद्वैत तत्व अव्यवहार है, उसमें व्यवहार नहीं है। क्योंकि व्यवहार तो भेद में होता है। भेद के बिना व्यवहार नहीं होगा। होगा तो गलत होगा। किसी के घर में दूसरा घुस जाएगा। यह जो आपस में आकृति का, बोलचाल का, खानपान का भेद इसलिए रखा है कि व्यवहार ठीक से चल सके। जहाँ अद्वैत है, वह अव्यवहार्य है। मैं, मैं जो सब अपने को कह रहे हैं, तो एक जरूर कोई ऐसी वस्तु है जो एकरस है। जितने शरीर हैं वो भिन्न-भिन्न हैं। परन्तु जो सभी अपने को मैं कहते हैं—मैं नाम सबका स्वाभाविक है। यह नाम किसी ने रखा नहीं है। देवदत्त, यज्ञदत्त आदि जो नाम हैं, उसे तो ज्योतिषी द्वारा रखवाया जाता है तथा बच्चे को सिखाया जाता है कि तेरा नाम देवदत्त है। परन्तु तेरा नाम 'मैं' है, ऐसा किसी को सिखाया नहीं जाता है और सभी अपने को मैं बोलते हैं। तो यह स्वतःसिद्ध नाम है। यह साबित करता है कि मैं तत्व सबमें एक ही है। मैं एकरस है। शरीर को मैं नहीं कह सकते। क्योंकि यह तो पंचरस है। इसीलिए मदालसा ने अपने लड़कों को उपदेश किया और समझाया है कि तू देह नहीं है—

पंचात्मक देह इदं न तेष्ठि
नैवास्य तव रोदसि कस्य हेतु ?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हे पुत्र तुम इस शरीर के कारण से इसको दुःखी देखकर रो क्यों रहा है ? इससे तेरा क्या सम्बन्ध है। यह शरीर तो एक पंचायती धर्मशाला है। उसका एक आदमी मालिक नहीं होता है। पाँच मालिक होते हैं। पाँच भूतों ने ही इसको बनाया है तो पाँच भूत ही इसके मालिक हैं। तुम्हारा तो इससे कोई मतलब नहीं है। तुम तो वैसे ही हो जैसे कोई यात्री बाहर से आकर ठहर जाए। वास्तव में यह पंचों का है। इसमें तेरा कुछ भी नहीं है। भला एकरस का पंचरस से क्या सम्बन्ध हो सकता है। तू तो आत्मा है। तू आनन्दस्वरूप है। परन्तु इस बात को कैसे मानें। जब तक विश्वास न हो तब तक मानना मुश्किल है। तो वो कहते हैं कि तुम सुसुप्ति का जरा विचार करो।

सोने में जाग्रत का कोई दुःख-सुख साथ नहीं जाता है। क्योंकि निद्रा में आत्मा अकेला रहता है। इसलिए हम निद्रा में दुःख को भूल जाते हैं। आत्मा आनन्दरूप ही है यदि अकेला रहे तब। यदि उसके साथ दूसरा कुछ मिल गया तो दुःखरूप हो जाता है। यही कारण है कि रागी जब जागता है तो दुःख का अनुभव करता है। द्वैत में दुःख है अद्वैत में सुख है। इसलिए जब माण्डूक्य में आत्मा के विशेषण दिए तो—

प्रपंचोपसमं शान्तं शिवं अद्वैतम्

यह जो प्रपंच है इसका जब उपसम (तिरोभाव) हो जाता है तो मंगल आनन्द की प्राप्ति होती है। जहाँ दूसरे की कल्पना किया कि दुःख आरम्भ हो जाता है।

नींद में उस आनन्द का अनुभव होता है। दूसरा दृष्टान्त बच्चे का है। छोटा बच्चा है उसको भूख-प्यास नहीं हो तो देखो वह कैसा आनन्दरूप है। कितना निर्भय ?

एक दफे अकबर ने बीरबल से पूछा कि मेरे से बलवान कोई है ? वह बोला कि लाखों हैं। लाखों हैं ? दो चार भी दिखाओ। आप आज्ञा दें मैं अभी लाता हूं। लाओ। वह गया और एक छोटे से बच्चे को लाया। बोला कि यह आपसे बड़ा और बलवान है। कैसे ? तो उनकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गोद में बैठा दिया। बच्चे ने पकड़ी अकबर की मूँछ और लगा खींचने। अब अकबर छुड़ाए तो छोड़े नहीं। तो बीरबल बोला कि देखा न अपनी मूँछें खींचने वाला। तो है न तुमसे बलवान। तुम चाहे इसके सामने तोप लगाओ, चाहे इसके सामने सारी सेना खड़ी कर दो, इसको कोई भय नहीं होगा। रोना ही इसका सबसे बड़ा अस्त्र है। उसी से अपना सारा काम करता है। जो बात माँ-बाप नहीं मानें तो जरा रोना शुरु किया कि चट उसका काम पूरा। एक ही हथियार है उसके पास रोना—

बालानां रोदनं बलम्

तो बालक की प्रसन्नता का क्या राज है। उसके पास कोई सामान नहीं, किसी से बोलता नहीं। अपने आप में आनन्दित हो रहा है। ऐसे भी इतिहास मिलते हैं कि हिंस्र जानवर बाघ भेड़िया आदि छोटे बच्चों को हँसते देखकर खुश हो जाते हैं।

अभी कुछ दिन पहले भेड़िया की गुफा से एक बच्चा मिला था। उसका नाम रामू था। उसको लखनऊ अस्पताल में रखा गया था। तो भेड़िया को आदमी का बच्चा कहाँ से आ गया। वह खेत में से छोटे बच्चे को खेलता हुआ उठा ले गया। उसने खाया नहीं। छोटा था उसको अपने बच्चे की तरह पालता रहा। बड़ा हो गया तो फिर लोग पकड़ लाए। हिंस्र जन्तु भी उसके सौम्य आनन्दरूप को देखकर वैर भाव भूल जाते हैं। बच्चे की प्रसन्नता का कारण उसका अपना आत्मानन्द ही है। वह अपने स्वरूप में है। इससे सिद्ध हुआ कि हमारा स्वरूप सुख-रूप है। उसको बाहरी पदार्थ बिगाड़ते हैं। यही नष्ट करते हैं। आत्मा की प्राप्ति से सुख की प्राप्ति हो गयी। जब सुख मिल गया तो दुःख अपने आप भाग जायेंगे। संसारी सुख अनित्य हैं। आत्मसुख नित्य है। इसीलिए कहा कि आत्मज्ञानी को यदि संसारी सुख न मिले तो आत्म-सुख तो उसका कहीं नहीं गया न? अज्ञानी को तो सुख हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है। हो गया तो भी विषय सुख, नहीं हुआ तो केवल दुःख ही दुःख।

इसीलिए ज्ञानियों ने ऐसे-ऐसे कष्ट हर्षपूर्वक सहे जिनके सुनने में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भी डर लगता है। उन्होंने बड़े आनन्द से सहा उनको। उनमें दुःख सहने का जो बल आया वह आत्मसुख का ही बल है। असली सुख आत्मसुख ही है। भगवान ने कहा—

सुखमात्यांतिकम् यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।

अत्यांतिक = असली जो सुख है वह अद्वितीय है। और विषय सुख जितने हैं इन्द्रियों के विषय हैं। असली सुख अतिन्द्रिय होता है। जितने भी संसारी सुख हैं वो इन्द्रिय ग्राह्य हैं। इसलिए को तो असली सुख हुए नहीं। विषय सुख मात्र स्वप्न और जाग्रत हैं। असली सुख तुरीयावस्था का है। वहाँ इन्द्रियाँ तथा बुद्धि नहीं होती है। सुषुप्त का सुख भी असली सुख नहीं है। अगर इसी को असली सुख मान लिया जाये तो, तब तो आदमी सोने में ही मुक्त हो जाए, फिर उसको साधन करने की क्या जरूरत है? सुसुप्ति का सुख वैसा ही है जैसा कि कस्तूरी का कपड़े में लिपटा कर डिब्बे में बंद कर दो, डिब्बे में भी गंध आ जाती है। उसी प्रकार सुसुप्ति का सुख अज्ञान में लिपटा हुआ है। अज्ञान, वासनाएँ ये सब निद्रा में भरी होती हैं। उसके अन्दर आत्मसुख डिब्बे में लिपटा हुआ कस्तूरी की तरह भान होता है। निद्रा का सुख इतना प्रिय है कि उसको आदमी छोड़ना नहीं चाहता है। बड़े से बड़ा आदमी भी आँख खुलने पर कुछ सोना चाहता है और नहीं तो थोड़ी देर बैठा ही रहे। अगर अगले दिन कोई काम न हो, रविवार हो तो अलार्म भी बजता रहे, कोई आवाज भी देता रहे तो कोई परवाह नहीं। अरे भाई उठो, तो उठे क्या? आज कोई काम थोड़े है? सोने दे और दो घण्टे। तो नींद इतनी प्रिय है। वह उठना नहीं चाहता। यह तो बाहर की चिंता उसको उठाती है। यदि सामने कोई डर, भय, चिंता आदि न हो तो यह केवल खाए और सोए। तो कितना आनन्द है और वह है आवृत्त आनन्द। अगर खुला हुआ पूरा आनन्द मिल जाए तो बोलो क्या इसको हाल हो। फिर तो उसे छोड़ ही नहीं—

यस्मि स्थितो न दुखेन गुरुणापिविचाल्यते

एक बार जब उस सुख का अनुभव हो जाए तो फिर तो यह संसार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

की तरफ मुख करे ही नहीं। जैसे शहद खाने के बाद अब भला गन्ने में क्या आनन्द आएगा। इसी तरह फिर इसको विषय सुख फीके लगते हैं, जब इसको आत्मानन्द की प्राप्ति होती है। फिर ज्ञानी खाता-पीता क्यों है? तो वह आनन्द के लिए नहीं खाता है बल्कि शरीर की रक्षा के लिए खाता है। पानी, वस्त्र, भोजन आदि तो शरीर के लिए आवश्यक हैं। इसलिए यह इनको लेता है। सुख के लिये अब उसकी कहीं भी प्रवृत्ति नहीं होती है।

जो संसार में लगा रहता है वह दुःखित होकर अंत में रोता है और उसी इच्छा को लेकर मर जाता है। फिर जन्म लेने पर वह इच्छा साथ रहती है। फिर भटकना पड़ता है। तो जब इच्छाएँ रहेंगी, जीव का छुटकारा हो ही नहीं सकता है और इच्छा कब समाप्त होती है? तो जिसको चाहता है वह चीज मिल जाए तब। यह चाहता है नित्य सुख और दुःखों की निवृत्ति बस। और कुछ चाहता ही नहीं है। धन परिवार आदि वह भविष्य में सुख के लिए ही चाहता है।

एक लड़का था हमारे पास, उसने पहले प्रतिज्ञा की कि मैं शादी नहीं करूँगा। तनख्वाह भी अच्छी थी। लोगों ने बहुत जोर मारा लेकिन वह शादी करे ही नहीं। तो उसको कोई आवश्यकता नहीं भान हुई। क्या करना है शादी करके। एक दफे वह पड़ गया बीमार। उसकी भौजाई थी। उसको उसने कहा कि मेरे को चाय बना दो। उसने चाय बना दी और काम पर लग गई। आवाज दी तो बोली कि मैं तेरे पास रख आई हूं। अब चाय ठंडी हो गई। मैं क्या करूँ, ठंडी तो होनी ही है। गर्म कर दे। तो अपनी शादी करा ले। गर्म-गर्म चाय पीना। बस उसके मन में यह बात बैठ गई कि बिना शादी गुजारा नहीं। फिर उसने शादी कर ली। अब ताजी चाय पियो, ताजी रोटी खाओ। तो इच्छा मनुष्य को संसार की तरफ प्रवृत्त करती है। इच्छा कब होती है जब कोई आवश्यकता अड़ जाती है। जब जीव मरने लगता है तो कोई न कोई आवश्यकता इसकी बनी रहती है। उसको लेकर मर गया तो फिर उसी इच्छा को लेकर आना पड़ता है। तत्वज्ञानी मरता है तो उसको कोई इच्छा रहती ही नहीं। उसकी इच्छा शांत हो जाती है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ॐ

आपूर्यमानमचलप्रतिष्ठं
समुद्रमापः प्रविशंतियद्वत्
तद्वत् कामायं प्रविशंतिसर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी

गीता २-७०

संसारी के अपने स्वरूप को पहचानते ही उसकी सारी इच्छाएँ शान्त हो जाती हैं। क्योंकि सकल दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति और सुख की प्राप्ति दो ही तो इच्छा हैं। बाकी इच्छा तो गलती से होती हैं। सुख खोजने में वह नाना इच्छा बढ़ा लेता है—

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामायेऽस्य हृदिसृता

आत्मज्ञान होने से इसकी सब कामनाएँ समाप्त हो जाती हैं। खाना, पीना, बोलना, चालना, बिना कामना के चलता है जैसे बच्चे को चलता है। उसको कोई कामना नहीं है। वह कुछ करता भी नहीं है। बच्चे की तरह ही ज्ञानी की आवश्यकताएँ उसका प्रारब्ध पूरा करती हैं। उसको कोई कामना नहीं रहती है। परिणाम यह होता है कि मरण काल में उसके चित्त में कोई कामना नहीं होती है। जो कामना ही नहीं तो फिर जन्म भी नहीं। तो यह सिद्ध हुआ कि आत्मज्ञान से ही जीव का मोक्ष होगा और कोई उपाय नहीं।

आत्मा आनन्दरूप है। आनन्द का आश्रय नहीं, आनन्दस्वरूप है। आत्मा का आनन्द निर्विषय होने पर होता है।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मन की एकाग्रता

तो यह संसार के मिथ्यत्व को हृदय में पूरी तरह से नहीं बैठा सकता है। जो इतना बड़ा संसार अनादि काल से चला आ रहा है, उसे हम मिथ्या कैसे मान लें? तो उन लोगों के लिए—

जननानक जग जान्यो मिथ्या
तक्यो राम शरनाई।

तो जिसने जान लिया कि संसार मिथ्या है तो वह स्वयं भगवान् की ओर जाएगा। तो सूरदास ने एक भजन लिखा है उसमें समझाया है—जब मनुष्य को मिथ्यत्व निश्चय हो जाता है तो उसको बाहर जाने की जरूरत नहीं रहती—

मेरा मन अनत कहाँ सुख पावै
ज्यों उड़ि जहाज का पंछी फिर जहाज पै आवै॥

पानी के जहाज के डंडे पर एक पक्षी बैठ गया। इतने में जहाज चल पड़ा। उसे जब ख्याल आया तो बारह मील जहाज जा चुका है। अब वह उड़ता है पर सहारा कहाँ ले? थककर फिर जहाज पर चला जाता है। किनारे पर होता तो वृक्ष पर चला जाता। परन्तु यहाँ तो जहाज के अतिरिक्त कोई आश्रय नहीं। वह थककर जहाज पर ही आता है। क्योंकि उसके मन ने संसार को मिथ्या मान लिया है। अब कृष्ण को छोड़कर उनका मन कहीं टिकता ही नहीं। तो—

जननानक जग जान्यौ मिथ्या,
तक्यो राम शरनाई।

मनुष्य इस जगत् को मिथ्या मान ले तो राम के शरण ही रहेगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पर जिसने अभी ऐसा निश्चय नहीं किया है उसके लिए साधन बतलाए हैं। उपनिषदों में तीन साधन बतलाए हैं—

(१) पहला साधन है ओम का— ओऽम् इसको आप नाम समझो ओऽम् अनादि है। इसीलिए उसका नाम लिया। यानी कोई भी शब्द या परमात्मा का कोई भी नाम। उपनिषद् ने इसको धनुष-बाण का दृष्टान्त देकर समझाया है—

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥

प्रणव—ओंकार है—वही धनुष है। आत्मा या मन यही बाण क्योंकि मन में जो चेतन प्रतिबिम्ब है वही जीव है और ब्रह्म जो परमात्मा है वही उसका लक्ष्य है। जैसे धनुषधारी बाण चढ़ा कर लक्ष्य में मारता है जिसमें कि उसे मारना है। मारते समय जोर से बाण फेंकता है और उसकी दृष्टि उसी लक्ष्य में होती है। तो प्रणव जो है ओंकार—उसे धनुष बनाओ, ब्रह्म को लक्ष्य बनाओ। तो प्रणव क्या है? कुछ लोग ओम् का शकल बना लेते हैं, ओम् को लिख लेते हैं और उसी का ध्यान करते हैं परन्तु यह गलत तरीका है। क्योंकि लिखा जाता है उसके तो कई तरीके हैं हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी आदि विभिन्न भाषाओं में वह विभिन्न रूप से लिखा जाएगा न? अतः जो लिखित रूप हुआ वह उसका असली रूप नहीं है। पचास भाषा हों तो पचास तरह का ओम् हो जाए। जो लिखा गया है वह ओम् नहीं है। शब्द वही है जिसे सुना जाए। जो देखा जाए या जिसका रूप है वह शब्द नहीं होता। शब्द की पहचान तो कान से होती है। जो वाणी से बोला जाय और कान से सुना जाए वह शब्द हुआ। तो बोलकर लिखा जाता है वह शब्द थोड़े ही हुआ। वह तो अंगुली से लिखा जाता है। वह कान से थोड़े ही लिखा जाता है। परन्तु शब्द तो कान का विषय है और लिखने पर तो वह आँख का विषय बन जाता है। परन्तु शब्द तो आँख का विषय है नहीं। वह तो कान का विषय है। शब्द की क्या परिभाषा है? कि जिसकी उत्पत्ति वाणी से हो और जिसे कान से सुना जा सके उसको शब्द कहते हैं। तो बोलकर जो लिखा जा रहा है वह वाणी से थोड़े लिखा गया या जीभ से थोड़े

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लिखा गया। और फिर वह तो आँख से दिख रहा है। तो शब्द आँख का विषय थोड़े है। कान से थोड़े दिख रहा है।

जिसकी उत्पत्ति वाणी से हो और जो कान से जाना जाय उसको शब्द कहते हैं। ओम् शब्द है पर जो बोर्ड पर लिखा है वह ओम् नहीं है। किसी ने किसी प्रकार लिख दिया, किसी ने किसी प्रकार तो वह कल्पित है और कल्पित में अनेक कल्पना हो सकती हैं। पर जो वास्तविक है उसमें अनेकपना नहीं हो सकती है। तो फिर ओम् क्या है? तो सबको कहो कि तुमने जो लिखा है उसे पढ़ो तो सब बोलेंगे 'ऊँ'। उर्दू वाला, हिन्दी वाला भी ओम् ही बोलेगा। जो मुख से बोलो वही 'ओम्' है। बाकी सब कल्पित है। उसकी बातों को नहीं लेना है और सब उस पर मन को कैसे चढ़ाएँ? उस पर मन को चढ़ायेंगे तो बोर्ड पर लगेगा। भगवान् पर थोड़े लगेगा। इसलिए कहते हैं कि—

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा .....

कि प्रणव को धनुष बनाओ। धनुष का मतलब कि प्रणव का उच्चारण करो– ओऽम्। ओम् का अर्थ है कि किसी भी नाम का उच्चारण करो। जिसने जो नाम स्वीकार किया है, उसका उच्चारण करे। प्रत्येक नाम का अलग-अलग फल है। इसलिए ऋषियों ने अनंत नाम रखा है। तो जीव का स्वभाव है कि इसको अलग-अलग चीज पसन्द हैं। अगर किसी दुकान पर लोग कपड़ा खरीदने जायें तो सभी को एक ही कपड़ा पसन्द नहीं है। सभी अलग-अलग खरीदते हैं। अगर रंग की बात करो तो किसी को काला पसन्द है, किसी को लाल, किसी को हरा तो किसी को पीला। तो रंग सबको एक सा पसन्द नहीं। बनावट भी कोई एक-सी पसन्द नहीं। कोई पैंट पहनता है कोई पाजामा। कोई कुर्त्ता कोई शर्ट। तो जब मनुष्य का खाना एक नहीं, पसन्द, कपड़ा एक नहीं तो फिर नाम एक कैसे पसन्द होगा? कोई गेहूं, कोई चावल खाता है। इसलिए उन्होंने रुचि के अनुसार नाम बनाये—

रुचीनां वैचित्र्यादृजु कुटिल नाना पथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।

–शिव महिम्न-७

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो महिम्नकार ने इसी सिद्धान्त को लिया। परमात्मा के अनेक रूप और अनेक नाम हैं। एक ही नाम और एक ही रूप सबको पसन्द नहीं। इसलिये नाना प्रकार के पंथ समुदाय चले। अनेक नाम रूप हैं। जिसको जो पसन्द पड़े—

यथाभिमत ध्यानाद्वा।

पा० यो० द०- १-३९

जैसा तुमको अच्छा लगे, जिसमें तुम्हारा प्रेम हो, उसी का जाप करो। क्योंकि अंत में सब छूट जाना है न। नाम रूप या जितने भी साधन हैं वो परमात्मा की प्राप्ति पर स्वतः छूट जाते हैं। न नाम रहता है न रूप रहता है। कोई सहारा के लिए चाहे तो जो नाम, जो रूप पसन्द आए, ले ले। क्योंकि वहाँ तक जाने के लिए तो कोई न कोई साधन, सहारा चाहिए ही।

जैसे कोई आदमी है। वह पैर से कमजोर है। अब उसने लाठो का सहारा चलने वास्ते ले लिया। तो लाठो बाँस की भी हो सकती है। लकड़ी की भी हो सकती है, सोने की भी हो सकती है। परन्तु बाँस की लकड़ी जितना सहारा देगी, उतना सोने की भी देगी। हाँ, लोक में सोने वाले की प्रसिद्धि होगी। हाँ तो गिरने से बचने के लिए किसी लाठी की जरूरत है, बस। चाहे वह लकड़ी की हो या सोने की। क्योंकि घर पहुंच कर तो सभी को छोड़ देना है। जब पहुंच गए तो किसो साधन की या लाठी की जरूरत नहीं रह जातो।

परन्तु शब्द तो कान का विषय है किन्तु लिखने पर वह आँख का विषय बन जाता है। परन्तु शब्द वस्तुतः कान का ही विषय है। शब्द की परिभाषा यह है कि जिसकी उत्पत्ति वाणी से जानी जा सके, उसको शब्द कहते हैं। जो लिखा गया वह वाणी द्वारा नहीं लिखा गया अथवा उसे जब आँख देखती है तो शब्द आँख का विषय थोड़े है? जिसकी उत्पत्ति वाणी से हो और जो कान से सुना जाय उसे शब्द कहते हैं। ओम् एक शब्द है। पर जो बोर्ड पर ॐ लिख दिया जाय तो वह शब्द नहीं है। क्योंकि बोर्ड पर तो कई प्रकार से ओम् लिखा जा सकता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जितनी लिपि, ॐ के उतने आकार हो जायेंगे। अतः जो लिखा गया उसमें कल्पना है। तो जो लिखा गया वह कल्पित है इसलिए उसमें अनेकपना हो सकती है। परन्तु जो वास्तविक है उसमें अनेकपना नहीं हो सकती है। लिखने में उसके कई रूप हैं किन्तु उच्चारण करने पर सभी ॐ ही बोलेंगे। अतः जो मुख से बोला वही ॐ है। उसी ॐ पर मन को चढ़ाना है। इसीलिए कहा—

प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥

मुण्डक- २/३

प्रणव को धनुष बनाओ, मतलब कि प्रणव का उच्चारण करो। प्रत्येक नाम का अलग अलग फल है। इसीलिए ऋषियों ने अनंत नाम रखे हैं। जीव का स्वभाव है कि उसको अलग-अलग चीजें पसन्द हैं। किसी दुकान पर लोग खरीदने जायें तो सभी को एक ही कपड़ा नहीं पसन्द आता है। सभी अपने पसंद के अलग-अलग खरीदते हैं। अगर रंग की बात करें तो किसी को काला पसंद है, किसी को हरा तो किसी को पीला पसन्द है। तो रंग भी सभी को एक पसन्द नहीं, बनावट भी सभी को एक पसन्द नहीं। तो जब मनुष्य को कपड़ा एक नहीं पसन्द, रंग एक नहीं, खाना एक नहीं पसन्द। इसलिए उन्होंने रुचि के अनुसार परमात्मा के अनेक नाम दिये—

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिल नाना पथजुषां।
नृणामेकोगम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

महिम्नकार ने इसी सिद्धान्त को लिया। परमात्मा के अनेक रूप और अनेक नाम हैं। जिसमें तुम्हारा प्रेम हो उसी का जाप करो। क्योंकि अंत में तो छूट जाना है न। नाम रूप या जितने भी साधन हैं वे परमात्मा की प्राप्ति पर स्वतः छूट जाते हैं। न नाम रहता है न रूप रहता है। सहारा के लिए चाहे जो नाम जो रूप पसन्द आये ले लो। क्योंकि उसके पास तक पहुंचने के लिए कोई न कोई साधन या सहारा चाहिए ही। जैसे कोई आदमी पैर से कमजोर है तो उसे चलने के लिए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लाठी का सहारा चाहिए ही। लाठी बाँस, लकड़ी, लोहा या चाँदी किसी चीज की हो सकती है। किन्तु जितना सहारा बाँस की लकड़ी देगी उतनी ही सोने की देगी। हाँ, लोक में सोने वाले की प्रसिद्धि होगी। गिरने से बचने के लिए लाठी की जरूरत है। चाहे वह लकड़ी की हो या सोने की। जब घर पहुंच गये तो साधन छूट गया। अब सहारे को जरूरत नहीं रह जाती। तो अपना घर आत्मा या परमात्मा है। वहाँ पर जाने पर नाम, रूप आदि जो साधन हैं, वे स्वयं छूट जाते हैं—

यतो वाचो निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह।
अनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्। न बिभेति कदाचनेति।

तैत्तरीय-अनुवाक् ४

जहाँ मन, वाणी दो नहीं जा सकते, वही अपना घर है। नाम रूप बस दरवाजे तक ही जाते हैं। आगे तो इसे छोड़ना ही है। बाँस की लकड़ी को भी छोड़ना है और सोने की लकड़ी को भी छोड़ना है। तो फिर किसी भी साधन के लिए हठ क्यों करें—

यथाभिमतध्यानाद्वा

यो. द. स. पा.-३९

तो तुम्हें जो सरलता से मिल सके वही उपाय करो, वही साधन करो और किसी की निन्दा मत करो। अमुक नाम जपता है, वह ठीक नहीं, मेरा ठीक है। यह बात बढ़िया नहीं। इस दृष्टि को त्यागकर अपना साधन करो। हमारा लक्ष्य हो कि चित्त को परमात्मा तक पहुंचाना है। उसके लिए कोई साधन चाहिए।

तो पहला साधन पकड़ा 'ॐ'। यानी कोई नाम होना चाहिए—चाहे ओम् हो या राम हो या कृष्ण हो, वाहे गुरु हो, कबीर हो। सभी भगवान् तक पहुंचाने का सामर्थ्य रखते हैं। तुम्हें जो नाम रुचता है, जिस नाम में परिश्रम किया है, उसी को पकड़ो। जैसे परसों कहा था कि वाल्मीकि 'मरा-मरा' करके सिद्ध हो गया। तो 'मरा' कोई नाम है? परन्तु 'मरा' शब्द तो है न। और जितने शब्द हैं, सब भगवान् के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नाम हैं। भगवान् के नाम इसलिए कि जहाँ से शब्द निकलते हैं वहीं भगवान हैं। इसीलिए राम, हरि, ॐ कोई भी शब्द पकड़ सकते हो। तो पतंजलि ने कहा कि जिसका अभिमत जिसमें हो उसी को पकड़कर साधन करो। जिस भक्त ने जिस नाम से सिद्धि पायी उसी की महिमा गायी। सुनने वाले को लगता है कि वह पक्षपात कर रहा है, परन्तु वह पक्षपात नहीं है। बल्कि उस नाम में उसका अभिमत है। तो अच्छा बुरा कोई नाम नहीं है। जिसमें अपनी रुचि है उसी से कल्याण होगा। तो शब्दों के उच्चारण तीन तरह के होते हैं—

१— वैखरी
२— उपांशु
३— मानसो अथवा परा

जो बोलते हैं वह वैखरी है। जो दूर तक सुनाई पड़ती है और जिससे हमारा व्यवहार चलता है, वह वैखरी वाणी है।

उपांशु में हमारी आवाज कोई सुन नहीं सकता। कोई बोल रहा है ऐसा तो प्रतीत होता है किन्तु पास में बैठा हुआ भी कोई सुन नहीं सकता। जैसे हम किसी के कान में कुछ कहते हैं तो पास वाला नहीं सुन पाता है कि हमने क्या बात की। यह वैखरी से सूक्ष्म है। सिर्फ होंठ हिलाना मालूम पड़ता है किन्तु शब्द सुनायी नहीं पड़ता—इसको उपांशु कहते हैं। जो होंठ से बाहर प्रगट हुयी वह वैखरी, जो होंठ के अन्दर रहे वह उपांशु है।

इससे और अधिक सूक्ष्म है उसको 'परा' कहते हैं। इसमें होंठ भी नहीं हिलते। ऐसा मालूम पड़ता है कि चुप बैठा है। पर अन्दर-अन्दर जाप चल रहा है। उसको मानसिक जाप भी कहते हैं।

जो पश्यंति है उसका पता योगी लोगों को चलता है। वह मन से भी सूक्ष्म है। तो पहले वैखरी जाप का अभ्यास करें। उच्चारण करके उसमें मन को लगायें कि हम कैसा उच्चारण कर रहे हैं। जो शब्द कान तक पहुंचेगा, उसमें हमारा मन लग जाएगा। मन लग गया तो इसका अर्थ हुआ कि मन शब्द पर चढ़ गया। क्योंकि शब्द धनुष है और मन बाण है।

ॐ पूर्णमदः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मन की एकाग्रता–२

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ।।

मुण्डक– २/३

दूसरा है उपांशु–वह है जो ओठों के अन्दर रह जाये । होंठ हिलते दिखाई पड़ते हैं परन्तु क्या कहा जा रहा है, यह नहीं मालूम पड़ता ।

इससे सूक्ष्म है पश्यन्ति– इसमें ओठ भी नहीं हिलते न कण्ठ हिलता है । मालूम पड़ता है कि आदमी चुप बैठा है पर अन्दर ही अन्दर जप चलता रहता है । तो तीन तरह का जप हुआ । पहले ऊँ या किसी नाम का उच्चारण करें । उच्चारण करते समय शब्द को मन में लगायें । तो जब शब्द निकलेगा तो हमारे कान में पड़ेगा और हम उसे सुनेंगे तो मन उसमें लगेगा । शब्द में लगेगा यानी मन शब्द पर चढ़ेगा । यानी शब्द हो गया धनुष और मन हो गया बाण । जब वैखरी शब्द पर मन चढ़ गया तो अब उसको कम करो । अब उपांशु जप करो । वैखरी में शब्द साफ सुनाई पड़ता है । उपांशु में ध्यान से सुना जाता है । ध्यान का नाम मन है । चित्त कहो, ध्यान कहो, मन कहो, वृत्ति कहो एक ही बात है । वृत्ति भी वही है, ख्याल भी वही है । जब हमारा ख्याल उपांशु की ध्वनि पर रहेगा तो इसका अर्थ कि वैखरी से हट कर उपांशु पर आ गया । अब उपांशु तो रह गया मुख के अन्दर । इसका अर्थ हुआ कि ध्यान बाहर से हट कर मुख के अन्दर आ गया । ज्यों-ज्यों मन एकाग्र होता जायेगा, त्यों-त्यों सूक्ष्म होता जायेगा । जितना सूक्ष्म होगा उतना ही अन्दर प्रविष्ट करता जायेगा । जब वैखरी सुनते-सुनते कुछ समय बीत जाये तब उपांशु पर आये । कोई चाहे तो सीधे उपांशु पर मन लगा सकता है यह अधिकारी भेद से होता है । जिसने पूर्व जन्म में साधन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किया है उसे जल्द सफलता मिलती है। वह वैखरी को छोड़कर उपांशु पर सीधे मन लगा सकता है। यदि उपांशु पर नहीं ठहरे तो वैखरी पर लगाए। पर क्रम है—पहले स्थूल तब सूक्ष्म। और उपांशु पर टिक जाये तब गला, ओंठ, सब बन्द। इसको मनु जी ने मानसिक जाप कहा—

विधियज्ञाज्जप यज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः।
उपांशु स्याच्छतगुणः सहस्रोमानसः स्मृतः॥

मनुस्मृति- २/८५

उन्होंने कहा किसी भी मन्त्र के तीन तरह के उच्चारण हैं—

१— वाचिक
२— उपांशु
३— मानसिक

परा हमारी बुद्धि का विषय नहीं। पर योगदर्शनकार ने लिखा है कि वाणी का मूल रूप परा है। परा मन का विषय नहीं है। इसे हम तभी देख सकते हैं कि सारी इन्द्रियाँ अन्तर्मुख हो जाएँ और इतना सूक्ष्म हो जाएँ कि देह का अध्यास भी भूल जाएँ तब परा वाणी का अपरोक्ष होता है—

विधियज्ञाज्जप यज्ञो विशिष्टो दशाभिगुणैः।

विधि—क्रियायज्ञ— जिसमें हाथों, पैरों से कुछ करना पड़ता है। जैसे अग्नि जलाई, आहुति डाली आदि। विधि यज्ञ से जप यज्ञ दस गुणा श्रेष्ठ है अर्थात् १० घंटे हवन किया और १ घटे जप किया जाय तो वह बराबर है।

अब उपांशु जप में वैखरी से दस गुणा लाभ होता है और उपांशु मन है। तो दस गुणा वाचिक, वाचिक से भी दस गुणा उपांशु। जो सुनाई पड़े, वाचिक यज्ञ है और क्रिया हवन आदि से दस गुणा फलदायी है। यदि कोई उपांशु कर सकता हो तो वैखरी से दस गुणा श्रेष्ठ है और यदि कोई मानसिक जप करे तो फिर दस हजार गुणा उत्तम। इस तरह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तीन प्रकार का जप लिख कर उसका तारतम्य बतलाया कि किससे कौन श्रेष्ठ है।

मानसिक सबसे श्रेष्ठ है। इसी का नाम पश्यंति है। वैखरी, उपांशु और पश्यन्ति पर जब मन के अन्दर शब्दों का उच्चारण होने लगे। वहाँ तक पहुंचे। मन में जो कुछ क्रिया हो रही है उस पर ख्याल रखना। मानसिक जप तक हमारा मन पहुंच गया। फिर देखो– जहाँ से शब्द उत्पन्न होता है, वह जो मूल है वही परा वाक्य है, वही भगवद्रूप है। तो कहा कि शब्द के द्वारा– प्रणवो धनु ..... ।

कि प्रणवो धनु– प्रणव माने ओंकार को धनु बनाओ, अपने को, जो कि जीवात्मा की उपाधि है, उसे शब्द पर चढ़ाओ। जैसे धनुष पर वाण चढ़ाते हैं और ख्याल रखो कि जिधर से शब्द आ रहा है उधर वृत्ति जानी चाहिये और कहीं नहीं जाने पाये। जब हौले-हौले जप करते-करते वहाँ पर हमारा मन पहुंच जाये जो उस शब्द का मूल है, और वहाँ पहुंचते ही उसको भगवद् ज्योति, भगवद् प्राप्ति का अनुभव होने लगेगा। तो जाप करने से भगवद् दर्शन, मोक्ष और लौकिक सिद्धियाँ होती हैं। इसीलिए पतञ्जलि ने कहा—

स्वाध्यायादिष्ट देवता सम्प्रयोगाः।

यो०द० २-४४

जो जिस देवता का नाम जप करता है, उस देवता का उसको अपरोक्ष होता है उसका दर्शन होता है और प्रयोजन सिद्ध होता है। यूँ लौकिक सहायता और पारलौकिक सहायता दोनों सिद्ध हो जाती हैं। पाँच प्रकार की सिद्धि लिखी है—

जन्मौषधि मन्त्र तपः समाधिजाः सिद्धयः।

यो०द०- ४-१

मंत्र से भी सिद्धि होती है। एक कथा आती है जरतकारू की। जरतकारू–वो साँपों का मामा था। जन्मेजय ने सर्पों को मारने के वास्ते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एक यज्ञ कराया। जन्मेजय परीक्षित का पुत्र था। जब जन्मेजय ने सुना कि तक्षक ने मेरे बाप को मारा तो सर्पों पर उसे अत्यन्त क्रोध हो गया। उसने साँपों को खत्म करने की ठान ली। जन्मेजय ने घोषणा की जो आदमी एक सर्प पकड़ लाएगा उसे दस रुपया इनाम में देंगे। उसने तेल के उबलते हुए कड़ाह में सर्पों को डालकर मारना शुरु किया। अब साँपों को भय व्याप्त हो यया। वे छिप गये। एक आस्तिक नाम के ऋषि आए। उन्होंने राजा की बहुत स्तुति की। जन्मेजय बहुत खुश हो गया। तो उसने कहा ऋषि तुम वर माँगो। उसने कहा कि 'सर्प-यज्ञ' बन्द करो। तुम्हारे बाप को एक तक्षक ने काटा है, तो यह कोई न्याय नहीं है कि सभी सर्पों को खत्म कर दो। तुमने तो पूरे सर्पों को मारने की ठान लो। अतः यज्ञ बन्द करो। उसने सर्प-यज्ञ बन्द कर दिया। सर्प बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने आस्तिक से कहा कि तुमने हमारी जान बचाई है हम तुमसे बहुत खुश हैं। तुम वर माँगो। तो आस्तिक ने यही वर माँगा कि जहाँ मेरा नाम लिया जाये, वहाँ कोई सर्प नहीं टिकना चाहिए। उन्होंने कहा एवमस्तु। तो आस्तिक का नाम लेते ही सर्प भाग जाते हैं। कोई न भी भागे तो काटेगा नहीं, उपद्रव नहीं करेगा, भय नहीं करेगा। यह आस्तिक जरतकारू का पुत्र है।

जरतकारू ने नियम रखा था कि मैं शादी नहीं करूँगा। उधर वासुकी नाग की जो लड़की थी, उसका नाम भी जरतकारू था। उसने भी प्रतिज्ञा रखी थी मैं शादी नहीं करूँगी। और करूँगी तो उससे जिसका नाम, मेरा नाम एक हो। तो जरतकारू ऐसे किसी चक्कर में फँसे कि जरतकारू को वासुकी की लड़की से शादी करनी पड़ी। परन्तु शादी में उसने एक शर्त रखी। शर्त यही थी कि जिस दिन वह हमारे प्रतिकूल चलेगी उसी दिन उसको छोड़ दूँगा। वह प्रतिदिन संध्या करता था। एक दिन संध्या के समय वह सो रहा था। तो उसकी स्त्री ने देखा कि संध्या करने का समय हो गया, तो जगा दिया। जब वह जगा तो स्त्री से पूछा कि तुमने क्यों जगाया? तुमने प्रतिकूल कार्य किया है। इसीलिए तुझे छोड़कर चला जाऊँगा। उसने कहा कि हमने तुम्हारी धर्मरक्षा के लिए ऐसा किया। सोचा कि दिन समाप्त हो जाएगा तो कब संध्या करोगे इसलिए जगा दिया, इसमें मेरा क्या स्वार्थ है? उसने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कहा कि तू मुझे समझती क्या है ? मैं क्या कोई माँगने वाला ब्राह्मण हूं ? मेरी संध्या जब तक पूरी नहीं हो जाती तब तक सूरज को ताकत नहीं है कि सूरज चला जाये। मैं जब संध्या कर लूँगा तब सूरज अस्त होगा। मैं वह ब्राह्मण हूं। देखो वह अभिमान के साथ कह रहा है, यह मंत्रों का प्रभाव है। उसने इतना मंत्र का जाप किया है कि उसके प्रभाव से उसकी इच्छा के बिना सूर्य अस्त नहीं हो सकता।

सूरज की गति को मंत्रों की गति से रोका जा सकता है। तो मंत्र से मनुष्य देवता तक और आत्म-ज्ञान तक पहुंच सकता है। मंत्र से चित्त की एकाग्रता आती है। इसीलिए कहा है कि मंत्र का जो मूल है, मूल का अर्थ है वह शब्द जहाँ से आ रहा है, वहाँ तक हमें पहुंचना है। मान लो अभ्यास अधिक है और आयु है कम। बीच में ही शरीर छूट गया तो आगे जब जन्म होगा तो उस साधन में वह फिर लगेगा और जहाँ तक साधन कर चुका है, वहाँ से आगे करेगा। तो यह ऐसा मार्ग है कि इसमें किए का नाश नहीं है, ऐसा शास्त्रों में लिखा है। यदि कोई आदमी पोस्टकार्ड लिख रहा है और लिखते-लिखते सो गया। तो जागने पर नया पुनः नहीं लिखना पड़ेगा। जितना लिख चुका है, उससे आगे लिखना पड़ेगा। कोई आदमी रास्ते में चल रहा है। आधा रास्ता तय कर लिया और सो गया तो प्रातःकाल उठकर उसे आधा जो शेष है, उतना ही पूरा करना पड़ेगा। ऐसा नहीं कि पूरा रास्ता फिर से चलना पड़ेगा। इसीलिए हमारे ऋषियों ने ऐसा मान लिया है कि अगले जन्म में हमने जहाँ तक कर्म कर लिए हैं, दूसरे जन्म में उसे वहाँ से आगे हो करना पड़ता है। यदि कर्म करने वाला बीच में ही मर जाए तो ऐसा नहीं समझना चाहिए कि उसका साधन व्यर्थ हो गया। बल्कि जो साधन पहले कर चुका है, उससे आगे दूसरे जन्म में करना होगा। कुछ काल में उसकी सिद्धि उसे हो जाती है। तो ये नाम मंत्र शब्द के ऊपर है कि पहले हम वाचिक का अभ्यास करें, फिर उपांशु का अभ्यास करें और फिर मानसिक जाप का अभ्यास करें। जाप इतना करें, इतना करें कि मनुष्य शब्दमय हो जाये। इसकी अवधि है कि शरीर की सुध नहीं रहे। तब समझो कि ठीक से जपा गया। तब उसको भगवद् प्राप्ति हो जाती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जब तक देह का अथवा बाहर के पदार्थों का भान है तब तक वह ठीक नहीं है। अभ्यास ऐसा करना चाहिए कि मन शब्द के अन्दर डूब जाये, लिपट जाये।

वाल्मीकि की ऐसी कथा आती है कि वाल्मीकि को ऋषि मंत्र देकर चले गए और बारह साल के बाद आये तो देखा कि उसका शरीर वहाँ नजर ही नहीं आया शरीर को दीमक खा गए। हड्डियाँ बिखर गईं। परन्तु राम-राम की ध्वनि आ रही है। हड्डियाँ बिखर गईं, मांस कीड़े-मकोड़े खा गए हैं, कुछ नहीं रहा। परन्तु नाम की ध्वनि आ रही है। ऋषियों ने उसे ध्वनि से पकड़ा।

वह असली सुख है। वह परमात्मा से मिल गए हैं क्योंकि परमात्मा सुखरूप है। इसलिए जो वस्तु सुखरूप है, उसी से सुख मिल सकता है। दुःखरूप पदार्थ से सुख की आशा रखना अज्ञान है और सुखरूप से सुख की आशा नहीं रखना यह भी अज्ञान है, इसीलिए कहते हैं—

अर्थमनर्थं भावय नित्यं, नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम्।
पुत्रादपि धनभाजां भीतिः, सर्वत्रैषा कथिता नीतिः॥

मोहमुद्गर-२

तो निदिध्यासन का अर्थ हुआ कि—

ताभ्याम् निर्विचिकित्सेअर्थं उच्चयेत्।

निदिध्यासन और कुछ नहीं। श्रवण और मनन से जो एक बात सिद्ध हो जाती है, उसमें मन लगाना।

तो क्या सिद्ध हुई कि यह सब परमात्मा का रूप है। इसके अतिरिक्त कुछ है नहीं दुनियाँ। यह बात जब निश्चित हो गई, उसी में अपने मन को स्थिर रखना। अर्थात् वाणी तक ही यह बात नहीं रहे। यह हमारे मन में आना चाहिए। वाणी से हम कह देते कि सब भगवानमय है। परन्तु जब समय आता है तो भेद बुद्धि हो जाती है। इसलिए कहा कि जब मन इस बात को मानने लगे तो निदिध्यासन का फल हो जाता है। शंकराचार्य इस बात को एक युक्ति से समझाते हैं—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देखो जितने पदार्थ हैं, उनमें पाँच भाग हैं। पाँचों में तीन परमात्मा का है, दो माया का ऐसे माया और चेतन से मिलकर संसार बना है। जैसे आभूषण क्या है? सुवर्ण है। और एक सुनार की कल्पना से नानारूप में बनते है। सुनार की कल्पना और सोना मिलकर आभूषण बनते हैं। अगर सुनार की कल्पना हटा दें तो फिर सोना ही रह जायेगा। आभूषण नहीं बन पायेगा। यदि इसमें से सोना निकाल लें तो आभूषण आ नहीं सकते।

जो कुछ भी पदार्थ नजर आ रहा है वह पाँच प्रकार का है। तो जो कुछ भी पदार्थ नजर आए उसमें पाँच भाग हैं।

वस्तु है, प्रतीत होना, सुन्दरता, यह परमात्मा के अन्दर भी है। क्योंकि अस्ति है तो परमात्मा है। वह प्रतीत भी होता है और सुन्दर भी है। तो अस्ति, भाति और प्रियता ये तो ब्रह्मरूपमय हैं।

नाम और रूप यह माया का अंश है। रूप कल्पित है, मिथ्या है इसलिए माया है।

सत्, चित्त और आनन्दरूप जो परमात्मा है, वह तीन रूपों में पदार्थों में चमक रहा है। इसको इस तरह समझें– स्वर्ण पाँच तोला लो, उसे गलाकर हाथी बना लिया। फिर तौला तो पाँच तोला ही रहा। तो पहले भी पाँच तोला और हाथी बनने पर भी पाँच तोला। तो हाथी का भार क्या हुआ? कहना पड़ेगा कि हाथी का वजन कुछ नहीं। तो भला बिना वजन का भी हाथी होता है। तो कहने का अर्थ यह कि हाथी वहाँ है नहीं। वह तो झूठा प्रतीति मात्र हो रहा है। दरअसल वह सोना ही है। अगर हाथी होता तो कुछ तो भार बढ़ना ही था। पाँच तोला सोना निकाल लें तो बोलो हाथी क्या रहा?

तो जो रूप दिखाई दे रहा है वह माया है। हाथी के रूप में हाथ पैर सब दिखाई दे रहा है। वह जो आकृति हाथी का है, वह कल्पित है। तो नामरूप का कोई वजन नहीं। वजन का अर्थ है कि उसमें कोई सच्चाई नहीं यानी नाम और रूप दोनों माया हैं, कल्पित हैं। वास्तविक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं हैं। कहते हैं न कि उसने बड़ी बजनदार बात कही। तो वजनदार बात– क्या इसमें कोई भार है ? या इसके बात में कोई वजन है नहीं। तो वजन का अर्थ यहाँ भार नहीं सच्चाई है। उसकी बातों में कोई वजन नहीं, यानी सच्चाई नहीं। उसने केवल गप्पें मार दी। भार का नाम सत्यता है। सोने में जो हाथी आ गया है, उसका वजन नहीं यानी सत्यता नहीं।

तो जितना भी नामरूप है उसमें कोई वजन नहीं यानी सत्यता नहीं। यह जो हाथी है उसे हिन्दी वाले कुछ कहेंगे, अंग्रेजी वाले कुछ कहेंगे और फारसी वाले कुछ और कहेंगे। यानी नाम और रूप बदलता रहता है परन्तु सोना नहीं बदलता है किन्तु सोने का आकार बदल जाने से उसका रूप बदलता रहता है। तो इसी तरह से नामरूप मिथ्या इसलिए है कि बदल जाता है। किन्तु जो 'अस्ति भाति' है वह बदलती नहीं है। जैसे सोने की डली से कंगन बना लिया तो सोने की डली तो मिट गई न, अब कंगन आ गया। परन्तु अस्ति भाति नहीं हुई। हम कहेंगे कि कंगन है। पहले सोना था अब कंगन है। सोना भी सुन्दर था, कंगन भी सुन्दर है। तो अस्ति, भाति, प्रियता ये तीनों गुण अब भी विद्यमान हैं। तो देखो–भान भी नहीं गया, सत्यता भी नहीं गई, सुन्दरता भी नहीं गई। परन्तु बदला क्या ? उसका नाम और रूप। तो जो चीज बदलती है, उसका नाम माया है, जो नहीं बदले वह सत्य-परमात्मा है—

अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपंचकम्।
आद्य भयं ब्रह्म रूपं जगद्रूपं ततो द्वयम्॥

–महासरस्वत्युपनिषद्

आरम्भ के जो तीन रूप हैं वह तो ब्रह्म के रूप हैं। क्योंकि बदलते नहीं। परन्तु अन्तिम जो दो रूप हैं वह माया का है। अतः माया के रूप से जो प्रीति करता है वह तो धोखा खाता है। उसके अस्ति भाति से जो प्रीति करेगा उसे धोखा नहीं होगा। इसीलिए कहा गया कि इसमें जो अस्ति भाति और प्रियता, परमात्मा का रूप है उसी से प्रेम करो। उसमें धोखा नहीं है। इसीलिए कहा गया कि—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सर्वंम्खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत ।
छान्दोग्य- ३-१४-१

तो सब ब्रह्म है। चाहे किसी भी रूप नाम में क्यों न हो, सब ब्रह्म है। जैसे आभूषण कहो, कंगन कहो या उसको जो भी रूप दे डालो। परन्तु उसमें सोना अवश्य रहेगा। अगर अलग नामरूप दृष्टि रखोगे तो वह छोटी दृष्टि है, हल्की दृष्टि है। अतः व्यापक दृष्टि बनाने की आवश्यकता है। सम्पूर्ण सृष्टि को ब्रह्म का रूप जानो। गीता में भगवान् ने कहा है—

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ।
गी०- ७-१९

यानी सबमें परमात्मा को देखे वही महात्मा है। महात्मा वही है जो सबको वासुदेव जाने–ऐसा महात्मा दुर्लभ है। उसकी पहचान यही है कि उसे किसी से नफरत नहीं होती, वह सभी से प्रेम करता है। वह जानता है कि सब तो भगवान् का रूप हैं, किससे द्वेष करें। जैसे—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
गीता- ७-१९

बहुत जन्मों के बाद साधन करते-करते ऐसा महात्मा मुझे प्राप्त होता है। एक ही जन्म में बात नहीं बनती। पिछले जन्मों के साधन भी इस जन्म में काम आते हैं। क्योंकि पिछले जन्म में जहाँ पर साधन को छोड़ रखा है, अब इस जन्म में वहाँ से आगे ही साधन करना पड़ता है। बहुत जन्मों के अन्त में तब ऐसा ज्ञान प्राप्त होता है। उसी को भगवान् की प्राप्ति होती है—

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ।।
ईशावास्य- ६/६

जिसकी दृष्टि ऐसी बन गई है कि सम्पूर्ण प्राणियों में मेरी ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आत्मा है और सबके शरीर में जो आत्मा है वह हमारी ही आत्मा है। तो अपने में सब भूतों की आत्मा को और सबमें अपनी आत्मा को देखता है। तो वह है ज्ञानवान् और उसका परिणाम क्या निकलता है कि वह किसी को कष्ट नहीं देता। वह सबका हित चाहता है—

किसी हिन्दी के कवि ने लिखा है—

नारायण इस जगत में सबसे मिलिए धाय।
ना जाने किस रूप में नारायण मिल जाय॥

किसी शकल से, रूप से नफरत मत करो। हो सकता है जिससे नफरत करते हो उसी में भगवान् मिल जाये—

यो मां पश्यति सर्वत्र, सर्वं च मयि पश्यति।

गीता- ६-३०

ऐसी बुद्धि हो जाए कि परमात्मा सर्वत्र है। मेरे में जो है वही दूसरे में है। बस, जब यह दृष्टि हो गई तो उसका बेड़ा पार है।

पुराणों में एक कथा आती है कि एक लड़की थी शकुन्तला। तो शकुन्तला की उत्पत्ति विश्वामित्र और मेनका से हुई। जब ब्रह्मर्षि होने के लिए विश्वामित्र तपस्या करने लगे तो उनकी तपस्या को खण्डित करने के लिए इन्द्र ने मेनका को भेजा। तो अपने आपको नहीं सम्भाल सका और उसके तथा मेनका के सम्बन्ध से शकुन्तला हुई। विश्वामित्र को भी हैरानी हुई। मेनका उसे छोड़कर स्वर्ग चली गई। परन्तु जिसकी भगवान् रक्षा करता है, उसे कौन मार सकता है। हमारे आश्रम में एक गौ बियाने वाली थी। प्रातःकाल सब जंगल में जाती थीं और शाम को आती थीं। उसने जंगल में बच्चा दे दिया। अब सब गौवें जब आने लगीं शाम को तो उसका चित्त नहीं लगा। वह भी बछड़े को छोड़कर आ गई। अब बच्चा अकेला रह गया। वह बच्चे को छोड़ कर आ गई। आने पर पता चला कि इसने बच्चा दिया है। फिर रात आ गई। रात में अब बच्चे का पता चलना मुश्किल हुआ। पशु हैं, न जाने कहाँ-कहाँ भटकी होंगी। निश्चय हुआ कि प्रातःकाल देखेंगे। प्रातःकाल वह जिन्दा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रहता है कि नहीं। शेर को छोड़ो, लोमड़ी ही खा जाये। कितने खा जायें। छोटा बच्चा जो अभी पैदा हुआ है वह जिंदा रहेगा, इस पर भरोसा नहीं। पर रात हो गई कुछ किया भी नहीं जा सकता। अंत में किस्मत पर छोड़ा गया। प्रातःकाल हुआ नौकर गौवों से साथ गया जो बच्चा वाली गौ थी वह बच्चे के पास दौड़कर गई। बच्चा पत्तों पर बैठा था। गौ को देखकर बोला। गौ भी उसे चाटी प्रेम किया। फिर नौकर उसे कंधे पर उठा लाया। अब देखो सारी रात वह जंगल में पड़ा रहा तो किसने रक्षा की। जंगल में उसको खाने वाले कितने ? उसका कुछ भी बाल बाँका नहीं हो सका। एक कवि ने लिखा है—

राखनहारा साईयाँ मार सके ना कोय।
बाल न बाँका कर सके जो जग बैरी होय॥

एक दो आदमी की बात तो छोड़ो, अगर सारा संसार भी बैरी हो जाये तो उसका कुछ नहीं कर सकता। क्योंकि भगवान् जो रक्षक है। भगवान् यदि रक्षा करे तो कोई मार नहीं सकता और भगवान् जिसे मारना चाहे, उसे कोई बचा भी नहीं सकता। कि जंगल में असहाय आदमी भी जीवित रहता है और घर में हजारों लोगों के बीच में भी मर जाता है।

तो सिद्ध हुआ कि जिसकी बुद्धि ब्रह्ममय हो गई वही परमात्मा को देखता है। अब बच्ची पैदा हुई जंगल में, जहाँ न माँ-बाप। अचानक एक महर्षि वहाँ पहुंचे। देखे कि एक बच्ची के पास कौवे पक्षी बोल रहे हैं। उन्होंने उठाकर कण्व ऋषि को दे दिया। कण्व ने उसे अपनी बहन के पास पालने को दे दिया। उन्होंने उसका नाम रख दिया शकुन्तला। शकुन्त अर्थात पक्षी और ल का अर्थ है लालन-पालन करना। यानि इतने देर तक उसका लालन-पालन पक्षियों ने किया। कोई आदमी था नहीं वहाँ। इसीलिए वह शकुन्तला कहलाई। जब बड़ी हुई तो उसकी शादी राजा दुष्यन्त से हुई। तो जब राजा के घर जाने लगी तो माँ-बाप लड़की को सजाकर भेजते हैं न। उसी तरह उसकी सहेलियों ने फूलों के आभूषण बनाए और कण्व के यहाँ गए नमस्कार करने। माँ जो बनी थी उसने कहा कि इसे आशीर्वाद दो कि पति के घर सुखी रहे। ऋषि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देख कर दुःखी हुए। उनकी आँखों में जल भर आया। बोले कि गरीबों के घर आ गई इसलिए न, इसे कोई गहना, कपड़ा नहीं मिला। तो ऋषि ने कहा कि शकुन्तला ने वृक्ष-लताओं को बहुत सेवा की है। तुम सब इसे उनके पास ले जाओ और बताओ कि तुमसे प्रेम करने वाली शकुन्तला आज अपने पति के घर जा रही है। तुम लोग इसे आशीर्वाद दो, आज्ञा दो जाने का। सखियाँ लेकर गईं और वृक्षों से वैसा कहा—

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।

शाकुन्तल- ४-८

जो कभी आपको जल दिए बिना कभी पानी भी नहीं पीती थी। जब नए पत्ते-फूल वृक्षों में आते थे तो मिठाई बाँटती थी। जैसे पुत्र उत्पत्ति की प्रसन्नता होती। जब फूलों की कोई पत्तियाँ या टहनी तोड़ लेता तो उसे उतना ही दुःख होता था जैसे किसी ने उसकी उंगली तोड़ डाली है और दो-दो दिन तक रोटी नहीं खाती थी। जब तक उसका घाव भर नहीं जाता था, वह चैन नहीं लेती।

वही शकुन्तला पति के घर जा रही है। उसे आशीर्वाद दो और अनुज्ञा दो। तो लिखा है कि किसी वृक्ष से तो साड़ियाँ गिरने लगीं। किसी से आभूषण टपकने लगे, किसी से शृंगार के अन्य प्रसाधन। मतलब कहने का कि कोई धनी भी नहीं दे सकता। फिर कण्व के पास लाईं और बोलीं कि वृक्षों ने दिया। फिर ठीक से शकुन्तला का शृंगार किया। तो हम वृक्षों को जड़ मानते हैं न। परन्तु उनमें भी चेतनता है। वे चल-फिर नहीं सकते। हाथ-पैर नहीं हैं उनमें, परन्तु उनमें भी संवेदनशील शक्ति है। चेतनता है। जैसे हमको अन्न जल मिले तो हरे-भरे रहते हैं। वैसे ही उनको भी पानी-खाद मिलता है वो हरे-भरे रहते हैं। तो और कोई अन्तर नहीं है। बनावट में अन्तर है। पशु-पक्षी शरीर में भी क्या है? सिर्फ बनावट का अन्तर है।

तो जिसकी ऐसी दृष्टि बन जाए कि परमात्मा सबमें है तो परमात्मा उसके सामने खड़ा रहता है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यो मां पश्यति सर्वत्र, सर्वम् च मयि पश्यति ।

तो जिसकी दृष्टि सचमुच ऐसी बन गई है तो उसको भगवद् ज्योति दिखाई देती है। उसके लिए भगवान् दूर नहीं है। तो जो सभी प्राणियों में भगवान् का दर्शन करता है वही महात्मा है, वही दुर्लभ है। इसका सबसे बड़ा साधन है कि रूपनाम मायिक समझो। पर इसमें जो चेतन है उसे सत्य मानो। जैसे सोने का हाथी है। अब उस पर हथौड़ा मार दिया तो हाथी रह नहीं सकता पर सोना तो रहेगा ही। क्योंकि हाथी झूठा है, कल्पित है। हथौड़े की चोट वह सह नहीं सकता। क्योंकि झूठा है न।

उपनिषद् में एक कथा आती है– कहीं चोरी हुई। उसमें दो आदमी पकड़े गए। एक ने तो सचमुच चोरी की थी दूसरा चोर नहीं था। पुलिस वाले ने पूछा–तुमने चोरी की है? उसने कहा–नहीं। पुलिसवाले ने कहा–की है। अब कोई गवाह भी नहीं था। तो तय हुआ कि चलो दिव्य परीक्षा करते हैं। आफोसर ने अपने आदमी से कहा कि लोहे का टुकड़ा लाल गरम करके लाओ। अफसर बोला कि इसे हाथ से पकड़ो। तुमने अगर चोरी नहीं की है तो अग्नि तुम्हारा हाथ नहीं जलाएगी। उसने गोला पकड़ लिया और पाँच मिनट पकड़े रहा। उसका हाथ बिल्कुल नहीं जला। अब पुलिसवाले ने पकड़ने वाले को सराहा और उसे इनाम देकर छोड़ दिया। अब दूसरे की बारी आयी। जब उसने अग्नि का गोला पकड़ा तो वह जल गया। तो कारण क्या है कि झूठे को जलाया और साँचे को नहीं जलाया? तो सच्चा भारी है न, ठोस है, इसलिए नहीं जलाया। अग्नि उसे जला नहीं सकती है। जैसे किसी लकड़ी के ऊपर या पत्थर पर रख कर अग्नि पकड़ो तो हाथ नहीं जलेगा। हाथ तो तब जलेगा जब अग्नि हाथ पर रख लेंगे। जब अग्नि से सीधा सम्पर्क होगा तब जलेगा। जो आदमी सच्चा है, उसके और अग्नि के बीच में सच्चाई है। तो अग्नि तो सत्य पर टिक गई। इसलिए हाथ को नहीं जला सकी। जो झूठ को पकड़कर चाहता है कि हाथ न जले। वह भ्रम में है। क्योंकि झूठ तो हलका होता है। वह कागज की तरह होता है। शास्त्र में कहा गया है कि झूठ लंगड़ा है और सत्य के चार पैर हैं। चार पैर का बैल है उसे कोई धक्का देकर भी नहीं गिरा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सकता और लंगड़ा तो अपने आप गिर पड़े। उसको स्थिर रखने का बल नहीं रहता। इसलिए लंगड़े को सहारे की जरूरत पड़ती है। वह लकड़ी अथवा दीवार का सहारा लेता है। सत्य है चार पैर वाला, उसे किसी की सहायता की अपेक्षा नहीं होती है।

एक दृष्टान्त देते हैं। धर्म बैलरूप है। बैलरूप का अर्थ है कि उसके चार पैर हैं। चार पैर होने से धर्म कभी गिरे नहीं और झूठ तुरन्त गिर जाता है। लंगड़े को खड़ा करने के लिए कोई दूसरा चाहिए। इसलिए झूठ को खड़ा करने के लिए किसी और की जरूरत होती है। एक झूठ को खड़ा करने के लिये हजार झूठ की जरूरत पड़ती है। मतलब कि झूठों की लाइन लग जाएगी। और किसी ने धक्का दे दिया तो सारे झूठ हरिओमतत्सत्। जब पोल खुलने लगे तो सारे झूठ साफ। इसलिये कहा कि झूठ बहुत कमजोर है, कागज से भी पतला। जब झूठ की बारी आई तो उसने कहा कि मैंने तो नहीं लिया है। उसके हाथ पर झूठ का कागज रखा। कागज पर अग्नि। अब अग्नि ने कागज को जलाया, फिर हाथ को जलाया। अब कागज को नाव में बैठकर कोई नदी पार करना चाहे तो क्या होगा? सत्य से जो अपनी रक्षा करना चाहता है उसकी रक्षा होती है। वह लकड़ी की पक्की नाव बनाकर पार हो जाता है और दूसरे को भी पार कर देता है। इसीलिए कहा कि—

सत्यं ब्रह्म खलु नित्यम्

जो कुछ है वह भगवान् के सिवाय कुछ नहीं। और भगवान् से खाली भी कुछ नहीं। जो भेद बुद्धि वाला है। वह भगवान् से अलग दृष्टि रखता है। इसीलिए मृत्यु उसे खा जाती है। नचिकेता ने कहा—

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति॥
कठ-उपनिषद् वल्ली- १-११

मृत्यु उसी को मारती है जो भेद धर्मी है। जिस मनुष्य की यह दृष्टि बन जाए तो उसकी पहचान क्या है कि—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ॐ

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणं मनुष्यः क्षीण कल्मषाः ।
छिन्नद्वैधा यतात्मनः सर्वभूतहिते रताः ।

गीता- ६/२५

यानी सभी का हितैषी बन जाए। किसी का अहित सोचे ही नहीं और वह पुरुष भगवान् को सबसे प्रिय है। जो भेदवादी है वह भगवान् को प्रिय नहीं है। देखो वृक्ष क्या है ? जड़ है। परन्तु उसे भी जब हम चेतन भगवान् का रूप मानेंगे तो वो भी हमारी सहायता करते हैं। इसीलिये कहते हैं—

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ।

गीता- ७-१९

उन्होंने कहा कि किसी भी पदार्थ का कामनारूप झूठ है, कल्पित है। जब हथौड़ा मारा तो हाथी चला गया, सोना कहीं नहीं गया। झूठे आदमी ने कहाँ तक सहन करना ? जब हथौड़ा लगा तो झूठा हाथी चला गया और सच्चा सोना बचा रहा। इसी तरह जब सोने के हाथी को अग्नि में फेंक दिया तो झूठा हाथी तो गल गया परन्तु सोना ज्यों का त्यों बना रहा।

तो अस्ति, भाति और प्रियता यहाँ सत्यरूप है और नामरूप तो माया है, जो भाग गया। जब कोई वस्तु आ जाय सामने तो देखो इसका स्वरूप ही दूसरा है, इसमें अपना ही रूप छिपा है। यदि इसको कटु वचन कहें तो अपने को ही कह रहा हूं। मनन से धीरे-धीरे बुद्धि शान्त हो जाती है फिर वह किसी को बुराई नहीं करता। परिणाम यह होता है कि वह सबका मित्र हो जाता है। सब उसके मित्र हो जाते हैं। ऐसी वेद में एक प्रार्थना है—

हे भगवान् हमको ऐसी बुद्धि और विचार दो कि हम सबको मित्रवत् देखें। उसका परिणाम क्या होगा कि सभी भूत भी अपने मित्र दिखेंगे। यानी हमारे भाव जो हैं वो भी दूसरे हो जाते हैं। जैसे जल में पत्थर मारो, तो तरंगें वहाँ से उठकर सारे तालाब में फैल जाती हैं। इसी प्रकार हमारे मन में दुर्भावना उठती है तो वह जिसके प्रति उठती है वहाँ तक उसकी तरंगें फैल जाती हैं और वह व्यक्ति भी हमसे दुर्भावना करने लगता है। यहाँ से बढ़ते-बढ़ते दुर्भावना सारे ब्रह्माण्ड में फैल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाती है। कोई दुर्भावना या सद्भावना यदि हमारे हृदय से पैदा होती है, पूरे ब्रह्माण्ड तक उसकी लहर फैल जाती है। नजदीक वालों के पास उसका अधिक असर होता है।

एक कोई बुढ़िया सिर पर गठरी लेकर जा रही थी, उसमें कुछ जेवर, पैसे थे। धूप थी, थक गई। इतने में घोड़े पर चढ़कर एक आदमी आया। उसने कहा कि बेटा तू गठरी ले ले। मैं थक गई हूं, आगे ले लूँगी। उसने कहा कि तेरा-मेरा साथ क्या है? तू है पैदल और मैं हूं घोड़े पर। मैं तुमको कहाँ ढूँढता चलूँगा? यह मेरे वश का काम नहीं है। ऐसा कहकर निकल गया। जब आगे निकल गया तो सोचा कि मैं कैसा मूर्ख हूं। गठरी में कुछ न कुछ होगा। वह माई है। कुछ सोना होगा, कपड़ा होगा, गहना होगा। हमने गलती की। ले लेना चाहिए था। घोड़े पर लेकर निकल जाते। वह कहाँ तक हमारा पीछा करती। उधर वह माई सोचने लगी देखो, मैं कैसी मूर्ख हूं, उसको गठरी देने लगी थी। न जान न पहचान। अगर लेकर चला जाय तो मैं क्या कर लूँगी। उसने घोड़ा खड़ा कर लिया। कहा कि लाओ गठरी ले लेते हैं। जब पास पहुंची तो कहा कि ला दे माई गठरी। बहुत थक गई होगी, अगले पुल पर ले लेना। वो कहने लगी जिसने तेरे को अकल दिया, उसने मेरे को भी दिया, मेरे को भी अकल आ गयी। बहुत जोर लगाया पर वह बोलती कि मैं नहीं मानती।

जब तक वह सच्चाई पर था तो वह देना चाहती थी किन्तु जब वह झुठाई पर आ गया तो उसके मन में भी बात आ गई। तो परमात्मा सर्वत्र होने के कारण से हमारी हित मित्र की भावना को देखता है। इसलिए कहा कि सब रूप भगवान् का है– भक्त उसे भगवान् कहता है। ज्ञानी उसे ज्ञान या ब्रह्म कहता है। तो इसमें अन्तर नहीं है दोनों एक ही बात है। इसीलिए जब ऐसी दृष्टि रखेंगे कि नामरूप मिथ्या है और अस्ति, भाति, प्रियता वही सत्य है। पर यह विचारवान् के लिए है। किन्तु जो इतना विचार नहीं कर सकता उसके लिए दूसरे तरीके भी हैं। तो जैसा अधिकारी वैसे साधन भी हैं। इस पर कल विचार करेंगे।

ॐ पूर्णमदः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मैं कौन हूँ ?

योगदर्शन में लिखा है कि—

स्वाध्यायादिष्टि देवता सं प्रयोगः

गो०- २-४४

स्वाध्याय में दोनों बातें हैं। चाहे तो पाठ करे या जाप करे। उसका फल लिखा है– इस पुस्तक में जिस देवता का वर्णन है उसकी कृपा उस पर हो जाती है। कृपा ही नहीं बल्कि भाष्य में लिखा है—

स्वाध्याय शीलस्य पुरुषस्य देवाः ऋषयः सिद्धाः
दर्शनम् गच्छन्ति कार्ययाय वर्तन्ते।

कि देवता उसके सामने प्रत्यक्ष भो होते हैं। उसके सामने कोई विघ्न पड़ जाय तो सहायता भो करते हैं। आवश्यक पदार्थ उसको थोड़े परिश्रम में मिल जाता है। उसको समय की बचत होती है जिसमें वह साधन कर सकता है। अगर देवता और सिद्ध की सहायता नहीं है तो हमको अपने पुरुषार्थ से वह कार्य करना पड़ता है। फिर मोक्ष साधनों में पूरा समय नहीं लगा सकते।

एक ब्रह्मचारी की कथा आती है कि गुरु से उसने १४ साल तक विद्या पढ़ी। गुरु की सेवा की। गुरु ने १४ विद्या उसको सिखलायीं। जब वो पढ़ चुका गुरु ने कहा कि अब तुम घर जाओ। उसने कहा कि आप कुछ गुरुदक्षिणा माँग लो। गुरु ने कहा कि तुमने बहुत सेवा की है यही दक्षिणा है। तुम जाओ। वह हठ करने लगा कि कुछ न कुछ माँग लो। उन्होंने कहा कि हमको तो कोई जरूरत नहीं है। गुरुदेवी से पूछ लो उनको कोई जरूरत हो तो वे कहेंगी। वह गुरुपत्नी से बोला कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आप कुछ दक्षिणा माँग लें। उस समय रानी के पास दो कुण्डल थे जिनसे सवा मन सोना निकलता था तथा उसके कारण कोई उपद्रव नहीं होता था। तुम देना ही चाहते हो तो मुझको रानी का कुण्डल ला दो। एक हफ्ते के अन्दर लाना नहीं तो मैं शाप दूँगी तुम्हारी विद्या निरर्थक हो जाएगी। तो जाकर गुरु जो को सुनाया तो वे बोले हमारी बात नहीं मानी तो अब दो लाकर। तो वह चला गया। राजा के पास गया। राजा ने पूछा क्या बात है तो सारी बात सुना दी कि गुरुदक्षिणा में रानी के कुंडल देने हैं। राजा ने कहा कोई बात नहीं, तुम महल में जाओ और रानी से कुंडल माँग लो। वह गया और रानी से अपनी बात सुनाई। उन्होंने अपने कुंडल दे दिए और समझा दिया कि सावधान रहना। इन कुंडलों को वासुको नाग बहुत चाहता है। ऐसा न हो कि धोखे से तुम से ले जाए। तो यह ध्यान रखना कि बीच में किसी को देना नहीं। सीधे जाकर गुरुपत्नी को देना। चला लेकर। उधर वासुकी को पता चला। वह वृद्ध ब्राह्मण का वेश धारण करके उसके पास आ गया और बातचीत करते साथ हो लिया। चलो मुझको भी उधर जाना है। बहुत अच्छा। कुछ दूर जाकर ब्रह्मचारी बोला कि मुझे लघुशंका जाना है। मेरी गठरी पकड़ लो। वह तो यह चाहता ही था। बोला, कोई बात नहीं जाओ, मैं सम्भाल कर रखूँगा। तो वह चला गया। वासुकी ने साँप रूप धारण किया, कुंडल मुँह में दबाया और बिल में घुस गया। अब बिल में घुसने लगा तो वह आया। ब्राह्मण को ढूँढने लगा। वह कहीं नहीं है, इतनी देर में कहाँ चला गया। तो देखता क्या है कि वृक्ष के जड़ में एक साँप जा रहा है। वह समझ गया कि यह वासुकी है और कुंडल ले गया। यह तो धोखा कर गया, बड़ा दुःखी हुआ। एक डंडे से साँप का बिल खोदने लगा। वह तो वासुकी था, बिल से होकर पाताल पहुंच गया। वह खोदता रहा, सारा दिन लग गया, किन्तु पाताल तो यह जा नहीं सकता था। इसके परिश्रम को देखकर इन्द्र को दया आ गई। यह तो मारा जाएगा, इसकी १४ साल की विद्या निरर्थक हो जाएगी। गुरुपत्नी इसको शाप देगी। तो इसकी कुछ सहायता करनी चाहिए। तो वे एक बैल पर चढ़कर आ गए। पूछा कि ब्रह्मचारी तुम क्या कर रहे हो ? हमको फुर्सत नहीं है किसी से बातचीत करें हम तो अपने काम में लगे हैं। बोले हम तुम्हारी मदद करेंगे। तब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उसने सारी कहानी बतला दी। हम उसको खोदकर निकाल रहे हैं। बेवकूफ कहीं का। वासुकी तो पहुंचा पाताल में, अब खोदने से मिलेगा? चाहे कुछ हो जाए हम मर जायेंगे और क्या? आश्रम तो हम जाते नहीं क्योंकि वे तो जाते ही कुंडल माँगेंगी। उन्होंने कहा कि तुम यह डंडा लो, वह था वज्र। बोले कि बैल के गोबर को तुम अपने सारे शरीर पर लेप लो। जब पाताल में जाओगे तो नाग काटने दौड़ेंगे तो अमृत के प्रभाव से तुमको काट नहीं पायेंगे। यह वज्र है, इससे खोदो। तुरन्त पाताल पहुंच जाओगे। उसने खोदना शुरु किया और तुरन्त पाताल पहुंच गया। अब साँप दौड़े उसे काटने तो अमृत के प्रभाव से कुछ असर नहीं हुआ। आखिर को इन्द्र ने एक शंख दिया था, कहा कि यह बजा देना, जितने भी नाग हैं उनकी हवा बंद हो जाएगी। उसने शंख बजाया तो सभी जहाँ के तहाँ पड़ गए। सबके पेट फूलने लगे और गला बन्द होने लगा। सभी दौड़े वासुकी के पास। सारी कहानी सुनाई। वासुकी समझ गए कि वही आ पहुंचा। वे कुंडल लेकर पहुंचे, हाथ जोड़े माफी माँगे, बोले कि तुम कुंडल ले जाओ, हमसे गलती हो गई क्षमा करो। क्षमा तो करें किन्तु वहाँ जाएँ कैसे? तो तुरन्त उन्होंने एक नाग दिया कि इनको चट आश्रम पहुंचा आओ। नाग ने पहुंचा दिया। कुंडल लेकर वह पहुंचा, गुरुपत्नी को दिया। वे प्रसन्न हो गईं, उसने आशीर्वाद दिया कि तुम्हारी विद्या सफल हो जाए। फिर घर गया।

तो मनुष्य के भौतिक जीवन में कई प्रकार की अड़चनें आ जाती हैं जिनके कारणों से यह मोक्ष के साधनों को कर नहीं सकता। तो देव सहायता से भौतिक साधन थोड़े परिश्रम से मिल जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उसको मोक्ष की प्राप्ति के लिए साधन करने का समय मिल जाता है। इसलिए कहा कि—

स्वाध्यायादिष्ट देवता संप्रयोगः।

गो०- २-४४

स्वाध्याय की महिमा यह है कि इससे देवता प्रसन्न होते हैं, दर्शन देते हैं तथा कार्य में सहायता कर देते हैं। मोक्ष मार्ग के विघ्नों और त्रुटियों का निवारण कर देते हैं। इसलिये कर्म और उपासना रखी गयी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जिससे कि इसके मोक्ष साधन निर्विघ्न चलते रहें।

मोक्ष के साधनों को करना बहुत ही कठिन काम है। वह देवताओं की कृपा से कठिनाई दूर हो जाती हैं। आत्मानं चेद् विजानियात्—चेद्पद लगाकर सूचित करके यह बताया कि मनुष्य कोई ऐसा कार्य नहीं करे जिससे उसके अंतःकरण पर कोई नया पाप पैदा हो जाए। तब वह चलकर के आत्मा को जान जाता है। इसमें दो बातें कही गईं हैं—

आत्मानां चेद् विजानीयाद् अयमस्मीति पुरुषः।

बृ०- ४-१२

कि यह पुरुष अब अपनी आत्मा को जाने। तो एक तो आत्मा हुआ जिसको जानना है और एक पुरुष कहा जो उसको जाने। एक जानने वाला कहा, एक ज्ञेय कहा जिसको जानना है। जानने वाला कौन हुआ और जिसको जानना है वह कौन हुआ? उसको आत्मा शब्द से प्रयोग किया। तो इन दोनों का निर्णय होना चाहिये।

मोटी भाषा में हम कहते हैं कि यह अपने आपको जाने कि मैं कौन हूं? परन्तु जो मैं हूं उसको यहाँ पुरुष शब्द से कहा है। मैं कौन हूं- उसको आत्मा शब्द से कहा है। यह मैं हूं- अगर इस तरह से जान जाये तो सफलता प्राप्त कर लिया। उसी के लिये कर्मों के द्वारा, उपासना के द्वारा तैयारी की जाती है—

ओऽम् भद्रं कर्मभि.....

ब्रह्म का ज्ञान उतना कठिन नहीं है जितना मैं का ज्ञान। साकारता का जो अभिमान मन में बैठा है, वह जल्द निकलता नहीं है। अभ्यास इसीलिये करना है कि मन में आकार न बन सके। सबसे उत्तम पुरुषार्थ यही है कि यह अपने आपको नामरूप से अलग जो निराकार तत्व है, उसके रूप में अनुभव करने लग जाए। इसको तब तक अभ्यास करना है जब तक कि स्वप्न और जाग्रत दोनों अवस्था
करने लग जाये कि मैं निराकार हूं। यदि यह समझ में न
और मनन करे। ऐसा कुछ काल तक समझने से वस्तु

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आकार समझ में आ सकता है। निदिध्यासन से आत्माकार वृत्ति बनती है। भागवत् में कहा है—

निरपेक्षं मुनिं शांतं निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः॥

भा० ११-१४-१६

भगवान् ने बताया कि आत्माकार वाला मनुष्य निरपेक्ष हो जाता है। उसको किसी पदार्थ की अपेक्षा नहीं रहती है। पदार्थ खुद उसकी सेवा करने दौड़ते हैं। प्रकृति स्वयं उसकी सेवा करती है। वह पुरुष शांत हो जाता है, निर्वैर हो जाता है। भगवान् कहते हैं कि मैं उसके पीछे-पीछे इसलिए चलता हूं कि उसके चरणों से धूलि उड़े और मैं पवित्र हो जाऊँ। तो भगवान ने ऐसे पुरुष को कितनी महत्ता दी है। तो पहले तो ऐसी वृत्ति कठिन है, फिर उसमें स्थिर हो जाना और भी कठिन है। इसलिए लिखा है कि– ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति– ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म हो जाता है। जैसे देहाकार इसमें बैठा है, वैसे हो आत्माकार जब पक्का हो जाए तो कृतकृत्यता हो जाती है। उसके कर्तव्य बाकी नहीं रहता है।

तो आत्माकार वृत्ति होनी चाहिये। तो आत्मा कोई सकल तो है नहीं कि आत्माकार वृत्ति हम बनाएँ। आत्मा का यही आकार है कि आत्मा निराकार है। तो हमारी वृत्ति भी निराकार हो जाए, नाना आकार रूपों को छोड़े। जब तक ऐसा नहीं हो, तब तक इसको किसी आकार में जमाओ। 'मैं आत्माकार हूं', इसको जानना अन्तरंग साधन है। इसके जानने में जितने सहायक साधन हैं वे बहिरंग साधन कहे जाते हैं। उनमें भजन, कर्म, उपासना आदि हैं, सबका परिणाम ज्ञान है। भगवान् ने सम्पूर्ण कर्मों की समाप्ति ज्ञान में की है—

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञान यज्ञः परंतप।
सर्वंकर्माखिलम् पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते॥

गीता- ४-३३

सारे साधन ज्ञान में समाप्त होते हैं। अर्थात् सभी साधनों का फल

वास्तविक
RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ज्ञान ही है। आत्मरूप जो ज्ञान है वह तो फल है नहीं। क्योंकि फल उसको बोलते हैं जिसकी उत्पत्ति साधन से हो। साधन से आत्म-स्वरूप ज्ञान की उत्पत्ति नहीं होती, बल्कि उससे इस विश्वास की, इस निश्चय को, इस वृत्ति की उत्पत्ति होती है। अब विश्वास के सहायक कर्म उपासना आदि हैं। आत्म-स्वरूप में सारे आकार शांत हो जाते हैं। आँखों का ऐसा स्वभाव है कि आँख खोलते ही पदार्थ दिखने लगते हैं। इसी वासना के कारण स्वप्न में भी पदार्थ दिखते हैं। वहाँ पदार्थ होते नहीं हैं। ऐसे ही कानों का भी सुनने का स्वभाव है। वास्तव में स्वप्न में शब्द होते ही नहीं हैं, परन्तु सुनाई पड़ते हैं। इसीलिये योग वशिष्ठ में साफ लिखा है—कि जगत् कुछ नहीं है, बल्कि इन्द्रियों का चमत्कार है। इन्द्रियों के अभिमान से सुनना, देखना, चलना आदि हो रहा है। जब शरीर का भाव छूट गया तो नामरूप सभी गायब हो जाते हैं। जब तक हमें अपने शरीर का ज्ञान रहता है, तब तक इन्द्रियों का कार्य होता रहता है। इसका अभ्यास यही है। यह ऐसा मन में अभ्यास करें कि मैं निर्विकार हूं, मेरा कोई भी आकार नहीं। ऐसा होने लगे तो काम बन गया। इस तरह श्रवण, मनन, उपासना कर्म, निदिध्यासन आदि कर्म लिखे गए हैं।

ॐ पूर्णमदः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परम लाभ क्या है ?

असंतोष के कारण मनुष्य को कभी भी मालूम नहीं पड़ता है कि मैं पूर्ण हूं। इसकी पूर्ति के लिए हमको दूसरा मार्ग अपनाना पड़ेगा। इसीलिए यहाँ से अध्यात्मवाद का सूत्रपात होता है। जब देख लिया कि भौतिकवाद से हम संतुष्ट नहीं हुए तो अध्यात्मवाद की आवश्यकता हुई। एक साधन से कार्य सिद्ध न हो तो फिर दूसरा साधन खोजना पड़ता है। यही कारण था कि हमारे ऋषियों ने अध्यात्मवाद की खोज की। दूसरा कारण यह है कि हम सदा कोई न कोई आलम्बन रखते हैं। बचपन से लेकर मरण पर्यन्त हमारा कोई न कोई सहारा रहता है। छोटा बच्चा होता है– माँ-बाप उसके सहारे होते हैं। आलम्बन एक संसारी पदार्थों का ही लेता है। माता-पिता, धन-दौलत, अस्त्र-शस्त्र, मंत्र-यंत्र, औषधि आदि आलम्बन हैं। तो नाना प्रकार के आलम्बन हमने संसार में ग्रहण किए हैं। परन्तु इनके होने पर भी कई बार हम ऐसी अवस्था में आ जाते हैं और हम देखते हैं कि हम निरालम्ब हैं। हमारा कोई आलंबन रहा नहीं अर्थात् संसारी आलम्बन हमको जवाब दे जाते हैं। फिर निरालम्ब होकर हम रोना-धोना शुरु करते हैं। इस पर भी हमारे ऋषियों ने ध्यान दिया। आलम्बन तो चाहिए पर ऐसा आलम्बन चाहिए जो इसको छोड़े नहीं। इसको कभी भी अनुभव न हो कि हम निरालम्ब हैं। तो संसारी आलम्ब तो ऐसे हैं नहीं। मनु जी ने लिखा है—

नामुत्रही सहायार्थम्, पितामाता च तिष्ठतः
न पुत्र भार्या न बन्धु धर्मस्तिष्ठति केवलः।

धन तो समाप्त होने वाला है। हम धनहीन हो जाते हैं। परिवार, मित्र, माता, पिता ये सारे आलम्बन इसी जीवन में छोड़ जाते हैं। मान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लो कि जीवन भर रहे तो मृत्युपर्यन्त छोड़ेंगे ही। फिर कोई ऐसा आलम्बन नहीं है जो साथ जाए। मनु जी इसी बात को कहते हैं कि मरने के बाद केवल धर्म ही सहारा है। अमूत्र-परलोक।

यह जीवात्मा इस शरीर को छोड़कर दूसरे में जाता है। इसको परलोक बोलते हैं। भौतिकवाद इसको स्वीकार नहीं करता है। वे दूसरे शरीर और परलोक को नहीं मानते हैं।

किन्तु आध्यात्म यह स्वीकार करता है कि हम शरीर के पहले भी थे तथा शरीर समाप्त होने के बाद भी रहेंगे। हम इतना सीमित नहीं हैं कि शरीर तक ही रहें। इसलिए वो कहते हैं कि जीवात्मा इस शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में जाने लगता है तो यहाँ के संगी-साथी, सम्पत्ति यहीं छूट जाते हैं। तो अब ऐसा आलम्बन ढूँढना चाहिए जो यहाँ के बाद भी साथ जाये। हम जिससे कभी वियुक्त नहीं हो सकते वैसा साधन खोजना है। उन्होंने देखा कि ऐसा आलम्बन तो परमात्मा ही है। दूसरा तो है नहीं। क्योंकि वह सर्वदेश में है, सर्वकाल में है। इसलिए उन्होंने कहा कि वे परमात्मा को ही आलम्बन बना लें। वही ऐसा आलम्बन है जब ये सब आलम्बन जवाब देता है तब वो आलम्बन हमारे पास रहता है।

आपने द्रौपदी की कथा सुनी है। दुःशासन उसको बीच सभा में नंगा करने लगता है। वो अपनी रक्षा के लिए सबसे मदद माँगती रही। परन्तु जब इनसे निराश हो गई तो भगवान् को याद किया। देखा कि जब ये आलम्बन जवाब दे दिए तो भगवान् की शरण में ही गई और उसकी रक्षा हुई। इसका अभिप्राय यही कि लौकिक पदार्थ हमारी उतनी ही रक्षा करते हैं जितना कि उनमें शक्ति है। उनकी शक्ति से कोई बाहर आ जाये तो मुश्किल है। कभी-कभी जीव पर ऐसी आपत्तियाँ आ जाती हैं कि जो जीव को लौकिक साधनों से दूर कर देती हैं। वहाँ उनकी शक्ति समाप्त हो जाती है। ऐसे समय में भगवान् ही रक्षा कर सकते हैं। द्रौपदी का अर्थ है—जोव। द्रौपदी के पाँच पति थे। जीवन के भी नाना प्रकार के साधन बनाए हैं। परन्तु जैसे द्रौपदी के पाँच पति उसकी रक्षा नहीं कर सकते हैं, उसी प्रकार नाना प्रकार के साधन भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हमारी रक्षा नहीं कर सकते हैं।

एक घटना सुनने में आयी कि कोई शिकारी जंगल में गया शिकार करने। उसने शेर पर गोली चलाई। शेर पर गोली लगी तो वह भी उस पर टूट पड़ा। जब शेर उसके पास आया, उसने दूसरी गोली छोड़नी चाही तो गोली ही रुक गई। वह घबड़ा गया। शेर ने झपट्टा मारा और उसको खा गया। तो बंदूक हाथ में ही लिए रहा और मर गया। तो ये जो लौकिक साधन हैं, वो सीमित शक्ति रखने के कारण हमारी सर्वत्र सहायता नहीं कर सकते हैं। तो अन्त में हमारी रक्षा परमात्मा ही करते हैं। लौकिक साधन के साथ परमात्मा का सहारा भी रखना चाहिए। कभी न कभी वह काम आयेगा ही। जैसे छिद्र वाली नाव हमको डुबा देगी वैसे ही ये संसारी साधन हैं। ये स्वयं नष्ट होने वाले हैं तो हमारी क्या सहायता करेंगे? औषधि का नाम जानने से रोग दूर नहीं होते हैं। रोग की जानकारी होने से भी कोई रोग दूर नहीं होता। हाँ, रोग का ज्ञान और औषधि का ज्ञान, दोनों होने पर ही रोग दूर हो सकता है।

इसलिए परमात्मा को ऐसा साधन माना गया है जो सर्वशक्ति सम्पन्न है। उसका आश्रय पकड़ने से हमारा कल्याण है। उससे छिपकर अथवा उसकी शक्ति से बाहर भी कोई काम नहीं हो सकता। इसीलिए अध्यात्मवाद की सहायता लेनी पड़ी। यहीं पर अध्यात्मवाद की नींव पड़ गई। बहुत बार ऐसा होता है कि जो काम हम करना नहीं चाहते हैं तथा जो हमारी शक्ति से बाहर का काम है, वह भी हो जाता है। कई बार हम काम करना चाहते हैं तथा काम करने का साधन भी होता है परन्तु वह नहीं हो पाता है। तो कोई चीज हमारे ऊपर है न, कि वह अपनी मर्जी से अपनी बात हमसे मनवा लेता है। इसलिए अध्यात्मवादियों को एक ऐसी शक्ति स्वीकार करनी पड़ी। एक श्वेताश्वतर उपनिषद् है। उसमें ईश्वर में विश्वास के लिए युक्ति दी है—

अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु।
वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम्॥ श्वेताश्वतर- १-१

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जब परमात्मा हमारी किसी भी इन्द्रिय का विषय नहीं है तो हम उसको कैसे विश्वास कर लें कि वह है ? और कैसे उसको आलम्बन बना लें ?

केन अधिष्ठिता:– हम किसके नियंत्रण में हैं ? यदि सुख मिलता है तो हम सुख के लिये तो चेष्टा कर रहे हैं परन्तु जिसको हम चाहते नहीं वह हमको क्यों हो जाता है ? कई बार सुख का काम करते हैं, दुःख भोगते हैं और दुःख का काम करते हैं, सुख भोग लेते हैं। उपनिषद् तो यह भी कहता है—

भीषाऽस्माद्वातःपवते, भीषोदेति सूर्यः।
भीषाऽस्मादग्निश्चेन्द्रश्चमृत्यु र्धावति पञ्चम इति।
तैत्तिरीय- २-८

यह जो संसार की व्यवस्था चल रही है, उसका कोई व्यवस्थापक भी तो होना चाहिए। अगर कोई व्यवस्थापक नहीं होता तो संसार कब का खत्म हो जाता। यह आज का नहीं है, बल्कि अभी तक यह भी पता नहीं लगा है कि संसार कब से चला आ रहा है। सूर्य, चन्द्र समय से उदय अस्त हो रहे हैं। इस व्यवस्था को कौन चला रहा है ? जो चलाने वाला है–उसी का नाम परमात्मा है। वह कोई साधारण नहीं हो सकता। इतनी बड़ी व्यवस्था को जिसने सम्भाला है, वह साधारण थोड़े होगा। संसार के सारे तत्व परस्पर विरोधी हैं। परन्तु इन सबको जो सम्भाले है–वही परमात्मा इस जगत का व्यवस्थापक है। इस प्रकार अध्यात्मवाद की नींव पड़ी।

दूसरी बात जो थी कि ये जो मानते हैं कि जीव एक शरीर से दूसरे शरीर में जाता है, यह बात भी हम स्वप्नावस्था का विचार करके समझ सकते हैं। स्वप्न में हम जागरण का शरीर छोड़कर नित्य जाते हैं। तो स्वप्न में दूसरा जगत् तो हो गया न ? इतना ही है कि वहाँ से फिर यहाँ आ जाते हैं। यही एक फर्क है। तो उसका नाम मृत्यु है, जब फिर वापस न आए। स्वप्न इसलिए है कि वहाँ जाकर आ जाते हैं। परन्तु दूसरे जगत् को सिद्ध करने के लिए स्वप्न सबसे बड़ा प्रमाण है। दूसरे जगत् को सिद्ध करने के लिए ही सपना आता है। सपने में सारी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

व्यवस्था बदल जाती है—

सपने होई भिखारी नृप, रंक नाकपति होय।
जागे लाभ न हानि जिय, तिमि प्रपंच जिये जोय॥

इसलिए कहा कि तुम सारी चेष्टा संसारी पदार्थों के लिए ही मत करो। परन्तु परमात्मा को सहारा बनाने के लिए भी चेष्टा करो। चाहे अभी उसकी आवश्यकता नहीं पड़ती परन्तु कभी न कभी उसकी आवश्यकता अवश्य पड़ेगी। क्योंकि ऐसा कोई कह नहीं सकता कि मुझको आपत्ति नहीं आयेगी। आपत्ति तो यहाँ पद-पद पर हैं। कुछ ऐसी आपत्तियाँ हैं जो लौकिक साधनों से दूर नहीं होतीं। उसके लिए परमात्मा ही सहारा है।

प्रह्लाद को हिरण्यकश्यपु ने कितना तंग किया। यहाँ तक कि मारने को तैयार हो गया। मारने के सारे उपाय किए परन्तु वह मरा नहीं। प्रह्लाद के मित्रों ने पूछा कि प्रह्लाद तुम्हारे पास ऐसा कौन-सा साधन था जिससे तुम मृत्यु के संयोग जुटाने पर भी नहीं डरा और मरा भी नहीं। उसने कहा कि हमारा रक्षक विष्णु है। वह ऐसा है जिससे कोई काल, स्थान, देश खाली नहीं।

जले विष्णुः स्थले विष्णुः विष्णुः पर्वतमस्तके।
ज्वालामाला कुले विष्णुः, सर्वं विष्णुमयं जगत्॥

तो फिर हमको डर किस बात का। उसी विष्णु ने हमारी रक्षा की। वह तो सब जगह है। इसलिए उसने सर्वत्र हमारी रक्षा की। क्योंकि सारी शक्ति तो परमात्मा की है। शक्ति का नाम ही परमात्मा है। अग्नि में जलाने की शक्ति भी परमात्मा की है। जल में गलाने की शक्ति भी परमात्मा की है। खड्ग में काटने की शक्ति भी परमात्मा की है। तो वह तो सर्वरूप है न? तो जब दृढ़ विश्वास है कि उसके लिये कोई भी पदार्थ परमात्मा ही है, तो जिसको भगवान् पर विश्वास हो जाता है, वह निर्भय हो जाता है। वह निरालंब होता ही नहीं है। वह समझता है जहाँ मैं हूं, वहाँ मेरा रक्षक पहले ही विद्यमान है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सहारनपुर जिले में एक शाकाम्भरी देवी हैं। वह प्राचीन स्थान है। जैसे ज्वालाजी आदि हैं। वह पौराणिक स्थान है। एक आदमी देवी जी का दर्शन करने जा रहा था। वहाँ उसको कुछ भोग लगाना था, ब्राह्मणों को खिलाना था। ऐसे पाँच सौ रुपए उसके पास थे। वह चल पड़ा। उन दिनों बसें नहीं थीं, वह ताँगा से चला। बीच-बीच में जंगल था, ताँगा वाला बेईमान हो गया। उसने देखा कि पैसा है तो उसका पैसा छीन लें। उसने उसका पैसा छीन लिया और उसको मारने के लिये सोचने लगा। उसने हाथ-पैर बाँध दिये, पास में एक बड़ा पत्थर था, सोचा कि पत्थर से मारूँगा तो उसका सिर चूर-चूर हो जाएगा और खत्म हो जाएगा। इसी उद्देश्य से वह पत्थर उठाने गया, पत्थर के नीचे एक साँप बैठा था, उसने उसके दोनों हाथ और दोनों पैर लपेट लिए, अब वह गिर गया, लगा चिल्लाने, आस-पास कोई आदमी था उन्होंने आवाज सुनी। आये तो देखा ताँगा खड़ा है। ताँगे वाले के हाथ-पैर बँधे हैं। दूर एक आदमी पेड़ से बँधा है। उसके हाथ-पैर रस्सी से बँधे हैं, उसके साँप से। आदमियों ने पूछा तो उसने सारी बात कह दी। उसने बताया कि मैं सहारनपुर का हूं। इस ताँगेवाले ने मेरे साथ ऐसा किया है। आदमी जब जुट गए तो सांप जंगल में चला गया। लोगों ने उसको पकड़ पुलिस में दे दिया। उसको खोला, उसने वहाँ जाकर पाँच सौ की जगह हजार रुपए का भण्डारा किया। अब देखो परमात्मा तो सब जगह है न? पता नहीं वह कहाँ किस रूप में है। साँप के रूप में शायद परमात्मा ही बैठा था। तो जिसकी रक्षा परमात्मा करनी चाहे उसकी रक्षा किसी न किसी रूप में हो जाती है। जिसको रक्षा नहीं करना चाहे तो लाख साधन करो, उसकी रक्षा फिर नहीं हो सकती है।

इसलिए अध्यात्मवाद का पूरा विश्वास है कि इस जीव की पूरी रक्षा परमात्मा ही कर सकता है। इसलिए कहा कि—

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मरयुध्य च।

गीता- ८-७

तो भगवान् ने स्पष्ट कहा कि तुमको जो संसारी काम करना है, उसको करो। परन्तु एक बात याद रखो कि मुझको भूलकर मत करना।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुझको भी स्मरण रखो और अपना दुनियादारी का काम करते रहो। संसारी पदार्थों की भी आवश्यकता है, तो आवश्यकतानुसार उनसे भी काम लो। परन्तु वही सार नहीं है और उसी को अन्तिम लक्ष्य मत मानना। इसके लिए हमको पूरा विश्वास और श्रद्धा रखनी चाहिए। केवल परमात्मा की शरण में ही हमारी पूर्ण रक्षा हो सकती है और हम पूर्ण निर्भय रह सकते हैं—

आनंदम् ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कुतश्चन

उपनिषद् का कहना है कि संसार में वही निर्भय है जिसको परमात्मा का सहारा है। और जितने सहारे हैं उनमें कोई न कोई भय छिपा होता है। बाकी जितने हैं वो मृत्यु के ग्रास हैं। एक परमात्मा ऐसा है जो कि अविनाशी है। जो अविनाशी है वही निर्भय है, उसी का सहारा लेकर हम भी निर्भय हो सकते हैं।

आलम्बन की जीव को जरूरत है और ईश्वर से बढ़कर सर्वसुलभ और सर्वशक्तिमान कोई भी आलम्बन नहीं है। तो मात्र वही आलम्बन सहायक होता है। इसलिए अध्यात्मवाद की आवश्यकता पड़ गई। मरने के बाद तो परमात्मा के अलावा कोई भी आलम्बन हमारी सहायता नहीं कर सकते। इसलिए मनुजी को कहना पड़ा कि—

धर्मस्तिष्ठति केवलः.....

परलोक मार्ग में सिर्फ धर्म ही जायेगा। अतः ऐसा सहारा तैयार कर लेना चाहिए जो कि परलोक में भी सहायता करे। सच्चे आलम्बन के लिए भी अध्यात्मवाद की आवश्यकता है। संसार के साधन से हमारी रक्षा नहीं हो सकती है। हमारा सबसे बड़ा शत्रु मृत्यु है। परमात्मा उससे भी हमको अभय करने वाला है। मरना और बात है और डरना और बात है। परमात्मा की शरण में रहने वाले को मृत्यु का भय नहीं होता है। वह राजी-खुशी ही मरता है। भौतिकवाद में एक दूसरे का भय है। चूहे को बिल्ली का भय है। बिल्ली को कुत्ते का भय है, कुत्ते को बघेरे का भय है। तो यहाँ तो एक से एक बढ़कर हैं। तो भय तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बना ही रहा।

साधन करो। धीरे-धीरे साधन पूरे होने पर ईश्वर की प्राप्ति हो जाती है। जैसे मधुमक्खी धीरे-धीरे मधु एकत्र कर लेती है। भौतिकवाद में नाना प्रकार के क्लेश हैं—

अविद्या स्मिता राग द्वेष अभिनिवेष

अभिनिवेष नाम है– मरण भय का। मृत्यु से बचने के लिए हम उपाय करते हैं परन्तु भौतिकवाद हमको बचा नहीं पाता है। किन्तु ईश्वर को पाने वाला मृत्यु के दुःख से बच जाता है।

हम शरीर को अजर-अमर बनाना चाहते हैं, उसमें हम असफल होते हैं। क्योंकि इसका तो नाश अवश्यंभावी है—

जातस्य हि ध्रुवोमृत्यु ध्रुवं जन्ममृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे, न त्वं शोचितुमर्हसि॥

गीता- २-२७

भगवान् ने कहा कि जिसका जन्म हुआ उसका मृत्यु निश्चित। तो जन्म किसका हुआ ? तो जन्म हुआ शरीर का। तो फिर इसका नाश निश्चित है। इसको नाश से हम बचा नहीं सकते। यही इसका स्वभाव है। तो हमारी दृष्टि इसी पर जमी है कि हमारा शरीर ठीक रहे। परन्तु उसको तो अपने स्वभाव के अनुसार मरना ही है। तो फिर हमारे सारे प्रयत्न निष्फल हो जाते हैं। तो शरीर की दृष्टि से तो यह अमर हो नहीं सकता है।

मृत्यु का भय दूर विचार से ही सम्भव है। शरीर का मृत्यु तो होना ही है और जो आत्मतत्व है, वह कभी मरता नहीं है। इसको मृत्यु का जो भय सता रहा है वह गलती के कारण। यह शरीर को अजर-अमर बनाना चाह रहा है। उन्होंने समझाया कि शरीर अजर-अमर हो नहीं सकता और तुम शरीर हो भी नहीं। आत्मा का कभी नाश नहीं होता—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ॐ

ना जायते म्रियतेवा कदाचिन्
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यःशाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

गीता- २-२०

तो इसी बात को निश्चित करना है कि हम शरीर नहीं हैं, शरीर से भिन्न हैं। इसके लिए उन्होंने युक्ति दी है।

पहली बात तो यही है कि हमारा स्वभाव मृत्यु नहीं है। यह तो शरीर का स्वभाव है। हम शरीर हैं भी नहीं। अपने स्वभाव से किसी को भय नहीं होता है, भय होता है दूसरो वस्तु से। मृत्यु हमारी होती तो डरने को कोई बात नहीं होती। किन्तु मृत्यु तो शरीर की है। अब हम शरीर की मृत्यु को अपनी मृत्यु मान बैठे हैं, जिससे हमारा कोई मतलब नहीं है।

कुछ लोगों ने आत्मा को भी उत्पत्ति-नाश वाला माना है। शरीर के साथ इसकी उत्पत्ति होती है और शरीर के साथ ही उसका नाश हो जाता है। तो फिर तो मृत्यु अपनी हुई न ? शरीर की तो नहीं हुई। यदि अपनी होती तो फिर मरने से भय नहीं होता। क्योंकि कारण को अपने कार्य से भय नहीं होता है। अतः भय सिद्ध करता है कि मृत्यु अपनी है नहीं और आत्मा को उत्पत्ति-नाश वाला भी नहीं मान सकते।

शरीर कर्मों का फल है। पाप पुण्य के अनुसार उत्तम-अधम शरीर मिलते हैं। जिस अंग से हम पाप करते हैं उसी से पाप का फल भी भोगना पड़ता है। जिस इन्द्रिय से जो पुण्य-पाप होगा, उसको भोगना भी उसी इन्द्रिय से होगा। पाप से मनुष्य पशु, पक्षी, वृक्षादि बनते हैं। सुख-दुःख का कारण कर्म है। यदि ऐसा नहीं होता तो फिर सभी सुखी-दुःखी होते। परन्तु ऐसा नहीं है, प्रत्येक योनियों में सुख-दुःख हैं। पशु भी ऐसे सुखी हैं जो सुख आदमियों को भी नहीं मिलता है। पुण्य-पाप मनुष्य शरीर में ही होता है परन्तु उसका भोग अन्य शरीरों में भी करना पड़ता है। अन्य शरीर में पुण्य-पाप नहीं बनता है। सभी प्राणियों के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जीवन में विषमता है। विषमता का कारण प्रारब्ध है। जीवात्मा जो आज मानव शरीर में है वह दूसरे शरीर में भी जाता है। कर्मों के कारण उसको जाना पड़ता है। कर्म फल के अनुसार वह उत्तम अधम शरीर में जाता है। यही चौरासी का चक्कर है, उससे छूटने का उपाय करना चाहिए। ऐसा काम तो कम से कम करें कि हम मनुष्य शरीर में आवें—

पन्यः पुण्येन कर्मणा भवति, पापः पापेन.....

कर्म शास्त्र का सिद्धान्त है कि सुख पुण्यों का फल है और दुःख पापों का। यदि इस जन्म में कोई पाप-पुण्य नहीं दीखता है तो वह पूर्व जन्मों का है। इसी जन्म का कर्म हमको अभी फल दे रहा है ऐसी बात नहीं। बल्कि पिछले कर्म हमको फल देते हैं। मनु जी ने साफ लिखा है— कोई पाप करता और सुखी है। दूसरा पुण्य करता है और दुःखी है। तो इसका कारण उसका पूर्व जन्म का पाप-पुण्य है—

न सिद्धनमपि धर्मेण मनुष्यो धर्मेन वेशयेत
अधार्मिकानाम् पापानाम्, पश्यन्ना सु विपर्ययम्।

यदि कोई अधर्मी सुखी है तो यह मत मान लेना कि पाप के कारण वह सुखी हो रहा है और हम धर्म कर रहे हैं तो हमारी अवनति हो रही है। ऐसा सोचना भी नहीं। धर्म करने में कोई दुःख आ जाये तो धर्म में श्रद्धा मत खोना और अधर्म में श्रद्धा मत करना। इसका कारण यह है कि पिछला पुण्य उसको सुख दे रहा है और पिछला पाप उसको दुःख दे रहा है जो कि इस जन्म में धर्म कर रहा है। यह जो अधर्म है उसका फल भी उसको अपने समय पर अवश्य मिलेगा ही।

उसे दृष्टान्त देकर समझाते हैं कि कोई भी वृक्ष समय पाकर ही फल देता है। इस बात पर हमारे ऋषियों ने खूब प्रकाश डाला है।

अब यह सिद्ध हो गया कि जीव को पूरी तृप्ति अध्यात्मवाद से ही हो सकता है, भौतिकवाद से नहीं। पूरी निर्भयता भी वहीं से प्राप्त होगा। भौतिकवाद के पास ऐसा कोई साधन नहीं जो इसको निर्भय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और अमर बना सके।

आत्मा को जान लेने पर शरीर ग्रहण करना और छोड़ना दोनों छूट जाता है। ऐसा गीता में कहा गया है—

मामुपत्य तु ----

जो लोग मेरे को प्राप्त हो जाते हैं वे पुनः जन्म नहीं लेते। शरीर का बन्धन उनको नहीं होता। जब नहीं आए तो मरण तो आप ही हट गया। तो जन्म-मृत्यु की परम्परा खत्म हो गई। अब वह अपने स्वरूप में विराजमान है। यही अमर होना है। जन्म-मरण का अभाव ही अमृतपद की प्राप्ति है। योगदर्शनकार ने इस बात पर प्रकाश डाला—

हेयं दुःखम् अनागतम्

यानी भविष्य में उसको दुःख नहीं होता है। वर्तमान शरीर को तो त्यागना ही है। यह जो इलाज करना है वह भविष्य के लिए ही है। जन्म-मृत्यु सबसे बड़ा रोग है। भविष्य में यह रोग पुनः न आए इसी का इलाज करना है—

दुशालयं.....

सबसे बड़ी जीवन की सफलता यही है कि जन्म-मरण की श्रृंखला टूट जाये— बाकी पदार्थ तो लाभ है नहीं। तो लाभ क्या हुआ—

यं लब्ध्वा चा परम् लाभम्
मन्यतेनाधिकं ततः

जिस लाभ के बाद मंगतापन बना ही रहे तो वह क्या लाभ हुआ? तो संसारी लाभ में एक न एक कमी बनी रहती है। असल लाभ तो आत्मा का लाभ ही है। इससे बढ़कर कोई लाभ नहीं। इसकी प्राप्ति के बाद कुछ भी पाना शेष नहीं रह जाता है। जीव की सबसे बड़ी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सफलता यही है।

भौतिक आवश्यकता के लिए भौतिक साधन की भी कुछ अनिवार्यता है। जिससे जीवन यात्रा कुछ सुलभ हो जाती है। धन, जन्म-मरण के चक्कर से नहीं छुड़ा सकता है। उपनिषद् का कहना है कि—

अयं आत्मा ब्रह्म

सारे शरीरों का जो आत्मा है वही आत्मा ब्रह्म है। यह महावाक्य है। महावाक्य का अर्थ लम्बा-चौड़ा नहीं लेना। बल्कि सबसे बड़ी बात लेना। इससे बढ़कर बात कहने वाला कोई दूसरा शब्द है नहीं।

अयं = समीपस्थ सम्बन्ध है। यानी जो सबसे अधिक समीप हो। आत्मा से अधिक समीप और सामने कोई नहीं है। बाकी जितने हैं वे तो दूर ही हैं। अयं आत्मा—का अर्थ है कि इस शरीर में जो आत्मा है वही ब्रह्म है। ब्रह्म = सारे शरीर में वही भरपूर है। किन्तु हम समझते हैं कि जितने शरीर हैं, उतनी ही आत्मा हैं। परन्तु उपनिषद् कहता है कि सारे शरीरों में एक ही आत्मा है। उपनिषद् के अनुसार जगत् का अन्तिम तत्व ब्रह्म है। अन्तिम तत्व किसको कहते हैं—कि इस जगत् को मिटा देने के बाद भी जो अंत में शेष रह जाये वह अंतिम तत्व, बस। और फिर जिसमें से यह निकले, जैसे वृक्ष का अन्तिम तत्व बीज है और ब्रह्म क्या है? तो अयं आत्मा ब्रह्म— तुम्हारे अन्दर जो आत्मा है यही ब्रह्म है। यही सबके अन्दर फैला है। एक ही चेतन से सारे शरीर चेतन हैं। शरीर जड़ है, जैसे हलवे में मिठास अपनी चीज नहीं है वैसे ही शरीर में चेतनता अपनी चीज नहीं है। यह कहीं बाहर से आया है। चेतनता का अर्थ है—ज्ञान शक्ति। यदि चेतनता शरीर की होती तो वह कभी मरता नहीं।

हमारे शरीर में जो आत्मा है वही सबका आत्मा है और जो सबका आत्मा है, वही हमारा आत्मा भी है। किन्तु बड़े-बड़े लोगों को इसमें भ्रम है। इसलिए उपनिषद् को प्रमाण माना गया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुछ लोगों ने भ्रम से प्रत्येक शरीर में भिन्न-भिन्न आत्मा माना है। इसका कारण है कि उनके मन में तर्क या शंका आ गई है जिसके चलते उन लोगों ने भिन्न-भिन्न आत्मा माना। इसीलिए हमारे यहाँ पहले श्रवण रखा। श्रवण से कुतर्क और शंकाएं निकल जाती हैं—

तस्मात् अज्ञान सम्भूत हृद.....

भगवान् ने कहा कि तुम बुद्धि में से संशय निकाल दो। संशय निकलता है निश्चय से। जब किसी बात का निश्चय हो तो संशय निकल जाता है।

'हरिओम्'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कर्म से मोक्ष नहीं होता

कर्मों की जहाँ-तहाँ निंदा भी की जाती है। उसको देखकर लोग कर्म करना छोड़ देते हैं। तो उसका रहस्य यह है कि जहाँ कर्म की निंदा है उसका कारण उपनिषद् में आया है—

इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढः।
नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभत्वे मं लोकं हीनतरं वा विशन्ति ।।

मुण्डक- १/१०

तो इसका तात्पर्य यह नहीं है कि कर्म नहीं करना। कर्म त्यागना ही अगर तात्पर्य होता तो फिर कर्मकाण्ड शास्त्र ही क्यों बनता ? लेकिन इसका भाव यह है कि मनुष्य कर्म के ऊपर ही सारा जीवन समर्पण न कर दे। अर्थात् कोई यह न समझ ले कि कर्म के सिवाय मुझको कुछ और नहीं करना है। कर्म ही मेरे जीवन को सफलता प्राप्त करा देगा, इस दृष्टि से इसकी निन्दा की गई है। जहाँ पर कर्म की निन्दा है वह इसी उद्देश्य से है कि कर्म से मोक्ष नहीं हो सकता। मोक्ष— जन्म-मरण का अभाव—यह किसी कर्म का फल नहीं है। क्यों नहीं है ? क्योंकि मोक्ष का लक्षण किया है—

अविद्यायां बहुधा वर्तमाना
वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः।
यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्
तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते ।।

मुण्डक- १/२/९

अविद्या की निवृत्ति का नाम मोक्ष है। अविद्या की निवृत्ति तो कर्म से होती नहीं, वह तो विद्या से होगी। जैसे अंधकार की निवृत्ति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकाश से सम्भव है और कोई दूसरा उपाय नहीं है जो अंधकार को दूर कर दे। तो अंधकार और अविद्या एक जैसे हैं। जैसे अंधकार वस्तु के स्वरूप को ढक सकता है वैसे ही अविद्या भी वस्तु के स्वरूप को आवृत्त करती है। तो आवरण रूप होने के कारण अज्ञान और अंधकार एक ही समान माना जाता है। तो उधर प्रकाश ज्ञानस्वरूप हो गया। जैसे अंधकार की निवृत्ति प्रकाश से होती है, तो वैसे ही अविद्या की निवृत्ति विद्या से होती है। अज्ञान की निवृत्ति ज्ञान से होती है। तो जो कर्म की निन्दा यह कहकर करते हैं तो उनका तात्पर्य यह है कि कुछ लोग कर्म को ही मोक्ष का कारण मान लेते हैं, वे समझते हैं कि हमको अब ज्ञान की कोई जरूरत नहीं है। जो लोग ऐसा मान बैठे हैं, उनके इस निश्चय की निन्दा है। इसका मतलब यह नहीं कि कर्म करो ही नहीं। कर्म करो परन्तु ये भाव लेकर नहीं कि तुम कर्म से मुक्त हो जाओगे। कर्म का अपना फल है। इसलिये शंकराचार्य ने दो प्रकार का समुच्चय माना– समुच्चय है कर्म और ज्ञान का। ज्ञान के साथ कर्म कहाँ तक साथी हैं और कहाँ इसको छोड़ना है। तो एक होता है–समसमुच्चय। एक है विषम समुच्चय।

(१) समसमुच्चय– इसका अर्थ है कि ज्ञान और कर्म दोनों मिलकर मुक्ति देते हैं। न अकेला ज्ञान मुक्ति देगा न अकेला कर्म मुक्ति देगा। किन्तु कर्म और ज्ञान मिलकर के मुक्ति के साधन हैं। इसको समसमुच्चय बोलते हैं। अर्थात् मुक्ति के लिए जितना ज्ञान की आवश्यकता है, उतने कर्म की भी है। जैसे पक्षी के उड़ने के लिये दोनों पंखों की बराबर उपयोगिता है। चित्त निरोध रूप जो योग है उसके लिए अभ्यास और वैराग्य दोनों समान रूप से अनिवार्य हैं। यह कोई नहीं मान ले कि अभ्यास से ही काम हो जाएगा, वैराग्य की आवश्यकता नहीं या वैराग्य से ही चित्त निरोध हो जायेगा, अभ्यास की जरूरत नहीं है। इसलिए योग दर्शनकार ने साफ लिखा है—

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः

यो. द. १-१२

अभ्यास और वैराग्य दोनों से योग सिद्ध होता है। केवल अभ्यास

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

या वैराग्य से नहीं। पक्षी को आगे बढ़ने के लिये उसके दोनों पक्ष बराबर उपयोगी हैं, उसमें दक्षिण या वाम का कोई अंतर नहीं। कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि ज्ञान और कर्म दोनों मिलकर मुक्ति प्रदान करते हैं। यों समझो कि आधा उपयोगी कर्म है और आधा उपयोगी ज्ञान है। इसको समसमुच्चयवाद बोलते हैं। शंकराचार्य ने इसका खंडन किया– ज्ञान और कर्म मिलकर मोक्ष प्रदान करे ऐसी कोई बात नहीं है। क्योंकि जहाँ मोक्ष की बात आई वहाँ केवल ज्ञान को ही लिया—

ज्ञात्वा देवम् मुच्यते सर्वपाशैः, ज्ञानादेवतुकैवल्यम्,
मत्वा देवम् हर्ष शोकौजहाति, तरति शोकम् आत्मवित्।

इन सब वाक्यों से यह सिद्ध हुआ कि मोक्ष केवल ज्ञान से होता है। वार्तिककार ने इसमें युक्ति दी है। ज्ञान से ही मोक्ष क्यों होता है—

अविद्यास्तमयो मोक्ष स हि बंध उदाहृतः

बंध की निवृत्ति का नाम मोक्ष है। बंध कुछ और नहीं है– अविद्या ही बंध है। जब अविद्या की निवृत्ति मोक्ष है तो उसकी निवृत्ति तो विद्या से ही होगी न ? उसमें कर्म का क्या उपयोग है ? इसलिए कर्म का मुक्ति में कोई उपयोग नहीं है। हाँ ज्ञान को उत्पत्ति में कर्म उपयोगी है। इसलिए कर्म कोई हेय भी नहीं है, यदि कोई कहे कि जब कर्म का मुक्ति में कोई उपयोग नहीं है तो हम कर्म क्यों करें ? हम फिर ज्ञान में ही क्यों न लगें ? परन्तु कर्म का उपयोग ज्ञान में है। जैसे प्रकाश से अंधकार दूर होगा यह ठीक है, पर प्रकाश को उत्पन्न करने के लिए भी कोई साधन करने पड़ेंगे। उसके लिए तेल चाहिए, बत्ती चाहिए, माचिस चाहिए। तब न दीपक तैयार होगा और तब अन्धकार भागेगा। यह ठीक है कि अंधकार की निवृत्ति दीपक से ही होती है, पर दीपक की उत्पत्ति कहाँ से हुई ? उसके लिए तो और साधन करने पड़ेंगे न ? इसी प्रकार ज्ञान एक दीपक है। वह अज्ञानरूपी अंधकार को भगा देता है। ज्ञानरूपी दीपक को जलाने के लिए कर्म को आवश्यकता है, उपासना की भी आवश्यकता है। इसको बोलते हैं– विषम समुच्चय।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो मनुष्य को कर्म तो करना है परन्तु इस दृष्टि से करना है कि मेरे ज्ञान की प्राप्ति में इसकी आवश्यकता है। इस दृष्टि से नहीं करना है कि मुझको इससे ही मोक्ष हो जायेगा। मोक्ष के लिए तो ज्ञान ही है, पर ज्ञान के लिए कर्म है। स्मृत्तियों में ऐसा लिखा है—

ज्ञानमुत्पद्यते पुंसाम्, क्षयात् पापस्य, कर्मणः
ज्ञानं तु परमागतिः—

यह जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वह पाप कर्म के क्षय होने पर ही होता है। जिज्ञासा, वैराग्य आदि तभी उत्पन्न होता है। यदि अन्तःकरण पवित्र नहीं होता तो फिर ज्ञान की उत्पत्ति की योग्यता उसमें नहीं आती है। तो ज्ञान के लिए कर्म कर सकता है। इसको विषम समुच्चय बोलते हैं। विषम समुच्चय का अर्थ है कि दोनों का फल भिन्न-भिन्न है। ज्ञान का फल अविद्या की निवृत्ति है और का कर्म फल पाप आदि क्षय करके ज्ञान में सहायक होना है। ज्ञान के फल में कुछ थोड़ा सा विवाद है। वाचस्पति कहते हैं– कि कर्म का फल केवल अन्तःकरण की शुद्धि है। अन्तःकरण शुद्ध हो जाने के बाद कर्म की कोई आवश्यकता नहीं। तो उनके मत में कर्म का फल केवल अन्तःकरण की शुद्धि हो गया। परन्तु साम्प्रदायिक सिद्धान्त यह है कि अन्तःकरण की शुद्धि तो फल है परन्तु यह ज्ञान तक जाता है। परन्तु ज्ञान के लिए अन्य साधन भी तो चाहिए। रोगी आदमी ज्ञान का साधन नहीं कर सकता। अन्तःकरण की शुद्धि तो हो गई पर केवल अन्तःकरण की शुद्धि से ही तो काम नहीं चलेगा न। अन्तःकरण की शुद्धि तो वैसा ही है जैसे खेत को साफ कर दिया, घास आदि निकाल दिया। तो क्या इतने से ही अन्न हो जायेगा। उसमें बीज तो डालना पड़ेगा। फिर उसकी रक्षा करनी पड़ेगी तब कहीं जाकर चार-छः महीने में फल मिलेगा। तो अन्तःकरण की शुद्धि हो यदि इसका फल मान ले तो फिर ज्ञान तो नहीं होगा। इसलिए हमारे जो साम्प्रदायिक सिद्धान्त हैं– विवर्णाचार्य, पंचपादीका आदि, उनका कहना है कि ज्ञान की उत्पत्ति पर्यन्त कर्म सहायता पहुंचाता है। अन्तःकरण की शुद्धि के बाद भी अनुकूल वातावरण, सद्गुरु की प्राप्ति, शरीर का स्वस्थ रहना, जितने भी साधन हैं, ज्ञान की उत्पत्ति में सबको यह प्रदान करता है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और जब तक ज्ञान नहीं हो जाय तब तक यह चुप नहीं होता। इसलिए इन्होंने कहा कि ज्ञान की उत्पत्ति पर्यन्त कर्म का उपयोग है। केवल इससे अन्तःकरण की शुद्धि ही नहीं मानना।

अच्छा, ज्ञान होने के बाद कुछ लोगों की ऐसी धारणा होती है कि ज्ञानी को कर्म का फल नहीं मिलता है। न उसको पुण्य लगता है न पाप लगता है। असल में यह गलत धारणा है। ज्ञान किसी कार्य-कारण भाव को नष्ट नहीं करता है। ज्ञान तो केवल वस्तु के स्वरूप को बतलाता है। यदि ज्ञान के होने पर कर्म का फल न हो, यह बात मान लें तो फिर ज्ञान होने पर अग्नि जलाती है कि नहीं? जो यह कहते हैं कि ज्ञानी को पाप-पुण्य का असर नहीं होता है, तो क्या ज्ञानी के हाथ को अग्नि नहीं जलायेगी? और यदि ज्ञानी अन्न खाए तो उसकी क्षुधा की निवृत्ति होगी कि नहीं? तो कहना पड़ेगा कि सब होता है। तो ज्ञान ने अग्नि में जलाने की शक्ति दूर नहीं की तो फिर पाप-पुण्य के फल को कैसे मिटाएगा? पाप का फल दुःख और पुण्य का फल सुख है। तो ज्ञान का यह काम नहीं है कि वह किसी के कार्य-कारण भाव को बदल दे। कार्य कारण भाव तो ज्यों का त्यों है। संखिया में मारने की शक्ति है, ज्ञानी भी खाएगा तो मरेगा। इसी प्रकार जो शक्ति पदार्थों की होती है वह ज्ञान के बाद भी ज्यों की त्यों रहती है। उसमें कोई फर्क नहीं आता है। अब ज्ञानी को पाप नहीं लगता है। इसका तात्पर्य यह है कि ज्ञानी की पाप में प्रवृत्ति नहीं होती है। क्यों नहीं होती है? क्योंकि पाप में प्रवृत्ति काम और क्रोध से होती है। पाप करना स्वाभाविक नहीं है। स्वाभाविक होता तो सभी करते। बल्कि पाप का प्रवर्त्तक राग और द्वेष है। राग = सांसारिक सुख में प्रीति का नाम राग है। संसार में जो अधिक अरुचि है उसका नाम द्वेष है। मनुष्य राग और द्वेष के कारण पाप और पुण्य में प्रवृत्त होता है—

अथ केन प्रयुक्तोयं पापं च रति पूरुषः

जब अर्जुन का प्रश्न हुआ कि मनुष्य पाप में क्यों लगता है? इसको कौन प्रेरणा देता है? तो भगवान् उत्तर देते हैं—

काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः। गीता- ३-३७

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

काम-क्रोध, रजोगुण से उत्पन्न होकर मनुष्य को पाप में फँसा देते हैं। ये ज्ञानी में रहते नहीं इसलिए वह पाप नहीं करता। वार्तिककार ने लिखा है– मनुष्य अधिकारी तब बनता है जब उसकी सारी पाप वासनाएं शांत हो जाती हैं।

ज्ञानमुत्पद्यते पुंसाक्षयात् पापस्य कर्मणः.... ..

पाप की वासना निवृत्त हो जाए तब ज्ञान होगा न ? तो जब साधन काल में पाप नहीं होते तो फिर ज्ञानी में कहाँ से होंगे ? क्योंकि साधन काल में ही इनकी निवृत्ति कर देनी पड़ती है। यदि नहीं करना है तो उसको ज्ञान हो नहीं सकता। यह निश्चय हो गया कि ज्ञान की उत्पत्ति के पहले राग-द्वेष समाप्त करने पड़ते हैं। तो पुण्य-पाप की जड़ें तो वहीं कट गयी तो फिर ज्ञान के बाद पाप कहाँ से होगा ? इसीलिए कहा कि ज्ञानी को जब पाप की प्रवृत्ति ही नहीं होती तो फिर पाप कहाँ से लगेगा ? यह बात नहीं कि ज्ञानी पाप कर दे और उसको पाप नहीं लगे। हाँ, यदि ज्ञानकाल से पहले कोई पाप हुआ है तो वह ज्ञानी को नहीं लगता है। ज्ञानी के जो शत्रु या मित्र होते हैं, वह उनको मिल जाता है। जो ज्ञानी की सेवा करते हैं या उसके हितैषी हैं तो ज्ञानी का किया हुआ पुण्य उनको मिल जाता है, जो उसके पाप हैं वे उसके विरोधियों को, शत्रुओं को मिल जाते हैं। तो ज्ञानी के उन पाप-पुण्यों का तो लोप हो जाता है। पर ज्ञान के बाद वह पाप करे और उसको फल नहीं लगता है–ऐसी बात नहीं है। यह तो तभी मानते जब व्यावहारिक कार्य-कारण भाव को ज्ञान दूर करता। परन्तु ज्ञान व्यावहारिक कार्य-कारण भाव को दूर करता ही नहीं है। जैसे अज्ञान काल में आग हाथ को जलाती है वैसे ही ज्ञान काल में भी जलाती है। यह जो पदार्थों का कार्य-कारण भाव है उसकी निवृत्ति ज्ञान से नहीं होती। ज्ञान की महिमा यही है कि वह जानता है कि नाना कर्म बंधन में डालते हैं, और उनसे हमारा कोई सम्बन्ध भी नहीं है। इसीलिए उसमें वह प्रवृत्त भी नहीं होता। हाँ, प्रारब्ध के अनुसार उसको फल मिलता रहता है। उसको सुख भी होता है, दुःख भी होता है, क्योंकि निज प्रारब्ध का फल तो उसको ही भोगना है। उसको दूसरा नहीं भोगेगा। तो कर्म की निन्दा का अभिप्राय दूसरा है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न हि निंदानिंद्यम् निन्दितुं प्रवर्तते
अपि तु विधेयं स्तोतुम् ।

इसका अभिप्राय यह मत समझना कि कर्म करना ही नहीं। बल्कि यह समझना कि कर्म का फल मोक्ष नहीं है। जो लोग कर्म पर निश्चित होकर आगे के साधन को छोड़ दें, उनके लिए इसकी निन्दा की गई है। गीता में एक दो श्लोक ऐसे हैं जिससे लोग कर्म को ही सब कुछ मान लेते हैं—

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति, केचिदात्मानमात्मना ।
अन्ये सांख्येन, योगेन, कर्मयोगेन चापरे ।।

गीता- १३-२४

यह श्लोक जरा उनको बल देता है। कुछ ध्यान के बल से आत्मा का दर्शन करते हैं। कुछ लोग सांख्य योग से, विचार से करते हैं और कुछ कर्म योग से करते हैं। खासकर गीता प्रेस वाले इस पर ज्यादा जोर देते हैं। क्योंकि उनकी कर्म में अधिक आसक्ति है। इसलिए वो अर्थ करते हैं कि जैसे ध्यान आत्मदर्शन का स्वतन्त्र साधन है, विचार है। वैसे ही कर्म भी स्वतंत्र साधन है। यदि ध्यान और विचार नहीं करें तो कर्म के द्वारा भी आत्मदर्शन कर सकते हैं।

किन्तु कर्म आत्मदर्शन का हेतु नहीं है, सहायक जरूर है। जैसे दीपक की उत्पत्ति में तेल-बाती आदि कारण हैं वैसे ही ज्ञान की उत्पत्ति में कर्म सहायक मात्र है। इसीलिए पुण्य कर्मों को स्वीकार किया है। पुण्य कर्म यदि सकाम भाव से किया जाए तो वह पदार्थ हमको मिल जाएगा। किन्तु उससे तो अन्तःकरण को शुद्धि नहीं होगी। अतः पुण्य कर्म भी अन्तःकरण की पवित्रता के लिए करो। अतः कर्म में ऐसी श्रद्धा मत रखो कि हमको वह मुक्त कर देगा। और ज्ञान तथा उपासना को कोई आवश्यकता नहीं है। असल में वहाँ पर भगवान् ने ध्यान, विचार और कर्म तीनों को ज्ञान के लिए उपयोगी कहा है। ध्यान से एकाग्रता आती है, विचार वस्तु का निर्णय करेगा और कर्म अन्तःकरण को शुद्ध करेगा। यह कोई स्वतन्त्र साधन नहीं है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विचार सागर में लिखा है कि ज्ञान के साथ कर्म का अनुष्ठान नहीं हो सकता क्योंकि दोनों विरोधी हैं। परन्तु विरोधी नहीं हैं। ज्ञान के साथ कर्म का इतना ही विरोध है कि कर्म अकेले मुक्ति का साधन नहीं है। ज्ञान के साथ कर्म का अनुष्ठान हो सकता है। उन्होंने कहा है कि कर्म के साथ भेद की आवश्यकता होती है। कर्त्ता, कर्म और कारण का भेद अपेक्षित है। ज्ञान चूंकि भेद का बाधक है इसलिए ज्ञान के साथ कर्म नहीं चलता है। किन्तु भेद व्यावहारिक है। ज्ञान भेद का निषेध करता है। किन्तु भेद वास्तविक नहीं है। व्यावहारिक भेद को ज्ञान खंडित नहीं करता। नहीं तो फिर तो मनुष्य का खाना-पीना भी नहीं बनेगा। अगर कोई रोटी खाने लगे और सोचे कि मैं अलग हूं, रोटी अलग है, थाली अलग है, तृप्ति अलग है, तो यह भेद ज्ञान तो रहेगा ही। अगर ज्ञान सारे भेदों को मिटा दे तब तो रोटी, दाल, कटोरी, सब्जी, सारे एक हो जायेंगे। तो भेद नहीं रहता है, इसका अर्थ यह है कि पारमार्थिक भेद नहीं रहता है। ज्ञान पारमार्थिक भेद को हटाता है। व्यावहारिक भेद को ज्ञान नहीं हटाता है। जैसे भगवान् ने कहा—

विद्या विनय संपन्ने, ब्राह्मणे गवि हस्तिनी।
मुनि चंव स्वपाकी च पण्डिता समदर्शिनः॥

इसी श्लोक को सामने रखो। तो समान दृष्टि का अभिप्राय यह मत समझना कि हाथी और गाय एक हो गए। कुत्ता और ब्राह्मण को बराबर समझो। तो श्राद्ध आदि में ब्राह्मण को खिलाओगे हाथी, कुत्ते को नहीं।

कोई ज्ञानी हाथी से दूध तो नहीं लेगा और गाय पर सवारी भी नहीं करेगा। अतः ज्ञान व्यावहारिक भेद को नहीं मिटाएगा। यहाँ समता का अर्थ है कि किसी भी प्राणी में उसकी द्वेष बुद्धि नहीं रहती है। वह किसी को दुःख देना नहीं चाहता है। सबके हित में उसकी समबुद्धि है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुछ लोग ज्ञान के चक्कर में पड़कर कर्म छोड़ देते हैं। तो वह भी ठीक नहीं है। क्योंकि कर्म ज्ञान का सहायक है। कोई अत्यन्त अन्तर्मुख हो जाए और उसके कर्म छूट जायें तो बात दूसरी है।

हमने ऐसे महात्मा देखे थे जो सातवीं भूमिका में थे। उनको खाना भी दूसरे खिलाते थे, टट्टी-पेशाब भी दूसरे कराते थे। एक उनका सेवक था वह उनको पीठ पर चढ़ाकर ले जाता था। एक दफे क्या हुआ कि वह नहीं आया। कोई दूसरा आदमी दर्शन करने, नमस्कार करने चला गया। उन्होंने समझा वही होगा तो उसके ऊपर चढ़ बैठे। शरीर भी भारा था। वह आदमी कमजोर था, अब सोचे कि हो क्या गया? उन्होंने किया क्या? इतने में वो भगत आ गया तो वह भी बड़ा हैरान कि इस आदमी को दबा बैठे हैं। क्या बात है? फिर आवाज देकर उन्हें अपनी पीठ पर ले गया। किसी तरह उस बेचारे की जान बची। उसने पूछा कि तेरे को क्यों दबाया तो वह बोला– कुछ भी पता नहीं। मैंने तो नमस्कार किया तो दबा बैठे। तो उसने सारी बात समझा दी। तो किसी की वृत्ति इस तरह से हो जाये कि उसको अपने शरीर की भी सुधि नहीं रहे तो वह फिर पुण्य-पाप क्या करेगा? तो कर्म का विरोध केवल मुक्ति से है और किसी से नहीं है। और सब जैसा है वैसा चलता है।

अब जरा विचार कर लें कि कर्म करने का अधिकार किसको है, और किसको नहीं?

ॐ पूर्णमदः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शरीर आत्मा नहीं

अयं पुरुषः यदि आत्मानं विजानियात् ।

यदि यह पुरुष आत्मा को जाने, तो कौन किसको जाने यह प्रश्न है? फिर आत्मा को जानने का अर्थ क्या है? तो उसको समझाने के लिए उपनिषद् में इन्द्र और प्रजापति को कथा आती है—

प्रजापति ने जगत् की रचना करके और यह समझकर कि जब लोगों को सुख और शांति की आवश्यकता पड़ेगी तो दुःख से बचने के लिए उन्होंने यज्ञादि बनाये और उसका प्रचार किया।

य आत्मापहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः स सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान् यस्तमात्मानमनुविद्यविजानातीति ह प्रजापतिरुवाच ।। छा०- ८-७-१

जो आत्मा सम्पूर्ण पापों और दोषों से रहित है, इसीलिए दुःखों से भी रहित है। क्योंकि दुःख का कारण पाप होता है। पाप नहीं हो तो दुःख भी नहीं हो। क्योंकि कारण की निवृत्ति से कार्य की आत्यान्तिक निवृत्ति हो जातो है। यदि कारण रह जाये और कार्य की निवृत्ति हो जाए तो केवल निवृत्ति है। जैसे रोग की दो प्रकार को औषधि है। एक औषधि तो उसको ऊपर से दबा देती है, कुछ देर वह शांत रहता है परन्तु फिर खड़ा हो जाता है। एक औषधि ऐसी है जो मूल से रोग को नष्ट कर देती है। इसलिए कहा कि दुःख का कारण पाप है। तो पाप की निवृत्ति हो जाये तो फिर दुःख की आत्यांतिक निवृत्ति हो जाती है। दुःख आता ही नहीं है, और यदि पाप बना रहे तथा हम ऊपर से दुःख नाश का उपाय करें तो कुछ काल तक उससे दुःख दूर हो सकता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आत्मा ऐसी चीज है कि उसमें कोई पाप नहीं है, इसीलिए उसमें कोई दुःख भी नहीं है। पाप तो शरीरों में ही होते हैं। आत्मा उनसे अलग है इसलिए इसका पाप से सम्बन्ध नहीं। जरा और मृत्यु जो कि दुःख का कारण है, वह स्थूल शरीर में होता है। स्थूल शरीर बार-बार जन्मता और मरता है। सूक्ष्म शरीर एक बार ही मरता है। कारण शरीर भी एक बार ही मरता है, मरके फिर होता नहीं है। आत्मा तीनों शरीरों से पृथक् है। इसलिए उसको ज़रा, मरण, बुढ़ापे का दुःख नहीं होता है। आत्मा तो मन से भी परे है। क्षुधा, पीपासा प्राण के धर्म हैं। वह प्राणों से भी परे है, इसलिये उसमें भूख-प्यास नहीं। उसके लिये तो जो आत्मा आनन्द का धाम है, उसको खोजो। परिणाम क्या होगा कि वह सम्पूर्ण भोगों को प्राप्त करता है। ऐसा इश्तहार छपवाकर प्रजापति ने नारद को दे दिया। नारद जी उनके डाकिया हैं। बोले कि नारद जी यह खबर तीनों लोकों में पहुंचा आओ। नारद जी को कोई ऐसा काम मिलता है तो वे बहुत खुश होते हैं। देवताओं ने समझा कि इस विद्या को तो सीखना चाहिए क्योंकि मात्र एक के जानने से ही सकल मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं—

सर्वांश्चलोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान्

देवताओं ने मीटिंग किया और तय किया कि एक आदमी जाए और आकर यहाँ प्रचार कर देगा। तो इन्द्र को सर्वसम्मत से चुन लिया। असुरों ने अपने राजा विरोचन को– जो कि प्रह्लाद का पुत्र था, उसको चुना। इन्द्र और विरोचन दोनों प्रजापति के पास पहुंचे। प्रजापति ने देखा कि दो ही आये। तो ऐसी उत्तम साधन जिसको जानने से सकल मनोरथ सिद्ध हो जाये, परन्तु उसके ग्राहक आये दो। और कोई बात होती तो शायद लाखों आते। परन्तु ये भी किस भाव से आये हैं, जरा देखना चाहिये। उन्होंने सोचा दोनों राजा हैं, राजा को बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त होती है, तो जरा देखें कि इनकी कैसी लगन है। तो उन्होंने सोचा कि इनसे बात मत करो। अगर पूरी जिज्ञासा होगी तो रुकेंगे नहीं तो भाग जायेंगे। तो एक कोठरी में इन्द्र ठहर गये और एक में विरोचन। ऐसे प्रजापति छिपकर सब प्रबन्ध करते रहे किन्तु सामने नहीं आये। इस प्रकार ३२ वर्ष बीत गये। तब प्रजापति ने समझा कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इनको पूरी लगन है, नहीं तो दो-चार दिन में ही भाग जाते। पर इतना अपमान सहकर बैठे हैं तो जरूर इनको जिज्ञासा है। अब इनको कुछ विद्या दे देनी चाहिए। एक दिन प्रजापति सामने आ गये, इधर ३२ वर्षों में इनकी हालत खराब हो गयी। कपड़े गंदे हो गये, दाढ़ी बढ़ गई और तपस्वी जैसे रहे। दोनों ने नमस्कार किया। प्रजापति ने पूछा तुम कौन हो? कहाँ से आए हो? ३२ साल रहे वहाँ अभी यह भी नहीं पता कि कौन हो? कहाँ से आए? उन्होंने अपना उद्देश्य बताया वह परचा निकालकर दिखाया। तो हम उस आत्मा को जानने आये हैं।

य एषोऽक्षिणि पुरुषोदृश्यत एष आत्मेति होवाच
एतद् अमृतं एतद् अभयं एतद् ब्रह्म।

यह जो आँख में बैठकर पुरुष सारा प्रपञ्च देख रहा है, वही आत्मा है। ब्रह्म भी यही है। ब्रह्म नाम उसका है जो अमृत और अभय है। तो यही अमृत है, यही अभय है। समझे? हाँ, समझ गये। तो जाओ। अपने कमरे में आ गये। बड़े खुश हुए कि यह तो दो मिनट की बात है। तो इन्द्र ने कहा कि मैं जरा देख लूँ कि कैसा है? विरोचन को कहा कि तू बैठ मैं तेरी आंखों में देख लूँ। उसकी आँखों में देखा तो उसका अपना प्रतिबिम्ब ही दिखाई पडा। प्रतिबिम्ब, बिम्ब के उल्टा होता है। इन्द्र ने देखा कि सचमुच आँख में बैठा है और बाहर देख रहा है। तो देखकर प्रसन्न हो गया। अब विरोचन बोला कि अब तू बैठ मैं भी दर्शन कर लूँ। फिर इन्द्र बैठे। विरोचन ने उनकी आँख में देखा, उसने भी देखा कि आँख में बैठ कर बाहर देख रहा है। तो इन लोगों ने कहा कि अब तो अपना काम हो गया, अब चलना चाहिये। क्योंकि जो आँख में बैठकर देखता है, वही ब्रह्म है, उसका दर्शन हो ही गया। जब चलने लगे तो इन्द्र कहने लगे कि यह जो आँख में प्रतिबिम्ब होता है, यह तो दर्पण में भी होता है। तो वहाँ देखने के लिए प्रजापति ने क्यों नहीं कहा? आँख में ही देखने को क्यों कहा? कारण क्या है? आँख में कहने का जरूर कोई अभिप्राय है। चलो जरा पूछ लें। तो फिर वापस आये। प्रजापति ने पूछा, अब क्यों आये हो? तो कहा, एक शंका है कि आँख में जो दिखाई दे रहा है, वही आत्मा है, तो जो दर्पण में बैठा है अथवा जल में दिखता है, वह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कौन है ? तो बोले—वह तो सर्वव्यापी है। वह दर्पण में भी है और जल में भी है। उन्होंने बात फेर दी। वह तो सब जगह है। फिर उनको ख्याल आया कि अरे ये तो प्रतिबिम्ब को आत्मा समझ लिये। यह तो गलत बात है। अब नाम बदनाम हमारा करेंगे। उन्होंने फिर इन्द्र और विरोचन को बुलाया, ऐसा करो कि तुम जलपात्र लेना और उसमें देखना, उसमें वह नजर आएगा, उसमें कोई शंका हो तो पूछ लेना। गए जल का कटोरा पानी से भरा, उसमें देखा तो आत्मा और बड़ा नजर आया। आये प्रजापति के पास, क्यों भाई क्या देखा। बोले कि यह तरीका बढ़िया है, उसमें तो छोटा सा दिखाई पड़ा, इसमें पूरा नजर आया। वे बोले जरा कपड़े साफ कर लेना, बाल कटवा लेना और आभूषण आदि पहन कर तब फिर देखना। बोले बहुत अच्छा फिर सुसज्जित होकर देखे तो वह भी वैसा ही है। बोले कैसा है ? तो पहले जरा मैले-कुचैले कपड़े वाला था, अब जरा साफ-सुथरा नजर आया। समझे कुछ ? अब तो कोई कसर रह नहीं गई ? अब हम जाते हैं। तो जाओ। दोनों चले आये। तो विरोचन ने यही निश्चय कर लिया कि यह शरीर ही आत्मा है। इन्द्र थोड़ा विचार में लगा कि आत्मा शरीर नहीं है।

यहाँ तक की कथा में दो-तीन बातें हमको सिखाई गयीं। एक तो यह सिखाया गया कि पास चाहे संसारी ऐश्वर्य जितना भी हो जाये, वह उससे तृप्त नहीं होता है। इन्द्र और विरोचन को क्या कमी है ? उनके संकल्प से सारी बातें दूर हो जातो हैं। उनके पास कल्प वृक्ष, कामधेनु, चिन्तामणि आदि हैं। उनसे मनोवांछित फल प्राप्त कर लेते हैं, फिर भी उनको संतोष नहीं है। पर जब प्रजापति का पर्चा गया तो उनको भी इच्छा हुई कि सीखना चाहिए। जब देवराज भी तृप्त नहीं तो आदमी की क्या बात ? दूसरी बात यह है कि मनुष्य को या जिज्ञासु को धैर्यशाली, सहनशील और पूरी लगन वाला होना चाहिए। जैसे इन्द्र विरोचन नाना प्रकार के कष्ट सहकर वहाँ रहे।

किन्तु प्रजापति के कहने का भाव दूसरा था और उन्होंने उसका दूसरा अर्थ ले लिया। ये समझे शरीर आत्मा है। तो शरीर तो आँखों में बैठकर नहीं न देख रहा है, बल्कि आँखों के अन्दर या सारी इन्द्रियों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

में बैठकर जो कार्यों को कर रहा है, वह अलग है। ये तो नाना कारण हैं। किन्तु इनसे जो काम लेने वाला है उसका नाम आत्मा है। तो उन्होंने कहा कि जो जाग्रत का आत्मा है वही है। इससे यह सिद्ध हो गया कि शरीर आदि से परे वह आत्मा तत्व है। किन्तु प्रजापति के भाव को उन्होंने दूसरे ढंग से लिया।

विरोचन जब गया तो उसका बहुत स्वागत हुआ। उसने भाषण दिया कि प्रजापति ने बताया है कि यह शरीर ही आत्मा है। इसी को ठीक से रखो, इसी में मोक्ष है। यही कैवल्य है। अतः तुम लोग इसी को सेवा करो। इसी की देख-रेख करो। इसको देहात्मवाद बोलते हैं। यानी देह को ही अपना स्वरूप मान लेना और इसी के लालन-पालन में लगे रहना। असुरों को यही शिक्षा दी उसने। उसमें एक चालाक था, वह बोला कि शरीर ही यदि आत्मा है तो यह नष्ट क्यों हो जाता है? क्योंकि आत्मा तो अभय और अमर है, किन्तु यह शरीर तो न तो अभय है न अमर। यह तो मरने वाला है, उसको हजारों भय हैं? वह बोला कि यह मरता नहीं है। सो जाता है। तो दो प्रकार की नींद है। एक बार तो सोया और जाग गया, और एक बार सदा के लिए सो गया। यह विरोचन मत है। इसको देहात्मवाद कहते हैं। इसको ईसाई, मुसलमान, यहूदी आदि मानते हैं। वे शरीर को इसीलिए एक बक्स में बंद करके धरती में डालते हैं कि शायद कभी नींद से जग जाये।

इन्द्र थोड़ा सात्विक बुद्धि वाला था। उसने सोचा कि प्रतिबिम्ब आत्मा नहीं हो सकता है। जब उसके मन में शंका हुई तो फिर प्रजापति के पास पहुंचा। प्रजापति ने निराकरण किया।

ओम् कर्णेभि।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संसार की मिथ्यत्व सिद्धि

जो असली सुख है वह परमात्मा का ही है। क्योंकि परमात्मा सुखरूप है—

उक्त साधन युक्तेन विचारः पुरुषेण हि।
कर्तव्यो ज्ञानसिद्धयर्थमात्मनः शुभमिच्छता॥

अपरोक्षानुभूति- १०

जो अपने आत्मा का कल्याण चाहे, अर्थात् जो जन्म-मरण के चक्कर से छूटना चाहता है तो उसका एक ही रास्ता है। उक्त साधन जो विचार, विवेक आदि हैं, उन साधनों से सम्पन्न होकर और ज्ञान प्राप्ति के लिए अपने स्वरूप को पहचानने के लिए वह विचार करे। उसके पश्चात् आत्म कल्याण होगा।

यानी जितने भी पुण्य कर्म हैं उसे संसारी फल के लिए भी किया जाता है और आत्मशोधन के लिए भी किया जाता है। जो मनुष्य संसारी फल के लिए करता है, उसे संसारी फल भी मिलता है और जो फल नहीं चाहता है उसे परमात्मा अपनी इच्छा से उत्तम फल देता है यानी परमात्मा कहता है जो इच्छा हो माँग लो, और जो माँगो वह दे देता है। और दूसरा कहता है हमें तो कुछ नहीं चाहिए, आपकी जो मर्जी हो वही दे दो। तो देने वाला अच्छी चीज देगा न? निकम्मी चीज क्यों देगा? माँगने पर तो वही देता है, जो माँगो और नहीं माँगने पर या उसी पर छोड़ देने पर वह उत्तम वस्तु देता है। उसी तरह जब पुण्य कर्म करते हैं और उसका फल अपनी इच्छानुसार परमात्मा से माँगते हैं तो भगवान् उसे देता है और भगवान् के ऊपर छोड़ देते हैं तो भगवान् फिर उसका उत्तम फल देते हैं। उत्तम फल अन्तःकरण की शुद्धि है। अविनाशी फल की प्राप्ति अन्तःकरण की शुद्धि से सुलभ होती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसीलिए लिखा है कि—

स्व वर्णाश्रम धर्मेण तपसा हरितोषणात् ।
साधनं प्रभवेत्पुंसां वैराग्यादि चतुष्टयम् ।।

भगवान् जब किसी मनुष्य के कर्तव्यों को देखते हैं कि इसने कर्तव्य ठीक से किया और कुछ माँग भी नहीं रहा है तो अपनी मर्जी से उसे अच्छी से अच्छी चीज देते हैं। यानी उसको भगवान् वैराग्य चतुष्ट्य आदि साधन देते हैं। जिससे कि उसकी तृष्णा मिट जाए। तो यह भगवान् की कृपा का फल है और उसी मनुष्य की प्रवृत्ति फिर आगे बढ़ती है। अगर कुछ माँगना अति अनिवार्य है तो माँग ले परन्तु ऐसी आदत नहीं डालनी चाहिए। हमेशा सकाम कर्म करने की आदत ठीक नहीं। माँगने से भगवान् भी तंग आ जाते हैं। किसी कवि ने लिखा है कि माँगना सबसे खराब है—

तृणादपि लघुस्तूलः
तूलादपि च याचकः।

तृण सबसे हल्का है, तिनके से भी हल्की रुई है और याचक उससे भी हल्का है। मतलब यह कि जो माँगता है उसकी इज्जत नहीं होती और जो नहीं माँगता वह आदर का पात्र होता है।

तो यह कहा कि माँगने वाले से देवता भी तंग आ जाते हैं। यानी कभी अति आवश्यकता पड़े तभी माँगें अन्यथा जहाँ तक हो सके निष्काम कर्म करे और फल भगवान् पर छोड़ दे। भगवान् कल्याणार्थ वैराग्य देते हैं। भगवान् शब्द का अर्थ है: जो भग् से युक्त हो। भग् में छः वस्तुएँ होती हैं। यानी जिसमें यह छः वस्तुएँ हों, वही भगवान् हैं। निम्नलिखित छः वस्तुएँ हैं—

धर्म, ऐश्वर्य, वैराग्य, ज्ञान, यश और शोभा।

भगवान् में यह छः वस्तुएँ पूरी होती हैं। मनुष्य के पास भी धन है, विद्या है पर पूरा नहीं। ब्रह्म में यह सारी बातें पूर्ण होती हैं। ब्रह्म

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शब्द का अर्थ ही है पूर्ण। धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, यश और शोभा इनमें कई वस्तुएँ सहयोगी और कुछ परस्पर विरोधी भी हैं। वैराग्य और धर्म का कोई विरोध नहीं है पर त्याग और ऐश्वर्य से विरोध है। त्याग होने पर ऐश्वर्य नहीं हो सकता पर वैराग्य होने पर भी ऐश्वर्य हो सकता है। और वैराग्य नहीं होने पर भी ऐश्वर्य हो सकता है। तो वैराग्य का ऐश्वर्य से विरोध नहीं है पर त्याग का ऐश्वर्य से विरोध है।

तो वैराग्य क्या है— वैराग्य का अर्थ यह है कि उसमें पदार्थों की पराधीनता नहीं है। पदार्थ हो तब भी प्रसन्न, पदार्थ नहीं हो तब भी प्रसन्न। यही वैराग्य का फल है।

परमात्मा के पास छः गुण पूरे हैं। भगवान् यह समझता है कि ऐश्वर्य बन्धन का हेतु हो जाता है, यदि वैराग्य न हो। राग हो जाए तो बन्धन, जो दुःख का कारण है। इसीलिए भगत को भगवान् वैराग्य देते हैं। रागी को वह पदार्थ नहीं देते हैं। जिसमें वैराग्य हो गया है, उसको वह पदार्थ देता है। क्योंकि वह समझता है कि वैराग्यवान् को पदार्थ से कोई हानि नहीं होना है। भगवान् जब कृपा करते हैं तो तीन चीजें देते हैं—

१— विवेक
२— वैराग्य और
३— मुमुक्षा

इनको दैवी सम्पत्ति कहते हैं। रुपया-पैसा, धन आदि को मानुषी सम्पत्ति कहते हैं। मानुषी सम्पत्ति इसलिए कि जिसके पास में धन होता है, लोग उसका मान करते हैं। शराब पियेंगे, जुआ खेलेंगे और फर्स्ट क्लास का टिकट लेकर गाड़ी में बैठेंगे तो उन्हें कोई नहीं रोकेगा। जहाँ चाहें वहाँ चले जायें। यही मानुषी सम्पत्ति का प्रभाव है। दूसरी ओर कोई बड़ा धर्मात्मा आदमी बिना टिकट गाड़ी में बैठ जावे तो गाड़ी वाला उन्हें नीचे उतार देगा। उसी प्रकार होटल में, सिनेमा में जहाँ चाहें वे पैसे के बल पर जा सकते हैं। परन्तु अपन जहाँ जायें वहीं रोका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाएगा। मानव लोक में सोना, चाँदी, सम्पत्ति की कद्र है।

वह जो वैराग्य, विवेक आदि हैं, उसे दैवी सम्पत्ति कहते हैं। अर्थात् देवताओं के यहाँ उनकी कदर होती है। जब आदमी शरीर छोड़कर जाता है तो यमराज पूछता है बोलो क्या कमा लाए? तो वहाँ नोटों का बंडल थोड़े दिखाते हैं कि हम यह कमा ले आए हैं। वहाँ मानुषी सम्पत्ति की कोई कद्र नहीं, कोई पूछ नहीं। भगवान् के भजन के बिना यमराज और कोई कमाई नहीं मानता। अगर वह धर्मात्मा है, न्यायी है, तो यमराज अपना आसन छोड़ देगा। उसका सत्कार करेगा। इसी-लिए भगवान् भक्तों को दैवी सम्पत्ति देता है कि वह किसी भी लोक में जाए तो प्रसन्न रहें, आदर का पात्र रहें। वह सच्ची चीज हुई न? क्योंकि शरीर के बाद भी साथ गई।

भगवान् प्रसन्न होकर विवेक, वैराग्य आदि देते हैं। गंगा स्नान आदि धार्मिक कार्य भी सकाम होकर करने की निन्दा की गई है।

एक कथा आती है कि एक पंडित के घर एक लड़का पैदा हुआ। लड़का जन्म से अन्धा था। बड़ा हुआ तो विवेक, वैराग्य की बातें करने लगा। लोग उसकी बातें सुनने के लिए उसके पास बैठते थे। एक दिन कोई पूछ बैठा कि आपकी बातें तो बहुत अच्छी हैं परन्तु आप अन्धा क्यों हुए। अन्धा होना तो किसी पाप का फल है। उसने कहा कि हमने कोई पाप नहीं किया। तो फिर अन्धा क्यों हुए? मेरा बाप अन्धा था, इसलिये अन्धा हूं। बाप भी बैठा सुन रहा था। उसने कहा कि कैसा झूठ बोल रहा है, हमारी आँखें तो ठीक हैं। उसने कहा कि बाहर से तो ठीक हैं पर अन्दर की आँखों से तुम अन्धा हो। मन की आँखें नहीं हैं। जो माँगनी थी वह नहीं माँगी, जो नहीं माँगनी थी वही माँग ली। कहते हैं पंडित को जब कोई संतान नहीं थी तो उसने प्रयागराज में जाकर माघ में त्रिवेणी में नाभि तक जल में खड़ा होकर तपस्या की। सारा माघ का महीना गुजर गया। जब त्रिवेणी प्रसन्न हुए तो बोले कि वर माँगो। उसने पुत्र माँगा। त्रिवेणी ने वर दे दिया। त्रिवेणी सोचने लगे यह कैसा अन्धा आदमी है, यह उत्तम भक्ति माँग सकता था किन्तु इसने माँग लिया पुत्र। तो पुत्र तो बिना जप-तप के भी होते हैं। पशु-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पक्षी कौन-सा तप-जप करते हैं और उनको भी संतान खूब होती है। तो पुत्र के लिए भगवान् का दरवाजा खटखटाना कहाँ के ज्ञान की बात है। तो जब त्रिवेणी प्रसन्न हुए तो इसको जन्म-मरण का अभाव माँगना चाहिए था पर इसने पुत्र माँग लिया। तो है न अकल का अन्धा ? इसी-लिए हमको अन्धा होना पड़ा। यह हमारा पाप नहीं है। कारण के गुण कार्य में आ जाते हैं। तो मतलब यह हुआ कि तुच्छ चीजों के लिए इतने बड़े साधन को खराब नहीं करना चाहिये। इसलिए कहा है—

जो धन संचय होय धन
संत जनों का निर्मल मन।

यह जो असली धन है दैवी सम्पत्ति है। इसी का संचय करो। इसी में धनी हो जाओ। और यह जो रुपया पैसा वाला लौकिक धन है, वह तो आने-जाने वाली चीज है और उससे पेट भी नहीं भरता। लखपति भी भूखा, करोड़पति भी भूखा और अरबपति भी भूखा। तो फिर माँगने से क्या फायदा ? तो इसीलिए सभी पुण्य करो परन्तु उसका फल अपने स्वरूप को प्राप्ति ही होना चाहिए। यदि यह नहीं हुआ तो सारे पुण्य कर्म निष्फल ही जानो।

जैसे खेत में बीज डालना है तो खेत को साफ करते हैं। खेत में हल चलाया, घास निकाला और फिर बीज डाला। तो खेत को इसलिए साफ किया जाता है कि उसमें बीज डालना है। घास आदि रहे और बीज डालें तब भी कोई फल नहीं और खेत को सुन्दर तैयार करके उसमें बीज न डालें तब भी कोई फल नहीं। इसी प्रकार शुद्ध अन्तःकरण हो जाये और विचार नहीं करो तो यह भी ऐसा हो हुआ जैसे खेत को साफ तो किया पर बीज डाला ही नहीं। तो ज्ञानरूपी जो खेत उसका बीज है विचार। इसीलिए कहते हैं कि तुम विचार करो। विचार करने से निष्कर्ष निकलता है कि परमात्मा जगत् के अन्दर ही छिपा है जैसे सोना में आभूषण छिपा है। पृथ्वी में घास छिपी है जो खेत को ढक लेती है, पैदा होकर जमीन को ढक लेती है। उसी प्रकार काई जल में पैदा होती है और जल को ढक लेती है। बुद्धिमान पुरुष घास को साफ करता है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

और काई को हटाकर जल का दर्शन करता है।

इसी तरह यह जो जगत् है यह परमात्मा से ही उत्पन्न होता है और परमात्मा को ही ढक लेता है। तो इस जगत को हटाकर परमात्मा का दर्शन किया जा सकता है। इसीलिए संतों ने इसको मिथ्या स्वप्नवत् कहा है। इसमें अपनी बुद्धि को नहीं लगने दो। इसमें अपना समय बर्बाद न करो। इसके नामरूप का त्याग कर दो। इसको उतना महत्व न दो। इससे अधिक प्रेम मत करो जितने से कि हमारा व्यवहार चलता है, जो प्रेम बचता है वह भगवान् में लगा दो।

उपादानं तदैतस्य।

जैसे घट आदि का उपादान आदिकारण मृतिका है। इसी प्रकार इस जगत् का उपादान कारण ब्रह्म है। उसी का नाम आत्मा है, वही परमात्मा है। जैसे जल में तरंगें उठती हैं और उसी में खत्म हो जाती हैं। उसकी उत्पत्ति, उसका रहना और उसका लय जल में ही होता है। इसी प्रकार जैसे आभूषण सोने में पैदा होता है, सोने में रहता है और सोने में समाप्त हो जाता है। उसी तरह यह जगत परमात्मा में उत्पन्न हुआ, उसी में रहा और फिर उसी में लीन भी होता है। तो उसी के अन्दर इसको खोजना है।

प्रश्न यह है कि कैसे खोजें? तो नामरूप जो आवरण है उसको हटायें तब उसका वास्तविक दर्शन होता है। जैसे काई के हटाने से जल दर्शन हो जाता है, तो भगवान् के भजन, साधन आदि में बाधा आती है। बाधा अपने स्वाभाविक रूप से आती है और हम समझते हैं कि भगवान् का भजन कर रहे हैं इसलिए आ रही है और घबड़ा कर साधन छोड़ देते हैं। बहुत वार ऐसा देखा जाता है कि आदमी जब भजन में लगता है तो उसका पुत्र मर जाता है, धन नष्ट हो जाता है, शरीर अस्वस्थ हो जाता है परन्तु इसका कारण भजन नहीं है। यह तो अपने पूर्व के निर्श्चित क्रम में आ रहा है। संसार में रहोगे तो संसार के पदार्थों में तो परिवर्तन होना है। यह बनते-बिगड़ते रहते हैं यही इनका स्वभाव है—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
गीता- २-२०

जन्म लेना, रहना, बढ़ना, छीजना, नष्ट होना, यह पदार्थों के छः विकार हैं। यह तो होते ही रहते हैं। जो भजन नहीं करते हैं उनके भी बच्चे मरते हैं, धन नष्ट होता है और शरीर पर बाधा आती है। और जो भगवान् का भजन कर रहा है उसका भी हो रहा है तो इसमें आश्चर्य क्या है? किन्तु हमारा मन इतना कमजोर है कि उससे घबड़ा कर हम साधन, भजन को ही छोड़ देते हैं और इसी को बाधा का कारण मान लेते हैं। इसीलिये ज्ञानी और भक्तों के चरित्र सुनाए जाते हैं कि उन्होंने आपत्ति आने पर अपने साधन नहीं छोड़े। संत तुलसीदास ने लिखा है कि—

धीरज, धर्म, मित्र अरु नारी,
आपतकाल परखिए चारी।

यह आपत्ति तो इनकी परीक्षा के लिए आती है। सम्पत्ति में तो धर्म कर रहा है आपत्ति में कर रहा कि नहीं। मित्र सच्चा है कि बनावटी, यह तो आपत्ति में ही पता चलता है। आपत्ति आने पर जो साधन को दूना कर दे, वही असली साधक है। भक्त बड़े गरीब हुए। इतने गरीब कि उनका दुःख सुनकर हमारे रोंगटे खड़े हो जायें।

कबीर जी की कथा आती है कि वे गरीब परिवार में पैदा हुए थे। संतों से उनका बड़ा प्रेम। उनके स्त्री का नाम लोई था। लोई से कह रखा था कि कोई संत आवे तो पूरी सेवा करना कि संत प्रसन्न होकर जावे। एक दफे आठ दस संत आ गए। अब उसके घर में कुछ नहीं। अन्न है ही नहीं। फिर भी बैठाया। पूछा महाराज भोजन, तो हाँ भोजन तो करेंगे। तो उन्होंने लोई को बुलाया। कहा कि संत आए हैं। खाने का कुछ इन्तजाम करो। उसने कहा कि घर में तो कुछ है नहीं। तुम बाजार से लाओ। मेरे पास तो पैसा भी नहीं। वह उधार लाने गई। लोग उसकी गरीबी जानते थे। इसीलिए किसी ने उधार नहीं दिया। अब बेचारी लौट रही थी तो देखा कि एक आदमी बैठा था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वह पैसा वाला था किन्तु बुरी नियत वाला था। उसने कहा कि संतों के लिए कुछ आटा चाहिए दे दो। उसने कहा कि अगर तुम रात में हमारे पास आओ तो दस तो क्या हम सौ के खाने का सामान दे देंगे। उसने कहा कि कोई बात नहीं। उसने सब सामान दे दिया। संतों को खूब खिलाया। संत प्रसन्न होकर चले गए। रात आई तो कबीर को खिलाकर लोई चली। कबीर ने पूछा क्या बात है? कहाँ चली? तो उसने बताया कि मैं तो इस तरह लाई हूं। उसने शर्त लगाई है कि एक रात मैं उसके घर रहूं। कबीर ने कहा कि तू अकेले क्यों जा रही है मैं तुमको ले चलूँगा। उस रात मूसलाधार पानी पड़ रहा था। न छाता है, न जूता है। कबीर लोई को अपनी पीठ पर चढ़ाकर ले चले। बारिश में जाते हैं। उसके पास पहुंच गये। आवाज दी तो वह आया। लोई ने कहा कि लो हम तो आ गये। वह बाहर निकला देखा कि भयंकर वर्षा हो रही है। परन्तु अपने सत्य और भगवान् की कृपा से न तो कबीर भीगे हैं न लोई। यह कोई मनुष्य है कि कोई देवता है? उसके मन के भाव बदल गए। उसने उनको बैठाया और लोई के चरण पकड़ कर बोला कि तुम्हारा जो पुत्र कमाल है न? तो एक पुत्र तो वह है और दूसरा पुत्र मैं हूं। मुझसे गलती हुई मुझे माफ कर देना और आज से जो चीज चाहिए और जितनी चाहिए हमसे ही ले जाना। अपना पुत्र समझकर यहाँ से ही सारा सामान ले जाना। अब देखो यह बेचारा कितना निर्धन है कि एक आदमी को रोटी भी नहीं खिला सकता। किन्तु यह बात उनके (कबीर) मन में कभी नहीं आयी कि मैं भगवान् का इतना भजन करता हूं और फिर भी निर्धन हूं। क्योंकि वह जानता है कि संसार में जिसको जितना पदार्थ मिलना है उतना ही उसको मिलेगा। अतः उसके लिए व्यर्थ चिन्ता क्यों करो।

जो धीरज रखता है और साधना में लगा रहता है वही असली साधक है। ऐसे लोग भी हैं जो भगवान् को नौकर समझते हैं। जैसे हम किसी आदमी की नौकरी करते हैं तो नौकरी तो तनख्वाह के लिए करते हैं? जब वह तनख्वाह बन्द कर देता है तो हम नौकरी छोड़ देते हैं। जब मनुष्य इस दृष्टि से भगवान् की सेवा करता है कि मेरे को अमुक चीज मिले। तो भगवान् समझते हैं कि यह मेरा भगत थोड़े है, यह तो पदार्थ का भगत है। जैसे आदमी नौकरी करता है पेट के लिए तो वह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पेट का भगत हुआ न ?

एक आदमी वैष्णो सम्प्रदाय का था। उसने एक मन्दिर बनवाया। उसे शिवजी के भक्तों से बहुत नफरत थी। एक ब्राह्मण बेचारे को कहीं कुछ नहीं मिला तो उस सेठ के पास गया कि यह कोई काम मन्दिर में दे देगा। हमारे पास कोई जगह नहीं है। वह लौटने लगा। द्वारपाल ने पूछा, क्या हुआ ? तो बोला जगह नहीं है। वह बोला कि जगह है पर तुमने तो यह तिलक लगाया है, इसलिए नौकरी नहीं मिली। तुम ऐसा तिलक लगाओ तो जगह मिल जायेगी। वह आदमी बड़ा चतुर था, माथे पर शिवजी का तिलक लगाया और पेट पर वैष्णव वाला तिलक लगाकर फिर गया। तीन-चार तिलक पेट पर लगाया। अब जाकर सेठ जी से बोला कि अब तो नौकरी दो। तो सेठ जी ने पूछा कि यह तुमने क्या किया, सिर पर तो त्रिकोण और पेट पर वैष्णव का तिलक, यह क्या ? उसने कहा कि देखो हमारे दिमाग में तो शिवजी हैं, पर पेट खाली है। अतः पेट के लिए मैंने यह तिलक लगाया, इसीलिए तुम्हारे पास आया। तो उसने एक छोटा सा काम दे दिया।

तो वह सेठ के पास क्यों गया, पेट की भूख मिटाने वास्ते न ? इसी प्रकार लोग पेट की भूख मिटाने वास्ते ही भगवान् के पास जाते हैं। जैसे वह पेट का पुजारी था, सेठ का नहीं। वैसे ही जो भगवान् से धन आदि माँगते हैं, तो भगवान् समझते हैं कि वह हमारा भगत् थोड़े ही है, यह तो पदार्थ का भगत् है। जो ऐसी भक्ति है, वह भगवत् भक्ति नहीं है। उसका पता तब चलता है जब कि वह बिना कुछ मिले भी भक्ति कर रहा है कि नहीं। जैसे तनख्वाह लेकर काम करता है वह तो तनख्वाह के लिए करता है, परन्तु जो बिना तनख्वाह के सेवा करता है, सच्चा भगत् तो वही है न ? तो भगवान् सोचता है—

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमांगतिम्॥
गीता-७-१८

तो भगवान् सबको अच्छा ही मानता है। चलो माँगता भी है तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भगवान् से ही। इतनी बात लेकर हम उसको अच्छा कह देते हैं। वास्तव में असली भक्त जो है, उसे भगवान् संसारी पदार्थ दे तब भी वह नहीं ले। वह कहे कि हमें कोई पदार्थ नहीं, हमें तो आपके चरणों की जरूरत है। तो वही सच्चा भगत् है। पहले तो मनुष्य संसार के पदार्थ के लिए भगवान् की शरण में जाता है पर शनैः शनैः पदार्थों से उसकी कामना हटती जाती है और धीरे-धीरे सिर्फ भगवान् के चरणों में उसका मन लग जाता है। यों आपत्ति, संकट को सहता हुआ, वह उसकी चिन्ता नहीं करता, होता है तो होने दो। यह तो संसार में होता ही है। उसकी परवाह न करके भगवान् में लगा रहे तो अन्त में ऐसी वृत्ति हो जाती है। पर ऐसी वृत्ति तब होती है जब यह निश्चय हो जाय कि संसारी पदार्थ स्वप्न के समान हैं। यह मिले तो क्या और नहीं मिले तो क्या ? जीवन निर्वाह के लिए थोड़ा परिश्रम कर ले। वो परमात्मा घंटे में भी पूरा कराता है और दो घंटे में भी। जीवन निर्वाह की जिम्मेवारी तो भगवान् पर है। पर पदार्थों को जमा करके उसका मालिक बनाने की जिम्मेवारी भगवान् पर नहीं है।

इसीलिए कहा है कि मनुष्य पुण्य कर्म करता रहे और इनसे किसी भी प्रकार की इच्छा न रखकर, भगवत् प्राप्ति, आत्मज्ञान की इच्छा रखे। वह मिले चाहे न मिले। चाहे कितना ही संकट क्यों न आवे पर अपने साधन में लगा रहे। भगवान् उसकी निष्ठा देखकर स्वयं प्रगट होते हैं। ऐसे तो प्रत्येक कहते हैं कि हमको मोक्ष मिल जाए। लेकिन भगवान् पहले ही देख लेते हैं कि इसकी रुचि किधर है ? मेरी ओर कि पदार्थों की ओर। अगर पदार्थों में रुचि होती है तो पदार्थ वह देता रहता है, अपना वह छिपा रहता है। अपने से उसको वह दूर रखता है। जब देखता है कि पदार्थों से इसकी तृप्ति हो गई तो भगवान् की उस पर कृपा होती है। कुछ चमत्कार उसको प्राप्त होता है फिर शनैः शनैः उसकी उन्नति होती है।

इस तरह यह जो पुण्य कर्म हैं, वे संसार से हटाकर भगवान् में लगाने के साधन बन जाते हैं। सत्संग, भजन आदि करके वह तृप्त हो जाता है जब भगवान् का दर्शन होता है तो मनुष्य के जितने भी बन्धन होते हैं सब खुल जाते हैं—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ।।

मुण्डक- २-८

इसमें तत्व ज्ञानी के हृदय की स्थिति दिखाई। क्योंकि भगवत् प्राप्ति की स्थिति भी लोगों ने कई प्रकार मानी है। मोक्ष भी कई प्रकार के मानते हैं। जैसे सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य आदि-आदि।

पर असली मोक्ष का रूप क्या है। उसका स्वरूप भी पहचान लें। जिससे कि हमको भटकना न पड़े। दूसरों के कहने पर न चलना पड़े। भगवद् प्राप्ति के बाद मनुष्य की क्या स्थिति हो जाती है, उस पर भी थोड़ा विचार कर लें, जिससे कि हम यह अनुभव कर सकें वह भगवत् प्राप्त है और मोक्ष का अधिकारी है। मोक्ष तो किसी ने देखा नहीं, पर जीवनकाल में चित्त की स्थिति का पता चल जाता है, क्योंकि चित्त निरोध की जो बात है वह इसलिए की जाती हैं कि मोक्ष कैसा होता है। मुक्ति में चित्त की क्या अवस्था होती है, उसको प्रत्यक्ष अनुभव कराने के लिए समाधि होती है। जैसे जब मनुष्य की सारी आवश्यकताएँ पूर्ण हो जायें तो उस समय मन की जो स्थिति रहेगी, वैसा ही मोक्ष है—

आपूर्यमाणमचल प्रतिष्ठं
समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे
स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ।।

गीता- २-६०

जैसे समुद्र है जो किसी नदी से यह नहीं कहता कि तुम मेरे लिए पानी लाओ। परन्तु पानी उसमें जाता रहता है। वह अपने आपमें मस्त है। वह पानी का ख्याल भी नहीं करता है। ठीक इसी तरह से अपने स्वरूप में इतना मस्त रहता है, इतना तृप्त रहता है कि वह तो शरीर के लिए जो आवश्यक पदार्थ हैं, उनकी ओर भी उसका ध्यान नहीं जाता है। उसके प्रारब्ध और कर्म स्वयं उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, बिना उसकी कामना के भी सारे विषय उसके पास जाते ही हैं, फिर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भी वह नहीं देखता कि क्या आया क्या नहीं। जैसे समुद्र में पानी डालना नदियों का काम है। समुद्र यह नहीं कहता कि तुम पानी डालो। उसी तरह यह काम तत्व-ज्ञानी के प्रारब्ध को करना है। यह काम ज्ञानी का नहीं है कि मेरे को इतना पदार्थ चाहिए। ऐसी स्थिति हो जाये कि मन शान्त रहे। कम आये तब भी शान्त, अधिक आए तब भी शान्त। यही स्वरूप-स्थिति है। यही तत्व-ज्ञानी को स्थिति होती है। पञ्चदशीकार ने इस बात को समझाया है—

ज्ञानिनोऽज्ञानिनश्चात्र समं प्रारब्ध कर्मणी।
नक्लेशो ज्ञानिनोधैर्यान्मूढः क्लिश्यत्यधैर्यतः॥

तृप्तिप्रकरण- १३३

प्रारब्ध भोग ज्ञानी, अज्ञानी दोनों को भोगना पड़ता है। परन्तु फर्क इतना ही है कि ज्ञानी उधर ध्यान नहीं देता कि मेरे को कौन पदार्थ मिला कि नहीं मिला। अज्ञानी उधर ख्याल रखता है कि अमुक पदार्थ आया, अमुक नहीं आया। थोड़ा आया तो क्यों, और नहीं आया तो क्यों? इन सब कल्पनाओं में फँसकर वह अपने स्वरूप से वंचित हो जाता है। लहरें आने पर जसे पानी हिल जाता है। उसी प्रकार मन में जब विकार होने लगते हैं तो मन चञ्चल हो जाता है। इसीलिए कहा कि मोक्ष की स्थिति का यदि अनुभव करना है तो तुम अपनी चित्त की कल्पना को शान्त कर दो। मन शान्त दो प्रकार से होता है—

१— जितना पदार्थ हमको मिलना है, हमको मिल जाये।
२— हमारे मन में कोई कामना ही नहीं रहे।

तो जितनी कामनाएँ हैं, जितनी आवश्यकताएँ हैं, सब पूरी हो जायें, यह तो परमात्मा पर निर्भर है। क्योंकि कामनाओं का कोई अन्त नहीं सिर्फ परमात्मा की कामना ही पूरी होती है, क्योंकि वह सत्य संकल्प है। जीव ऐसी-ऐसी कामनाएँ कर बैठता है कि कभी पूरी होती ही नहीं। कैई ऐसी उल्टी इच्छाएँ कर बैठता है जो कि संसार के लिए घातक होती हैं। कई बार ऐसी इच्छा कर लेता है जो परस्पर विरोधी होती हैं। इसीलिए इसकी सारी इच्छाएँ पूरी नहीं होती। तो ईश्वर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्राप्ति को छोड़कर अपनी अन्य जो इच्छाएँ हैं, उनको खत्म करे। सिर्फ एक ही इच्छा रखे कि ईश्वर को प्राप्त करना है। इसीलिए ययाति ने कहा—

न जातो काम कामानां
उपभोगेन शान्तये ॥
—गीता

यदि उपभोग का सामान किसी को देकर कहें कि अब इच्छाएँ शान्त हो जायेंगी, तो यह बात ऐसी ही है जैसे कि हम जलती लकड़ी में घी डालकर कहें कि अब अग्नि बुझ जायेगी, घी खाकर तो अग्नि और प्रचण्ड हो जाती है। ऐसी ही मनुष्य की इच्छा का स्वरूप है। एक इच्छा की पूर्ति कर दी जाए तो फिर चौगुनी इच्छा उठेंगी। यानि की शान्ति हुई नहीं कि नई इच्छाएँ उठ खड़ी हुई हैं। तो इस तरह से—

इतिमत्वा समं व्रजेत्

समझकर वह शान्ति से, धीरज से काम ले। इसीलिए कहा कि मनुष्य पूरा शान्त कब हो। तो जो उसकी इच्छायें हैं वे सब शान्त हो जायें तब, अथवा इच्छाओं की वह बिल्कुल कामना हो नहीं करे तब। बस यही दो तरीका है। इच्छा का बना रहना अशान्ति का कारण है। इच्छा हुई और पदार्थ मिला तो थोड़ी देर शान्ति हो जाती है, लेकिन पदार्थों के द्वारा इच्छाओं की पूर्ण शान्ति नहीं होती, क्योंकि इच्छायें आगे से आगे बढ़ती रहती हैं। इसीलिए कहा कि—इति मत्वा समं व्रजेत्। यानी संतोष धीरज से काम ले तो उसकी इच्छा शान्त होती है। शंकराचार्य ने लिखा है कि कोई दीपक जल रहा है उसको यदि हवा में रखेंगे तो उसकी शिखा एकरस नहीं होगी। यदि उसको ऐसी जगह में रखें जहाँ कि हवा नहीं लगती हो तो वह एकरस रहेगा, शान्त रहेगा। इसी तरह से जब चेतन एक ही है और उसमें मन की तरंगें उठने लगती हैं तो वह चेतन संसारी कहलाता है, उसी का नाम जीव है। जब तरंगें शान्त हो जाती हैं तब जो चेतन है वही ब्रह्म है। तो जीव बे ब्रह्म बनना ही नहीं और ब्रह्म जीव बनता ही नहीं। तो तरंगों वाला जीव ही चेतन कहलाता है। इसलिए लिखा कि—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शब्दज्ञानानुपाती वस्तु शून्यो विकल्पः

योगसूत्र- १/९

तो सविकल्प क्या है? जैसे जल में तरंग है, वही सविकल्प है। मन की जो कल्पना है वह जीव है। जिसमें कोई कल्पना नहीं वह ब्रह्म है। सविकल्प चेतन जो है वही जोव है। यदि सविकल्प में विकल्प शान्त कर दिया जाए वही ब्रह्म हुआ? इसमें कोई फर्क नहीं है। जैसे जिस जल में तरंगें उठ रही हैं तो तरंग का कारण है पवन, यदि पवन शान्त हो जाए तो तरंग अपने आप शान्त हो जायेगी। तरंग शान्त हो गयी तो जो चञ्चल जल था वह शान्त हो गया। तो जल कोई नया नहीं आया। बस सिर्फ तरंगें शान्त हो गयीं। इसी तरह से कामनाओं की पूर्ति के लिए जब इच्छाएँ उठने लगती हैं तो वह सविकल्प कहलाता है। और जब संसार के पदार्थों में मिथ्यत्व बुद्धि हो गई और आत्मसुख की उपलब्धि हो गई तो चित्त शान्त हो जाता है। अब वह निर्विकल्प हो गया। अब वह जिस स्थिति में रहे आनन्द ही आनन्द है। उसके लिए लिखा है—

सम्पूर्णं जगदेव नन्दनवनं सर्वेऽपि कल्पद्रुमाः,
गांगं वारि समस्तवारिनिवहः पुण्याः समस्ताः क्रियाः।
वाचः प्राकृतसंस्कृताः श्रुतिशिरोवाराणसी मेदिनी,
सर्वावस्थितिरस्य वस्तुविषया दृष्टे परे ब्रह्मणि॥

श्री शंकरसूक्तसुधा-धन्याष्टकम्- १०

उसके लिए सारा संसार नन्दनवन, स्वर्ग का बगीचा है। जहाँ आनन्द ही आनन्द है। उसको स्वर्ग जाने की आवश्यकता नहीं। उसको दुःख होता ही नहीं। जब उसने निश्चय कर लिया कि जगत् मिथ्या है, वह स्वप्न का पदार्थ है तो उसके लिए फिर इच्छा क्यों करेगा। उसके लिए अब चेष्टा भी नहीं। हानि-लाभ का विचार भी गया। सभी वृक्ष उसके लिए कल्प वृक्ष, और सभी जल उसके लिये गंगा जल हैं। सब वाणी वेदान्त है, भगवत् वाणी है। जब वह अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है तो मैं, मेरापन छूट जाता है। इस स्थिति का तब अनुभव होता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है जबकि इसका चित्त शान्त हो जाए। इसीलिए हमारे ऋषियों ने समाधि का थोड़ा प्रकरण बतलाया कि यह अपने चित्त को सम्भाल कर देख ले कि इसकी क्या स्थिति है। सुनी-सुनाई बातों पर ही केवल न रहे। इसलिये शंकराचार्य ने कहा कि—

सर्वं खल्विदं ब्रह्म

इसका विचार होते ही किसी पदार्थ के प्रति राग द्वेष नहीं रहता। राग द्वेष दोनों बन्धन हैं। मुक्त वह पुरुष है जिसमें न राग है, न द्वेष।

राजा बलि हुआ न। उसके घर भगवान् माँगने गए। देवता और दानव में झगड़ा चल रहा था। देवता आध्यात्मवादी हैं और दानव भौतिकवादी। तो भौतिकवादी और आध्यात्मवादी का झगड़ा तो अनादिकाल से चला आ रहा है। कभी यह प्रबल होता है, तो कभी वह। एक बार देवताओं की विजय हुई और राजा बलि हार गया। अब उसको इन्द्र से डर था। तो भागकर वह किसी गुफा में जाकर गदहा का रूप बनाकर छिप गया। इधर जब सारी व्यवस्था ठीक हो गयो, शांत हो गयी, तो इन्द्र लगा बलि को खोजने। लोगों ने भी कहा कि बलि को खोजना चाहिए। चारों तरफ खोज डाला पर उसको बलि कहीं मिला नहीं। तो वह ब्रह्मा जी के पास गया। ब्रह्मा जी ने पूछा कि इन्द्र अब तो तुम्हारी विजय हो गयी, अब मौज करो। परन्तु मौज क्या करें? जो झगड़े की जड़ था वह तो हमको मिला ही नहीं। आप बतलाओ कि बलि कहाँ है? ब्रह्मा जी ने कहा कि बतलाता हूं, परन्तु तुम उसे मारोगे नहीं। मारने के लिए ही तो खोजता हूं। न, अब वह मारने योग्य नहीं है। तुम उससे कुछ शिक्षा ले सकते हो। वह बड़ा विचारवान् है, आत्मकल्याण के लिए तुम उससे कुछ शिक्षा ले सकते हो। अगर तुम मेरी बात मान लो तब उसका पता बतलाता हूं। इन्द्र ने कहा अच्छा मारूँगा नहीं। दो-चार बातें पूछेंगे, बतलाओ है कहाँ? तो उन्होंने कहा कि एक गदहे के रूप में सुमेरु पहाड़ पर है। तो कैसे पता चले? तो वहाँ जो गदहे हैं उनमें सबसे जो उत्तम, श्रेष्ठ होगा। समझ लेना वही बलि है। वह घास आदि खाकर गुफा में मस्त पड़ा रहता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

था। तो इन्द्र पहुंचा वहाँ। उसने देख लिया कि इन्द्र तो आ रहा है पर उसको क्या पता कि यहाँ पर मैं हूं। पर इन्द्र सीधे उसी के पास पहुंचा, आकर कहने लगा कि भाई बलि तुमको नमस्कार है। आओ भाई इन्द्र, क्या बात है? बात यह है कि तुम घबराओ नहीं, हम तुमको मारेंगे नहीं। मारने की इच्छा तो थी पर पितामह ब्रह्मा जी ने रोक दिया। हम तुमसे कुछ पूछने आए हैं। हाँ, तो बोलो– तुम जब राजा थे। असुरों का सारा दल-बल तुम्हारे पास था। सोने की गद्दी थी, सोने के पात्र में जल पीते थे, सोने की कुर्सी पर तुम बैठते थे। अब गदहे की योनि महा निकृष्ट योनि है। गौ, हाथी होते तब भी कुछ बात होती। गदहा निकृष्ट योनि, घास भी सूखी। तुम बतलाओ कि उस समय तुम्हारे मन में और इस समय तुम्हारे मन में क्या अन्तर है? यह अवस्था तुमको दुःखदायी है कि नहीं, हम इतना ही जानना चाहते हैं। तो बलि कहने लगा कि यह तो बालकों की बात है। बालकों की बात ऐसी होती है कि कोई खिलौना मिल जाए तो हँसने लगे और खिलौना टूट जाय तो रोने लगे। तो रोना और हँसना यह बाल बुद्धि है। जो समझदार हैं वह इन बातों में नहीं फँसते। यह तो शरीर की अवस्था है। आदमी जब बच्चा रहता है, कितना छोटा रहता है, हरएक आदमी गोद में उठाए फिरता है। युवावस्था में लोग उससे डरने लगते हैं। वही जब वृद्ध हो जाता है तो घृणा का पात्र, निरादर का पात्र हो जाता है? प्रयत्न करके भी इसमें होने वाले परिवर्तन को नहीं रोका जा सकता है। इसके स्वभाव में परिवर्तन नहीं किया जा सकता —

जातस्य हि ध्रुवोमृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्माद् परिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।

गीता- २-२७

जिस वस्तु का कोई इलाज नहीं हो, वह हमको भोगना ही है। तो इसमें दुःखी होने की कौन सी बात है? शरीर की जैसी स्थिति हो वैसी ही जीवन की स्थिति होती है। कभी अच्छी, कभी बुरी। ये स्थितियाँ पिछले कर्मों के कारण आती हैं। अच्छा कर्म उदित हो जाता है तो उसको सुख देता है, बुरा कर्म उदित होता है तो दुःख दे जाता है। मूल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कारण के चलते जीवन में परिवर्तन होते रहते हैं। इसीलिए ज्ञानवान् उसमें फँसता नहीं।

मुझमें अभी भी बल है कि मैं अभी तुमको फूँक मारूँ तो तुम उड़कर कहाँ का कहाँ चले जाओ, परन्तु मैं यह समझता हूं कि यह तेरा समय है मेरा नहीं। इसीलिए तू हाथी पर सजधज कर मेरे सामने खड़ा है। पर तेरे को पता है कि जब में पूरी शक्ति में था तो मेरा नाम सुनकर तू भयभीत हो जाता था। तुझको रोटी खानी मुश्किल हो जाती थी। अगर यह पता चल जाता था कि बलि आ रहा है तो इन्द्र की भूख खत्म हो जाती थी। वही मैं हूं, वही तू है। अब ऐसी स्थिति आ गई है, कोई ऐसा कर्म उदय हो गया है जिससे मैं इस निकृष्ट योनि में आ गया हूं, और तू उन्नति पर चढ़ गया है। मैं इसको समझता हूं कि तू इन्द्र है परन्तु तू बाल बुद्धि को लेकर आया है कि उस समय कैसी स्थिति थी, इस समय कैसी? तो संसार की स्थिति उन्नति, अवनति की हुआ करती है इसीलिए भगवान् ने लिखा है—

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः।।

गीता- ५-१९

जिनके मन समता में स्थित हो गया है, वे किसी भी स्थिति में अपने स्वरूप को नहीं भूलते हैं। सुख दो प्रकार का है—

१— बाहरी विषयों का सुख

२— आत्मसुख

तो यदि ऐसा मान लें कि आठ आना सुख तो संसार का है, और आठ आना सुख है अपना। तो जो अज्ञानी है उसको अधिक से अधिक आठ आना ही सुख हो सकता है। क्योंकि अज्ञानी को तो बाहर का ही सुख होगा न? सिर्फ विषयों का सुख। यदि कोई पुण्यवान् है और सभी पदार्थ उसको पूरा प्राप्त है तो उसको विषय सुख पूरा मिल गया। यद्यपि विषय सुख पूरा होता नहीं। उसमें साथ-साथ दुःख भी मिला

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रहता है। अज्ञानी को रुपया में आठ आना से अधिक सुख नहीं मिल सकता क्योंकि वह आत्मा का सुख तो माँगता नहीं और अगर पाप कर्म उदित हो जाय तो दुःख ही दुःख, सुख का नाम भी नहीं। क्योंकि आठ आना तो पहले ही गया। अब जो शेष आठ आना है वह भी दुःखरूप बन गया न ? न विषयसुख, न आत्मसुख। तो सोलह आना दुःख तो उसको हो सकता है। पर सुख उसको आठ आना से बढ़कर कभी नहीं हो सकता।

अब जो विचारवान आत्म-ज्ञानी है उसको आठ आना आत्मसुख तो है ही, उसको तो कोई छीन नहीं सकता। अगर कोई पुण्य उदय हो गया तो संसारी सुख भी उसको मिल गया। यदि प्रारब्ध अच्छा है तो विषय सुख भी उसको मिल गया और आत्म सुख भी उसको मिल गया तो हो गया न उसको सोलह आना सुख। मान लो उसका प्रारब्ध खराब है और कोई पाप कर्म उदय हो गया है तो विषय सुख न सही, परन्तु आत्म सुख कहीं नहीं जाता। अब परिणाम यह निकला कि अज्ञानी को सोलह आना दुःख तो हो सकता है पर आठ आना से अधिक सुख उसको नहीं हो सकता। दूसरी तरफ ज्ञानो को सोलह आना सुख तो हो सकता है और कम भी हुआ तो आठ आना से कम तो नहीं हुआ।

इसीलिए बतलाया कि ज्ञानी को दुःख भी होता है तो वह दुःख, दुःख नहीं रहता और अज्ञानो को आठ आना दुःख भी यदि मिल जाये तो उसको पूरा दुःख भोगना पड़े क्योंकि उसके पास आत्म सुख तो है नहीं और ज्ञानी को यदि आठ आना दुःख भी मिल जाए तो भी उसको आठ आना सुख तो रहेगा ही। क्योंकि उसका आत्म सुख तो कहीं जाता नहीं। जैसे कुनैन को गोली में शहद दूना-चौगुना मिलाकर खाए तो कड़वापन समाप्त हो जाता है परन्तु अकेले यदि कुनैन की गोली खाई जाए तो कड़वी लगेगी। परन्तु शहद मिला दिया तो खाना आसान हो गया। कटुता रहती है परन्तु शहद के कारण मालूम नहीं पड़ता। इसी तरह अज्ञानी को जो दुःख आता है उसको पूरा-पूरा भोगना पड़ता है, इसीलिए वह घबड़ा जाता है, मर भी जाता है। धन नष्ट होने पर कई लोग नष्ट हो जाते हैं। पुत्र की मृत्यु पर भी कई लोग मर जाते हैं। मतलब अज्ञानी अधिक दुःख को सहन नहीं कर सकता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

किसी पाप कर्म के उदय होने से ज्ञानी को भी दुःख आते हैं—पर उसमें आत्मसुख है न? तो आत्मसुख मिलकर दुःख हल्के हो जाते हैं। महापुरुषों ने अनेक दुःख कष्ट सहन किए हैं। इन पर ऐसे दुःख आए हैं कि पढ़कर डर लगता है परन्तु उन्होंने उस दुःख को हँसते हुए झेल डाला तो क्यों? उनमें जो आत्म-तेज है न उसने उस दुःख को मार डाला। इसीलिए कहा कि जो अज्ञानी है उसको सोलह आना दुःख भोगना पड़ता है परन्तु जो ज्ञानी है उसको दुःख कभी नहीं भोगना पड़ता। यदि प्रारब्ध से दुःख आ भी गया तो अन्दर से सुख मिलने के कारण आधा ही दुःख रहता है। इसलिए हे इन्द्र, तुम बालपन करते हो। वो क्या और ये क्या? हम वहाँ जैसे थे ऐसे यहाँ भी हैं। हमने गदहे की योनि अपनी इच्छा से धारण की है। हमारी मर्जी जो चाहे बन सकते हैं। अब ही हम चाहें तो तुमको इन्द्र बनकर दिखा सकते हैं। हम चाहें तो तुम्हारा इन्द्रत्व छीन सकते हैं पर हम समझते हैं कि भगवान् का विधान है। इस समय हमको अपना पाप कर्म भोगना है। कर्म हमारा है उसको भोगना भी हमें है। हम क्यों उसके विधान को तोड़ें। अपने कर्मों के भोग को संतोष और धीरज से सह लेना चाहिए। यही विचार का काम है।

ऐसे एक महात्मा थे। सिद्ध पुरुष। उनको एक बार बुखार चढ़ा मलेरिया। तो मलेरिया तो बुरी तरह हिलाता है न, तो कंबल लेकर पड़ गए। उनका शिष्य था एक राजा। उसको विचार आया कि गुरु जी का दर्शन कर आऊँ। वह आ रहा है दर्शन करने। गुरु जी ने सोचा मैं तो बीमार हूं, तो उन्होंने क्या किया कि बुखार को कंबल में लपेट लिया और ठीक-ठाक होकर बैठ गये। राजा आया वंठ गया, बातचीत होने लगी। तो कंबल काँपे, क्योंकि बुखार तो उस पर चढ़ गया न। वह काँपने लगा। राजा तो बात कर रहा है पर उसकी नजर कंबल पर है। संत ने पूछा कि उधर क्या देख रहा है। राजा ने पूछा कि मैं यही देख रहा हूं कि कंबल में क्या है? आखिर वह हिल क्यों रहा है? कोई बिल्ली का बच्चा उसमें है कि कुत्ते का बच्चा है, आखिर यह काँप क्यों रहा है? तो तुमको इससे क्या लेना? तू तो बातें करने आया है न? तो मेरे मन में संशय हो गया है, यह हमारे मन को खींचता है। तो अच्छा, बात यह है कि उसको बुखार चढ़ा है। तो कंबल को? कंबल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो जड़ पदार्थ है, उसको बुखार कैसे चढ़ेगा ? बुखार तो चेतन को चढ़ता है न ? नहीं तो, तुम देख लो। जब उसको हाथ लगाया तो जैसे १०५, १०६ डिग्री का बुखार चढ़ा होता है, वैसे कंबल तप रहा है। तो कहते हैं कि ठीक, इसे बुखार चढ़ा है। परन्तु जड़ पदार्थ को कहीं बुखार चढ़ता है। तो कहा कि असल में बुखार हमको चढ़ा था। हमने देखा कि तुम मिलने आ रहे हो अतः बुखार को कंबल में लपेटकर रख दिया, अब बुखार उस पर चढ़ गया है इसलिए काँप रहा है। तुमसे बातचीत कर लेंगे तो फिर उससे ले लेंगे। वह कहने लगा कि जब उसको उतार दिया तो उसको भगा देना चाहिए न। अब उसको उतारा भी और फिर ले भी लेंगे तो उससे क्या आपकी दोस्ती है ? तो कहते हैं कि नहीं। यह भगाने के लिये नहीं आया है, यह तो भोगने के लिये आया है। हमारा कोई पिछला कर्म है जो बुखार बनकर आया है तो उसको भोगना है न ? यदि पड़ा रहेगा तो बिना भोगे जायेगा नहीं। इसलिए फिर हमको जन्म लेना पड़ेगा। अब आया है तो घंटा-दो घंटा हिलाकर भाग जायेगा। इसलिये तू कोई चिन्ता न कर। अब देखो, उनमें सामर्थ्य है कि वे बुखार को उतार कर कंबल में लपेट कर रखे हैं। यह कोई साधारण काम नहीं है। पर वो कहते हैं कि यह तो भगवान् का विधान है, जो जिसने कर्म किया है, वैसा भोगना भी है। क्योंकि—

कर्म प्रधान विश्व करि राखा।
जो जस करई सो तस फल चाखा॥

कर्म प्रधान जगत् है तभी यह सब व्यवहार चला करता है। उसमें जिसका जैसा कर्म है वैसा वह भोगा करता है। हाँ, समय होता है। किसी समय अच्छा कर्म आता है। किसी समय बुरा कर्म आ जाता है। तो वो कर्मों के अनुसार जैसी स्थिति ज्ञानी की होती है, अज्ञानी की भी वैसी ही स्थिति होती है। तो ज्ञानी उसे संतोष और धैर्य से सह लेता है। अज्ञानी दुःखी होता है। वह तड़पता है, व्याकुल होता है। वह सेर भर दुःख चौगुना बना लेता हैं। ज्ञानी धीरज के बल से चार सेर को सेर बना लेता है। तो इसीलिए किसी हिन्दी के कवि ने लिखा कि—

देह धरे का दण्ड सब काहू के होए।
ज्ञानी हंस कर भोगता, मूरख भोगे रोए॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शरीर जो धारण किया तो शरीर पुण्य पाप से होता है। यदि केवल पुण्य होता तो देवता बनता और केवल पाप ही होता तो नरक में जाता। पर मनुष्य शरीर ऐसा है कि इसको सुख भी होता है और दुःख भी होता है। इसीलिए अन्दाज लगाना पड़ता है कि इसको पुण्य भी है और पाप भी। मिश्रित फल का परिणाम शरीर है। ज्ञानी दुःख को हँसकर भोगता है, मूर्ख रोकर।

तत्व ज्ञानी की स्थिति समत्व युक्त होती है। सुख दुःख को तो कोई हटा नहीं सकता। यह तो संसार का स्वरूप है, शोभा है। पर ज्ञानी दोनों स्थिति में शान्त चित्त रहता है। बस, इसी का नाम मोक्ष है। यों तो लोगों ने सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य, सायुज्य, मोक्ष के चार भेद मान रखा है। यह उन लोगों ने माना है जो समझते हैं कि विषय में सुख है, और सुख है ही नहीं। कुछ लोग कहते हैं कि सुख नाम पदार्थों की अनुकूलता का है। जिस चीज की हमें जब और जितनी आवश्यकता पड़े, उतनी वह मिल जाये तो उसका नाम सुख है। तो वे कहते हैं कि सुख तो संसारी पदार्थों में होता है और अपने अन्दर कोई सुख नहीं होता। ऐसे लोगों ने कल्पना की है कि वैकुण्ठ में मोक्ष है। कोई ब्रह्म लोक में मोक्ष मानता है, कोई गोलोक में, तो कोई कहीं। परन्तु जब यह निश्चय हुआ कि सुख आत्मा में है किसी लोक या पदार्थ में नहीं है तो यह सिद्ध हुआ कि स्वरूप स्थिति ही मोक्ष है। अब देखना यह है कि उनके कहने में कहाँ तक सत्यता है और इनके कहने में कहाँ तक सत्यता है। यों विचारपूर्वक मनुष्य निर्णय कर सकता है। तो थोड़ा-सा उस पर विचार करेंगे और फिर मन को एकाग्र करने का ऋषियों ने क्या-क्या उपाय बताया है उस पर विचार करेंगे।

ॐ पूर्णमदः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मन्त्रजाप की महिमा

मन्त्रों का विस्तार ऋषियों ने किया हैं। दुःख दो प्रकार का है। दृश्य दुःख और अदृश्य दुःख। जो बाहर का दुःख है वह अदृश्य दुःख हैं। जो जन्म-मरण है, वह अदृश्य या मूल दुःख है। जन्म-मरण के दुःख की निवृत्ति तत्व ज्ञान से होती है। ये लौकिक दुःख हैं, ये आध्यात्म के मार्ग में बाधक हैं। इनको प्रतिबन्धक भी कहा। श्रवण, मनन, निदिध्यासन करने से प्रतिबन्धक दूर होते हैं। एक आदमी है उसके चाकू लग गया और खून निकलने लगा तो सर्वप्रथम इतना उपाय तो करना है कि उसका खून निकलना बन्द हो जाए। अज्ञान काल में जो दुःख होगा, उसका तो उपाय होना ही चाहिए, खून तो तत्काल बन्द होना चाहिए।

इस जीवन में जो प्रतिकूलताएँ हैं उनका दूर होना भी आवश्यक है। जब तक यह प्रतिबन्धक दूर नहीं होंगे तब तक आध्यात्म में उन्नति नहीं हो सकती। योगदर्शन में प्रतिबन्धक लिखे हैं—

व्याधिस्त्यान संशय प्रमादालस्या विरतिभ्रान्ति–
दर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥

यो० द०- १/३०

व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व आदि नौ विच्छेप हैं। ये साधनों में बाधक हैं। इनको विघ्न कहा है। विघ्न के होते साधनों में सिद्धि नहीं मिलेगी। इसके लिए मंत्र बनाए हैं। मंत्रों की सहायता से ये प्रतिबन्धक दूर होते हैं। जब तक ये प्रतिबन्धक रहते हैं, तब तक लौकिक बातों में भी सिद्धि नहीं मिलती। जैसे युधिष्ठिर की कथा आती है, वे अत्यन्त धर्मात्मा थे, सभी से प्रेम करते थे। यहाँ तक दुर्योधन से भी घृणा नहीं करते थे। जब जंगल जाने लगे तो हजारों लोग उनके साथ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चलने लगे। युधिष्ठिर ने समझाया कि हम आप लोगों के खाने-पीने का प्रबन्ध कहाँ से करेंगे ? अतः आप लोग लौट जायें। लोगों ने कहा कि हम आप पर भार नहीं बनेंगे, स्वयं कन्दमूल खायेंगे या भिक्षा माँग लायेंगे, परन्तु रहेंगे आपके साथ, आप से सत्संग करेंगे, कथा वार्ता करेंगे। युधिष्ठिर ने बहुत समझाया किन्तु वे नहीं माने तो उदास हो गये। गुरु जी ने पूछा कि आज क्यों चिन्तित हो ? तो कहा कि मेरे साथ वन चलने को हजारों आदमी तैयार हैं, अब हम इनको कहाँ तक खिलायेंगे ? बस यही बात है तो उन्होंने सूरज के १०८ नाम बताए। सूरज का नाम अन्नपति है। वही पानी खींचता है तो बादल बनते हैं, पुनः वर्षा होती है और अन्न उपजते हैं। इसीलिए उनका नाम अन्नपति है। १०८ नाम हैं सूर्य के। तुम ऐसा करो– नित्य कर्म करके नाभि पर्यन्त जल में खड़े होकर चन्दन फूल लेकर १०८ अर्घ्य देना। ऐसा तुम चालीस दिन करो, फिर भगवान् की कृपा से सब ठीक हो जाएगा। चालीसवें दिन सूर्य मण्डल से एक आदमी आया। उसने युधिष्ठिर को छोटी सी पतीली दी। युधिष्ठिर ने कहा कि छोटी सी पतीली से क्या काम होगा ? मेरे पास तो बहुत से आदमी हैं। उसने कहा कि इससे तेरा सारा काम हो जायेगा। इसमें एक करामात है, इसमें जो खाना हो बनाओ, चाहे खीर बनाओ, खिचड़ी बनाओ और द्रोपदी से कहो कि इसमें से निकाल कर खिलाती जाए। तुम जितने खाने वाले हों, उनको खिलाना। जब तक द्रोपदी नहीं खाएगी, निकलता ही रहेगा। हजार खाये, लाख खाये। युधिष्ठिर गुरु जी के पास गए, सारी बात बताई। गुरु जी भी खुश हुए। युधिष्ठिर ने कहा कि अब चलो। तुम चलो, तुम्हारे रिश्तेदार चलें। दस हजार आदमी चलो। नित्य सबका खाना पकने लगा। द्रोपदी सबसे पीछे खाती। देखो, कितनी सुविधा हो गई। दस हजार खायें चाहे हजार, कोई असुविधा नहीं।

इसीलिए मंत्र, यंत्र तथा देवता की उपासना का प्रचार रहा। ज्ञान तो अंतिम बात है, यह जल्दी थोड़े मिलता है, अनेक जन्म लग जाते हैं। ज्ञान के लिए न जाने कितने जन्म लेने पड़ते हैं। तब ज्ञान की प्राप्ति होती है। तब उसके अन्तःकरण के दोष निकलते हैं। जब तक साधन काल है तब तक बहुत आवश्यकता होती है। थोड़ी सी देवता की सहा-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यता लेनी पड़ती है। मंत्र अनेक प्रकार के हैं। प्रत्येक प्रकार के कार्यों के लिए अलग-अलग मंत्र हैं। शब्द एक ही है परन्तु उनमें योजना है।

जैसे अलग-अलग ऊँ कहें। इन अंकों में भी बड़ी शक्ति है। जैसे १, २, ३, अ ई ऊ, आदि वर्ण कहलाते हैं। ३ अंक है न, इसे क्रम भिन्नता से लिखें तो मान बदल जाता है। जैसे १२३, ३२१, २१३, ३१२ आदि अनन्त संख्या बनता है।

एक पंचादश यंत्र है ६ अंकों के। ऐसे लिखते हैं कि उनका योग १५ बनता है। ऐसी रचना बनाई है, जिधर से गिनो १५ संख्या है। इसका बहुत महत्व है। यदि कोई सवा लाख लिखे तो उसके सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं।

वैसे मंत्रों में भी शक्ति होती है। वर्णों में हेर-फेर करके नाना प्रकार के मंत्र बनाए गये हैं। वर्णों के योग से मंत्र बनते हैं। वर्णों की भी विशेष स्थिति है। वर्णों में अलग-अलग शक्ति है। किसमें क्या शक्ति है, वह ऋषियों को मालूम है। किसी वर्ण में नुकसान करने वाली शक्ति है, किसी में लाभ वाली शक्ति है।

वे उसे इस ढंग से रखते हैं कि नुकसान वाली शक्ति हट जाए और लाभ वाली प्रगट हो जाए। जैसे नुस्खा बनाते हैं। उसमें एक औषधि है गरम और तर। दूसरी है ठंडी और तर। अब दोनों को मिला दिया जाए तो एक नुस्खा बन जाए। इसी प्रकार की कई दवाओं का योग है। ठंडी गरम को मार देगी, गरमी ठंडी को मार देगी। फिर यही फर्क पड़ता है आगे पीछे। जैसे त्रिफला बनाते हैं इसमें पहले हरड़, डालते हैं, तब बहेरा, तब आँवला। अगर मिलाने का क्रम बदल दें तो फायदा नहीं होगा। जब दो पदार्थ मिल जाते हैं तो कुछ परिवर्तन होता है, जो उसके गुण दोष को जानते हैं वे नियम से मिलाते हैं। इसी तरह से ऋषियों ने वर्णों की अलग-अलग शक्ति को देखा फिर मंत्र बनाए हैं। अर्थ वाले भी मंत्र हैं और बिना अर्थ वाले भी। जैसे क्लीं, ह्रीं, फट्। इसमें अर्थ नहीं है परन्तु शक्ति बड़ी है।

आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिये जो साधन करेगा उसमें बाधा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आयेगी तो मंत्रों की सहायता से टालते हैं। रोगों के निदान के लिए औषधि भी है और मंत्र भी। जैसे संजीवनी बूटी है जो मरने वाले को जिला दे। इसी प्रकार संजीवनी मंत्र भी। मृत्युञ्जय वटी भी है और महामृतुञ्जय मंत्र भी है। इसी तरह ज्वर को दूर करने के लिए औषधि भी है और मंत्र भी। प्रत्येक रोग के लिए मंत्र है। किन्तु उन्हें सिद्ध करना पड़ता है। मंत्रों के ऊपर पॉवर रखा हुआ है। इसलिए रखा है कि अनाड़ी आदमी घाटा न उठा ले। जैसे चाकू है न, अगर उसे बच्चा उठा ले तो आँखों में मार ले, मुख में मार ले। इसीलिए उसका ढकना बनाते हैं और बन्द कर रखते हैं ताकि अज्ञानी नुकसान न उठा ले।

इसी तरह जो वर्ण हैं, उनमें बहुत शक्ति है। जैसे परमाणु में शक्ति है, वैसे ही वर्णों में अनन्त शक्ति है। मन्त्र सिद्धि करने का अर्थ है उसके ऊपर जो आवरण है उसे हटा दें। जैसे मिट्टी में लाल पड़ा है, तो उस पर धूल पड़ गई है। अब उसको सान पर चढ़ाते हैं तो उस पर प्रकाश आ जाता है। मन्त्रों का सान क्या है कि उसे बार-बार चलाएं। यानि खूब जपें। जप करते-करते उसके आवरण समाप्त हो जाते हैं और उसमें शक्ति पैदा हो जाती है।

पहले बड़े-बड़े भयंकर अस्त्र थे। ब्रह्मास्त्र, ब्रह्मदंड आदि। सभी गायत्री से चलते हैं। गायत्री का उल्टा पाठ करने से ब्रह्मास्त्र बनता है। गायत्री के पदों को उल्टा करने से ब्रह्मदंड बनता है और उसके जो वर्ण हैं, पाद हैं, उनका विलोम करने से ब्रह्म दंड बनता है।

इसी प्रकार वाल्मीकि ने राम नहीं कहा, मरा-मरा कहा। साधारण लोग समझते हैं कि वाल्मीकि राम राम नहीं कह सकते थे इसलिए मरा-मरा सिखाया गया। किन्तु बात कुछ और है। राम का गुण कुछ और है। मरा का कुछ और है। रा और म। इसमें रा शब्द अग्नि तत्व है म सूर्य तत्व है। सूर्य को पहले रखा जाए तो अग्नि सूखी लकड़ी को जलाएगी। गीली को नहीं। जैसे गीली लकड़ी को धूप में रखकर सुखाना पड़ता है फिर अग्नि उसे जलाती है गीली को नहीं। गीली लकड़ी में समय भी पहले से ज्यादा लगेगा, धुएँ से आँख भी खराब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होगी। रा में अग्नि तत्व है और म में सूर्य है।

पाप भी हरे और सूखे होते हैं, पुराने पाप सूख जाते हैं, नए पाप गीले रहते हैं। राम उसके लिए है, जिसके पाप बहुत पुराने हो गए हैं। यानी सूख गए हैं और सूखे पाप जल्द जल जाते हैं। जिसके पाप ताजे हैं उसे मरा दिया जाता है। वाल्मीकि के पाप ताजे और भयंकर हैं।

इसी प्रकार मंत्रों का वर्ण रखा जाता है। मंत्रों के अभ्यास करने से मंत्रों की सिद्धि हो जाती है। इसका साधारण नियम यह है कि जितने मंत्र में अक्षर हों, उतने लाख उसका जप करो। जैसे गायत्री में २४ वर्ण हैं तो २४ लाख उसका जप करे तो सिद्ध हो जाते हैं।

मंत्रों के जाप से समय की बचत होती है, बाधाएँ शांत हो जाती हैं। जैसे देखो दस हजार आदमी को भोजन खिलाना हो तो कितना कठिन काम है। किन्तु मन्त्रों से सिद्ध बटुवे में आधा घंटा से कम में ही काम बन जाता है। तो कहाँ साधन खराब होने से समय बर्बाद होता है। जो समय बचता है, उसे आध्यात्म में लगाएँ। मंत्र भोग देने वाले हैं और भगवान् को देने वाले हैं। मंत्रों से लौकिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है। फिर हम परमात्मा में लग सकते हैं।

जन्मौषधिमन्त्र तपः समाधिजाः सिद्धयः :

यो. द.- ४-१

मंत्र, औषधि, जप, तप, समाधि, सिद्धि, इन तत्वों का योग में कोई उपयोग नहीं। वहाँ इनकी निन्दा ही है। लौकिक सिद्धि इनसे होती है। जो इन्हीं के पीछे पड़े हैं, भगवान् की प्राप्ति का उपाय नहीं करते हैं, उनकी निन्दा की गई है, किन्तु लौकिक बाधाओं को दूर करने में मंत्र सहायक होते हैं।

पहले वाचिक जपें, पुनः उपांशु जपें फिर मानसिक जप करके मन को इतना उसमें लीन कर दें कि संसार को भूल जावें और अपने शरीर की स्थिति भी भूल जावें। इसको योग निद्रा कहते हैं। यानी योग निद्रा को प्राप्त हो जावे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निद्रा नाम है–बाहर के प्रपञ्च की बेखबरी। देखो– जब हम सो जाते हैं तो बाहरी संसार को भूल जाते हैं, उसका कुछ पता नहीं चलता है।

योग नाम है– अभ्यास-साधन का। रात की नींद तमोगुणी है। नींद हमारे हाथ में नहीं है, हम अभी नहीं सो सकते हैं, लेकिन योगनिद्रा हमारे हाथ की बात है। ऐसा अभ्यास करें कि बाहर के पदार्थों को बिल्कुल भूल जायें, बिना नींद आये ही।

योग– साधन

निद्रा– बेखबरी

यानी किसी में चित्त को इतना एकाग्र करें कि बाहर की बातों को बिल्कुल भूल जायें, क्योंकि हमें जितना भी बाहर के पदार्थों का ज्ञान होता है वह मन से होता है। इन्द्रियों से जो भी ज्ञान होता है, मन से ही। जब मन को इन्द्रियों से हटा लें तो उस इन्द्रिय से कुछ बोध नहीं होता। जैसे नेत्र से मन हट जाए तो कुछ दिखाई नहीं देगा, कान से मन हट जाये तो कुछ सुनाई नहीं देगा, घ्राण से मन हट जाय तो दुर्गन्ध, सुगन्ध का कुछ पता नहीं चलेगा। हमको जितना ज्ञान होता है, सब मन से होता है। जब मन शरीर के साथ रहता है तो सुख-दुःख का ज्ञान होता है। जब मन बाहर के विषयों से लगता है तो संसार का ज्ञान होता है। जब मन शरीर से भी अलग हो जाता है तो सुख-दुःख का भी ज्ञान नहीं होता। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है कि क्लोरोफार्म सुंघाकर शरीर को काटो, छेदो तो कोई कष्ट नहीं होता। वह तो मर भी नहीं गया, जिन्दा ही है। तो मन ऐसी जगह चला गया कि सुख-दुःख का ज्ञान नहीं रहता, पुनः दवा का प्रभाव समाप्त होता है तो दुःख की अनुभूति होती है। तो यह तो दवा की बात हुई, परन्तु जब साधन के द्वारा मन को हटा लेंगे तो उसमें कोई दुःख नहीं होगा, उससे लाभ होगा, नुकसान नहीं। इसीलिए उन्होंने समाधि का प्रकरण बतलाया जिसमें मनुष्य अपने आपको भूल जाए, इसी का नाम समाधि है। इसी अवस्था में सारे मंत्र सिद्ध हो जाते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शब्द के ऊपर बहुत शास्त्र बने हैं। प्रत्येक वर्ण पर अलग-अलग ग्रन्थ बने हैं। जैसे अ-ह्-क-च इन पर अलग-अलग पुस्तक हैं। इनका क्या लाभ है? इनका क्या प्रयोग है?

दूसरा प्रकार था श्वाँस का। तीन प्रकार के साधन बताए न? नाम का, शब्द का और श्वाँस का।

तो इसके द्वारा मन को निरोध कर भगवद् साधन तक पहुंच सकते हैं। श्वाँस का निरोध करके मन को वश में किया जाता है—

प्राणायामं प्रत्याहारं,
नित्यानित्य विवेक विचारम्।

मोहमुद्गर- ३०

मनुष्य अपनी स्थिति के अनुसार, जिसको चाहे उस साधन को करे, सब फल एक ही है।

ॐ पूर्णमदः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुख का आश्रय

सुख क्या है ? इस पर कुछ विचार करना अनिवार्य है। सुख है कहीं और, हम समझते हैं कहीं और। जो विषयों का सुख है वह भी अपना ही सुख है। जैसे दर्पण में जो मुख दिखाई पड़ता है, वह अपना ही मुख है, दर्पण में कोई मुख नहीं होता। इसी प्रकार विषयों में भी कोई सुख नहीं होता। यदि विषयों में सुख होता तो कोई दुःखी नहीं दिखाई पड़ता।

उपनिषद् में एक कथा आती है। एक रानी स्नान कर रही थी, उसने अपना हार निकालकर रख दिया, उसे चील लेकर उड़ गई, सोची कि कोई खाने की चीज है, उसने चोंच मारा पर उसमें खाने लायक तो कुछ था नहीं, तो वहीं वृक्ष पर छोड़कर चली गई। वृक्ष की टहनी पर हार लटक रहा था, तालाब के जल में उसका प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ रहा था, कोई यात्री आया तो तालाब में हार देखकर उसे लेने के लिए जल में घुस गया, परन्तु हार तो ऊपर था तो जल में मिलता कहाँ से ? फिर बाहर निकल कर बैठा तो थोड़ी देर के बाद फिर जल में हार दिखाई देने लगा। वह फिर छलाँग लगाया, बहुत ढूँढा, किन्तु नहीं मिला। कई बार बाहर आया, भीतर गया, पर हार हाथ नहीं आया। हार जल में होता तब न हाथ आता, उसमें तो उसका प्रतिबिम्ब था। एक आदमी ने उसको देखा। कहा, क्यों भाई, सवेरे से यहाँ क्यों बैठे हो ? उसने उसको भी तालाब में हार दिखला दिया। वह चालाक व्यक्ति था, उसने नजर मारी तो देखा कि हार तो डाली पर है, जल में तो उसका प्रतिबिम्ब आ रहा है। अब इसने गलती से प्रतिबिम्ब को ही हार मान लिया, तो जब तक जल छोड़कर वृक्ष पर नहीं चढ़ेगा, तब तक असली हार नहीं मिलेगा। इसी प्रकार विषयों का सुख है। जब हमको किसी वस्तु की आवश्यकता पड़ती है तो हम उसकी प्राप्ति के लिए क्रिया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करते हैं, क्रिया दुःखरूप है, उसमें मन चञ्चल होता है, जब वस्तु मिल जाती है, तब मन शान्त हो जाता है। शान्त चित्त में अपना आनन्द प्रतिबिम्बित होता है। आनन्द तो आया चित्त के शान्त होने से परन्तु हमको धोखा होता है कि यह आनन्द विषयों से आया। वास्तव में विषय से आनन्द होता नहीं।

यानी जिसका चित्त चञ्चल है, उसको किसी पदार्थ में सुख मिल नहीं सकता, क्योंकि विषयों में सुख होता तब न मिलता। तो जैसे हार जल में प्रतीत हो रहा था परन्तु मिल नहीं सकता था।

मान लो किसी को नींद आ रही है। पहली रात में उसने जागरण की है, अब उसको नींद आ रही है। नींद भी एक आवश्यकता है जैसे भोजन। बल्कि भोजन से भी आवश्यक नींद है। एक दिन, दो दिन नहीं खाओ तो कोई बात नहीं, परन्तु नींद नहीं आवे तो बेचैनी हो जाती है। दो-चार दिन नींद नहीं आवे तो और अधिक बेचैनी होने लगती है। तो पहले दिन उसने जगरता किया, अब नींद आ रही है, वह सोना चाहता है तो उसे एकान्त कमरा, पंखे को हवा, सुन्दर तकिया लगा दिया और कहा कि सो जाओ। वह सोना चाहता था और सोने की सारी व्यवस्था भी हो गई, इतने में किसी ने कहा कि कमरे में पिशाच रहता है वह सोने वाले को मार देता है। बस, इतना सुनते ही उसको नींद भाग गई। तो अब नींद क्यों भाग गई, कमरे में कोई कमी तो हुई नहीं, सारी चीजें ज्यों की त्यों। तो अब उसके मन में एक भय व्याप्त हो गया कि यदि सो जाऊँगा तो मर जाऊँगा। तो चित्त जब चञ्चल हो जाए तो आनन्द नहीं मिल सकता। मृत्यु के भय से उसका मन चञ्चल हो गया। जब भय नहीं हो तो बेशक बिस्तरे की भी जरूरत नहीं, चटाई पर भी नींद आ जाए। तो यह सिद्ध हो गया कि शांत चित्त में ही आनन्द की प्राप्ति होती है, अशांत चित्त में नहीं। जिनको बहुत चिन्ता होती उसे रात में नींद नहीं आती, गोली खानी पड़ती है। छोटे बच्चे निश्चिन्त रहते हैं, वे रात-दिन सोए ही रहते हैं, क्योंकि उनको कोई चिन्ता तो है नहीं, वे ऐसे सोते हैं कि माता-पिता उनको उठाकर कहीं से कहीं डाल देते हैं उनको कुछ पता नहीं चलता।

तो निद्रा का जो सुख है, वह तभी मिलता है जब हमारा मन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शांत हो। जो लखपति और करोड़पति हैं उनको तो खूब नींद आनी चाहिए क्योंकि उनकी सारी आवश्यकताएँ पूर्ण हैं। किन्तु उनको नींद आती ही नहीं है। उल्टे जो गरीब हैं उनको खूब नींद आती है। इसी-लिए कहा गया—

अशान्तस्य कुतः सुखम्

अशान्त चित्त वाले को सुख कहाँ ? उसको किसी पदार्थ में सुख कहाँ मिल सकता ? चाहे बैकुण्ठ में चला जाए, क्योंकि वह अशांत है। इसीलिए शंकराचार्य ने लिखा कि—

हृदयं शीतलं यस्य तस्य शीतलं जगत् त्रयम्

जिसका अन्तर भी शीतल है, उसके लिए तीनों लोक शीतल हैं। जिसका अन्तस ताप से जल रहा है उसको यह संसार भी जलता ही दिखाई देता है। तो जो सन्ताप है वह मन में है। इसीलिए मनुष्य को वातावरण का कोई ख्याल नहीं करना चाहिए जितना कि अपने मन पर।

मनुष्य को अपने मन को शान्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। भूखा आदमी है उसे अन्न की जरूरत है, वह जो खाना चाहता है और जितना खाना चाहता है, उसके सामने थाल परोस कर रख दो। अच्छा अब वह खाना चाहता भी है और उसके सामने अच्छा खाना तैयार भी है, इतने में खबर आई कि उसका लड़का मर गया, दुर्घटना हो गई। तो बोलो अब उसको भोजन अच्छा लगेगा ? वही थाली, वही भोजन, वही खाने वाला, परन्तु उसका चित्त अब चञ्चल हो गया दुःख से। चित्त अशांत हो जाए तो न तो भोजन उसे आनन्द देता, न सिनेमा, न संसार का कोई पदार्थ। और यदि चित्त शांत है तो उसे किसी पदार्थ के बिना भी आनन्द आता है। वह जहाँ रहे वहीं सुख, वहीं खुश। इसी-लिए कहा—

अशान्तस्य कुतः सुखम्

अशान्ति क्या है ? जैसे अग्नि गर्म है तो शान्त चित्त वाले को भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जलाएगी और अशान्त चित्त वाले को भी जलाएगी। उसी प्रकार विषय हमेशा दुःखरूप ही हैं, उसमें किसी को भी कोई सुख नहीं मिलता, परन्तु देखने में आता है कि जो पुरुष शान्त है उसको विषयों से सुख मिलता है। इसीलिए मनुष्य को जब किसी विषय की आवश्यकता होती है तो वह उसकी प्राप्ति के लिए परिश्रम करता है, परिश्रम करने में उसे दुःख होता है और जब पदार्थ मिल जाता है तो वह सुख का अनुभव करता है क्योंकि अब परिश्रम समाप्त हो गया न। परिश्रम खत्म होने से चित्त शान्त हो जाता है, उस शान्त चित्त में अपने अन्दर का सुख दिखाई पड़ता है, परन्तु वह गलती से मान लेता है कि वस्तु ही विषय का सुख है। जैसे उसने तालाब में मान बैठा था कि हार है, किन्तु हार तो वृक्ष पर था, तालाब में तो उसका प्रतिबिम्ब मात्र दिख रहा था।

दूसरी बात यह है कि विषयों में अगर सुख मान लिया जाए तो नींद में तो कोई विषय होता नहीं, नींद सबके लिए आवश्यक है, खाने-पीने से भी ज्यादा अनिवार्य नींद है, क्योंकि खाना-पीना तो जन्म लेने के बाद शुरु होता है। परन्तु पेट में बच्चा सोता जागता है, उसका अनुभव माँ को होता है। वह कहती है कि बच्चा जाग गया या सो गया। नींद में सुख प्रसिद्ध है। जब आदमी काम करते-करते थक जाता है तो किसी से बात-चीत करने की भी इच्छा नहीं रह जाती। इतना थक गया कि अब शरीर को भी नहीं सम्भाल सकता। शरीर सम्भालना तो अलग रहा, आँखें भी नहीं खोल सकता, आँखें मुँदने लगती हैं, शरीर गिरने लगता है और सत्संग में बैठने पर नींद अधिक आती है क्योंकि नींद कुम्भकरण की पत्नी है। जब राम जी ने कुम्भकरण को मार दिया तो वह विधवा हो गई, राम जी की शरण में गई कि मैं अब क्या करूँ? मेरा जीवन कैसे बीतेगा? राम जी ने कहा कि तू सत्संग में जाया कर। तो उसने कहा कि मैं वहाँ बैठूँगी कहाँ? तो कहा कि जो आदमी प्रमादी हो उसके मस्तक पर जाकर बैठ जाना। जो आदमी मन से नहीं सुनता है अथवा बहुत थका आता है या दीवार का सहारा लेकर बैठता है, उसे नींद आती है, क्योंकि सत्संग में बैठने का यह ढंग नहीं, यह तो प्रमाद है न? तो सत्संग में सहारा लेकर नहीं बैठना चाहिए। भाव यह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निकला कि नींदकाल में मनुष्य इतना शक्तिहीन हो गया कि अपनी पलकों को भी नहीं सम्भाल सकता, यानी नींदकाल में शक्ति का पात हो जाता है। चार घन्टे सो गया और सोकर उठा तो अठारह घंटे तक काम किया। तो अब बताओ नींद से पहले तो इतनी भी शक्ति नहीं थी कि अपने पलकों को भी संभाल सके और जग गया तो अठारह घंटे तक काम करने की शक्ति उसमें आ गयी। तो विचार करना है कि यह शक्ति कहाँ से आयी। बाजार में तो नहीं गया शक्ति लेने। तो हमारे अन्दर ऐसी कोई जगह है जहाँ जाने से शक्ति मिलती है। शक्ति होते ही आनन्द आ जाता है। तो हमारे अन्दर ही वह शक्ति का स्रोत है जहाँ से नित्य शक्ति मिलती है।

किन्तु भूल यह हो रही है कि बाहर सभी शक्ति को खोज रहे हैं। शक्ति मिलते ही हम करने योग्य हो जाते हैं। तो जो जाग्रत में काम करते हैं और नींद में शक्ति प्राप्त करते हैं, फिर १८ घंटा काम करने के बाद शक्ति समाप्त हो जाती है तो फिर नींद में चले जाते हैं। जैसे बच्चा कुछ पैसा लेकर बाजार जाता है, पैसा खत्म हो जाता है तो फिर घर आता है, पिता से कहता है कि पैसे खत्म हो गये फिर दो आने दे दो।

इसी तरह जीवात्मा के अन्दर इसका परमात्मा पिता बैठा हुआ है। बाहर मेला लगा हुआ है, मेले पर लुभायमान होकर यह संसार में जाता है, वहाँ जब सम्पत्ति खत्म हो जाती है तो फिर जाता है बाप के पास। फिर ताकत लिया। तो नींद में जो शक्ति मिलती है वह किसी विषय की नहीं है। क्योंकि वहाँ तो अपने शरीर तक का भान नहीं होता। वहाँ कोई विषय नहीं कोई संसारी पदार्थ नहीं।

अगर हम पदार्थों में सुख मानें तो केवल गरीबों को नींद में जाना चाहिए। जिनके पास धन, सोना, चाँदी पदार्थ भरे पड़े हैं उसको नींद में जाने की क्या आवश्यकता है? उसको तो पदार्थों से नींद ले लेना चाहिए। किन्तु ऐसा नहीं होता, क्योंकि पदार्थों में सुख है नहीं।

योगी लोग समाधि में सुख का अनुभव करते हैं। तो समाधि में यह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुख कहाँ से आया ? समाधि में चित्त का अवरोध हो जाता है, और जहाँ मन रुका कि अन्दर का सुख दिखायी देने लगता है। उस शान्त चित्त में अपने आत्मा का प्रतिबिम्ब झलकता है। जब तक मन शान्त रहता है तब तक हम सुख का अनुभव करते हैं। जहाँ चञ्चल हुआ कि सुख गया। यही कारण है कि विषय प्राप्त होने पर कभी सुख होता है कभी नहीं।

अच्छा एक ही विषय से सबको सुख नहीं होता। भूखे आदमी को भोजन दे दो तो उसे आनन्द आयेगा। किन्तु जिसका पेट भरा है उसको भोजन से क्या आनन्द आएगा ? अगर भोजन में आनन्द है तो दोनों को आनन्द आना चाहिए, परन्तु नहीं आता।

इससे सिद्ध हुआ कि पदार्थ का नहीं, अपना ही सुख, सुख है। परन्तु जिन्होंने वस्तु से सुख माना, उन्होंने नाना प्रकार की कल्पना की। किसी ने बैकुण्ठ में सुख माना, किसी ने मोक्ष में सुख माना तो किसी ने गोलोक में सुख माना। परन्तु उपनिषद् कहता है यह सब अल्प है वास्तविक सुख तो भूमा का है—

यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैवसुखं भूमात्वेव
विजिज्ञासितव्य इति। भूमानं भगवो विजिज्ञास स्व इति ॥

छान्दोग्य- ७/२३/१

नारद जी बैकुण्ठ में रहते हैं। एक बार सनतकुमार के पास गये और कहने लगे कि असली सुख कहाँ है ? तो सनतकुमार ने कहा—

"यो वै भूमा तत्सुखम्"

यानी जो भूमा है वही सुखरूप है। उसके अतिरिक्त अल्पसुख भी नहीं है। क्योंकि संसार का कोई भी पदार्थ पूरा नहीं है और परमात्मा पूरा है। अतः उसकी शरण में जाना और वह परमात्मा अपने अन्दर ही है। अपने घट में उसे ढूँढो तो प्राप्त हो जाय। परन्तु हम तो बाहर ढूँढ रहे हैं—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वस्तु कहाँ खोजै कहाँ, केहि बिधि आवै हाथ।
कह कबीर तब पाइये, भेदी लीजै साथ॥

तो सुखरूप परमात्मा तो है भीतर और वह ढूँढता है बाहर तो मिले कैसे ? तो उन्होंने कहा—

यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति। ७/२३/१
यत्रनान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति
नान्यद्विजानाति स भूमाऽथ
छान्दोग्य- ७/२४/१

मनुष्य का मन जब अनात्म पदार्थों से भरा होता है तो चिन्ता क्लेश होगा और जब संसारी पदार्थों को छोड़कर अपने स्वरूप में मिल गया तो वहाँ आनन्द ही आनन्द है। कुछ लोगों ने कई प्रकार के मोक्ष माना है। यथा—

सारूप्य, सामीप्य, सायुज्य और सालोक्य

सारूप्य का अर्थ है कि जिस देवता का सकल उसे मिल गया यानी तदाकार हो गया। सामीप्य का अर्थ है कि जिस देवता का भजन किया उस देवता के समीप रहना। सालोक्य का अर्थ है उसी देवता के लोक में रहना।

जैसे किसी ने बैकुण्ठ माना तो वह भगवान् की राजधानी है, जैसे दिल्ली देश की राजधानी है, तो दिल्ली में राजा बैठा है और प्रजा है कन्याकुमारी तक परन्तु दोनों हैं एक ही देश में। इसी को सालोक्य कहते हैं। सामीप्य में भगवान् के साथ रहता है। सायुज्य का अर्थ है देवता के शरीर से लग जाना। जैसे भगवान् विष्णु आभूषण पहनते हैं तो वह आभूषण भक्त ही हैं। कोई सानिध्य की कामना करता है तो भगवान् उसे अपना आभूषण बना लेते हैं। कोई वस्त्र बन गया, कोई गदा बन गया, कोई कुण्डल बन गया।

किन्तु वेदान्त कहता है कि यह कोई मुक्ति नहीं है, क्योंकि विषय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कोई कब तक भोगेगा ? एक न एक दिन भोग का अन्त तो होना ही है। इसीलिए कहा कि—

"यो वै भूमा तत्सुखम्"

जो भूमा है, पूर्ण है—वही सुख है। आनन्द का अनुभव कैसा है तो उसका उत्तर दिया कि जब मनुष्य का मन—

नान्यत्पश्यति
नान्यच्छृणोति

जब हमारा मन इन्द्रियों के साथ निकल कर बाहर जाता है तो पदार्थों की कल्पना में फँस जाता है, फिर दुःख भोगता है। विषय भोगने के लिए मन बाहर आता और विषय भोगकर पुनः लौट जाता है। इन्द्रियों के संग से ही मन बाहर जाता है। जैसे भीतर का प्रकाश कमरे और दरवाजे से होकर बाहर जाता है। कमरा बन्द कर दिया जाय तो वह बाहर नहीं जाएगा। तो जो इन्द्रियाँ रुपी झरोखे हैं, उन्हें बन्द कर दिया जाय तो मन बाहर नहीं जाता है और जब बाहर नहीं जाता है तो आत्मानन्द की अनुभूति होने लगती है। इसीलिए कहा कि—

नान्यत्पश्यति
नान्यच्छृणोति

अगर बाहर जाय भी तो जो कुछ दिखे उसे परमात्मा ही जाने। कानों से जो भी सुने उसे भगवान् का ही वचन माने तो तब कोई दुःख नहीं। परन्तु अगर मायिक पदार्थ को देखे, मायिक पदार्थ को सुने तो अल्पता आ ही जाती है और वह फिर दुःखरूप हो जाता है। इसीलिए कहा कि दूसरा न देखे, न सुने।

मतलब कि शान्त चित्त में भूमा का अनुभव होता है। वह सुख सबसे बड़ा सुख है। जब उस सुख का अनुभव हो जाता है तो अन्य किसी सुख में मन नहीं लगता, उसकी यही पहचान है। अगर किसी ने शहद खा लिया तो उसे अब गन्ना चूसने में कोई मिठास नहीं आएगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शहद का मिठास इतना तेज है कि गन्ने का मिठास उसकी समता नहीं कर सकता, लेकिन अगर कोई कड़वी चीज खाकर गन्ना चूसे तो उसमें बहुत मिठास लगेगा। इस प्रकार आत्मसुख, ब्रह्मसुख से किसी विषयसुख की समता नहीं की जा सकती। वह शुद्ध सुख है।

जैसे दर्पण का जो मुख है वह तो प्रतिबिम्ब है न। अगर मुख टेढ़ा है तो दर्पण में भी टेढ़ा, अगर मुख में दाग है तो दर्पण के मुख में भी दाग दिखाई पड़ेगा। एक बात और है मुख के साथ-साथ अगर दर्पण में कोई दोष है तो वह भी दिखायी पड़ेगा। एक जगह हमने ऐसा दर्पण देखा जिसमें मुँह बहुत चौड़ा दिखायी देता था, अर्थात् मुख भी दिखेगा और दर्पण का दोष भी। अगर दर्पण में मुख लम्बा-चौड़ा या विकृत दिखाई देता है तो वह दर्पण के दोष के कारण।

इसी तरह संसारी सुख तो प्रतिबिम्ब हैं। जब यह किसी पदार्थ में दिखता है तो उसका दोष भी दिख जाता है। संसार का कोई भी सुख ऐसा नहीं है जिसमें दोष नहीं हो। संसार के प्रत्येक पदार्थ में सुख-दुःख दोनों मिले हैं, क्योंकि सारा विषय तीन गुणों से बना है– रजोगुण, सतोगुण और तमोगुण। इनमें दो का स्वरूप दुःखरूप ही है। किसी में सतोगुण की, किसी में रजोगुण, तो किसी में तमोगुण की अधिकता होती है। जिसमें सतोगुण की प्रधानता है उसे रजोगुण, तमोगुण से दुःख ही होगा। दूसरा तमोगुण प्रिय है तो उसे सतोगुण, रजोगुण से दुःख होगा। चूँकि प्रत्येक पदार्थ में तीनों हैं अतः दो हिस्सा प्रत्येक के प्रतिकूल पड़ते हैं। विषय सुख में दो प्रतिकूलता उसे अवश्य मिलेगी।

तो संसारी सुख से किसी को तृप्ति मिलती नहीं। मनुष्य उससे तृप्ति चाहता है वहाँ तृप्ति है ही नहीं। इसीलिए परमात्मा की ओर, उनकी शरण में जाने की बात कही। आत्मा का सुख ही असली सुख है। परमात्मा का सुख तीनों गुणों से परे है। संसार के सुखों में गुण मिले हैं जो दुःखरूप हैं, वहाँ पर गुण हैं ही नहीं, अतः असली सुख मिलता है। परमात्मा का सुख मिलते ही आदमी तृप्त हो जाता है। उसको लालसा लोभ फिर सताते नहीं। इसीलिए भगवत्प्राप्त पुरुष शांत हो जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भूमा सुख को प्राप्त करने का असली रास्ता यही है कि तुम अपने को गुणों से मुक्त रखो। मन को पदार्थों से अलग रखो। स्वयं द्रष्टा बनकर रहो—

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति ॥

गीता- १४/२२

तुम विषयों में अपने मन को मत भटकाओ। हाँ जिन विषयों के बिना काम न चले, बस आवश्यकता भर उसे कर लो। इसका सीधा तरीका है कि हम पदार्थों के संग्रह पर जोर न दें, क्योंकि वह हमारे वश का नहीं है। जितना मिलना है उतना मिलेगा ही। यदि हजार मिलना है तो हजार मिलेगा, लाख मिलना है तो लाख मिलेगा ही। मिलना है हजार और हम चाहें कि लाख मिले तो नहीं मिलेगा। तो इसका तरीका ऋषियों ने बतलाया कि तुम सिर्फ द्रष्टा बन जाओ। तुम मिलने की कल्पना ही छोड़ दो। तुम्हें तो बस परिश्रम करने से, कर्म करने से मतलब होना चाहिए। फल तो जो मिलना है मिलेगा ही। इसी-लिए शंकराचार्य जी ने लिखा कि—

मूढ़ जहीहि धनागमतृष्णं, कुरु सद्बुद्धि मनसि वितृष्णाम्।
यल्लभसे निजकर्मोपात्तं, वित्तं तेन विनोदय चित्तम् ॥

मोहमुद्गर- २

तुम कुछ समय निश्चित रख लो कि जीवन के लिए, कुटुम्ब के पालन के लिए कुछ धन कमा लूँ। मैं इतना धन कमा लूँ कि कभी खत्म न हो तो यह गलत बात है। धन प्राप्त करना हमारे हाथ की बात नहीं है। वह तो परमात्मा ने पहले ही बाँट रखा है। उससे ना ज्यादा मिलेगा न कम मिलेगा। पुरुषार्थ की भी बात नहीं बिना पुरुषार्थ के भी मिल जाता है और पुरुषार्थ करने पर भी नहीं मिलता है—

जतन बहुत सुख के किये, दुःख के किया न कोय।
कह नानक सुनरे मना, हरि भावे सो होय ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हम जतन तो सुख के लिए करते हैं किन्तु मिल जाता है दुःख। आखिर ऐसा क्यों? तो दुःख तुम्हारे खाते में पड़ा है वह तो तुम्हें मिलना ही है। हम दुःख भोगना चाहते नहीं पर भोगना पड़ता है। जो हमारे कर्म में पड़ा है उसे तो भोगना ही है। इसीलिए नानक जी ने कहा कि तेरे करने से तो कुछ होता नहीं है, होगा तो वही जो हरिजी की इच्छा होगी। जैसे दुःख-सुख हमको बाँट रखा है वैसे ही धनादि भी बाँट रखा है जो भगवान् ने दे रखा है उस पर संतोष रखो। हाँ परिश्रम अवश्य करो और प्रसन्न रहो तब तो आगे उन्नति हो सकती है। अगर हम मान लें कि हमको लखपति बनना है और हमारे भाग्य में लिखा नहीं है तो फिर लाख प्रयत्न करने पर भी बन नहीं सकते। ना तो भगवान् मिले, न लाख रुपये।

तो सीधा तरीका है कि अपने व्यवहार को संक्षेप करो। व्यवहार के पीछे, संसारी पदार्थों के पीछे सारा समय बर्बाद मत करो, नहीं तो गीदड़ की दशा होगी। किसी जंगल में एक बारहसिंघा था। वह बड़ा हृष्ट-पुष्ट था। एक गीदड़ ने सोचा कि इसका माँस खाना चाहिए। परन्तु खाये तो कैसे। उसने सोचा कि कभी न कभी झाड़ी में इसका सींघ जरूर फँसेगा तो मैं इसे मारुँगा। अब गीदड़ उसके पीछे-पीछे फिरने लगा। एक महीना बीत गया, एक साल बीत गया, १२ साल बीत गया उसके पीछे-पीछे चलने लगा। ना भरपेट खाये ना आराम करे, बस उसे मारने की चिन्ता में लगा रहा, सूख कर काँटा हो गया। उसका एक पुराना मित्र मिला, बोला– भाई! तेरे को क्या हो गया है, तू सूखकर काँटा क्यों हो गया। तो उसने बतलाया कि उस बारहसिंघे ने मार दिया मुझको। क्या हो गया, तो उसने सारी कहानी सुनायी। उसने कहा कि बारहसिंघा फँसते थोड़े हैं। फँसने पर सींघ निकालने का उसको ढंग भी आता है। तू क्यों उसके पीछे व्यर्थ पड़ा है। ना वह फँसेगा, ना तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा। बेकार उसके पीछे अपना समय बर्बाद कर रहा है।

इसी प्रकार संसारी पदार्थ रुपी बारहसिंघे के पीछे मनुष्य पड़ा है। वह सोचता है कि इतना पदार्थ हमको मिलना चाहिये और इतना पदार्थ उसके प्रारब्ध में है नहीं। क्योंकि जितना हमें मिलना है उतना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ही मिलेगा, नहीं मिलना है तो चुप पड़े रहो तब भी नहीं मिलना है और उसके पीछे पड़े रहो, खूब परिश्रम करो तब भी नहीं मिलना है।

परन्तु भगवान् का भजन शान्ति का मार्ग है। वह हमारे हाथ की बात है। तो भजन के लिए समय कहाँ से आएगा ? समय तो उतना ही है तो बाहरी कामों से ही समय निकालना पड़ेगा। चार-छः घण्टे शरीर निर्वाह के लिए संसारी काम करो, बाकी समय में भगवान् का भजन करो, साधन करो। ऐसा करते-करते मन को आदत पड़ जायेगी। साधन करने से मन स्थिर हो जाता है। जैसे निर्वात स्थल में रखा हुआ दीपक का लौ शान्त हो जाता है, जब भगवान् में मन को लगा देंगे तो यह स्थिर हो जाएगा। भगवान् में लगने पर मन को कोई चिन्ता, कोई भय नहीं होता, अतः चिन्ता का काम मत करो, भय का काम मत करो। यह तभी होगा जब मन भगवान् में लग जाएगा। संसारी कामों में फँसे तो चिन्ता बढ़ेगी। जैसे उदाहरण दिया—

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमास्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः॥

गीता- ६/१९

चिन्ता को हटाये बिना चित्त स्थिर नहीं हो सकता। इसके लिए साधन लिखा। तो संतों ने बतलाया कि जिन-जिन कारणों से भय होता हो वो काम छोड़ दो। जिनसे निर्भय होकर रह सकते हो उन्हें करो। देखो आदमी चोरी करने जाता है तो चोरी करने के संकल्प से ही उसका मन चंचल हो जाता है, उसका ताला तोड़ना है तो यही सोचेगा कैसे जाऊँ, कैसे ताला तोड़ूँ, कोई देख न ले। कहीं पकड़ा न जाऊँ, सामान मिल गया तो उसे कहाँ छिपाऊँ। यानी नाना चिन्ताओं में पड़ गया तो फिर उसका चित्त कैसे शान्त होगा। तो चोरी, हिंसा आदि बुरा चिन्तन है इनको हमारा मन सहन नहीं करता है और चिन्ता में पड़ जाता है। इसीलिए कहा कि अपना व्यवहार संक्षिप्त कर लो। ऐसा करने से समय बचेगा, उस समय में भजन करो, साधन करो।

तो साधन क्या है ? नाम स्मरण, भगवान् के रूप का ध्यान, आत्म-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चिन्तन आदि करना ही साधन है। इन साधनों के करने से बाहर की कोई चिन्ता रही नहीं और अन्दर एक अवलम्बन मिल गया, तो फिर मन ठहरने लगता है। मन कुछ न कुछ संकल्प विकल्प करता रहता है। आदतवश भी मनुष्य का मन भागता है, क्योंकि भागने की आदत पड़ी है। इसीलिए थोड़ी देर तक भागता है तो उतनी देर तक प्रतीक्षा करनी चाहिए। फिर प्रयास करने से यह स्थिर हो जाता है। उसके लिए दो-तीन उपाय हैं—

१— पहला उपाय तो यही है कि संसारी पदार्थों से सुखबुद्धि निकाल दो। अगर पूरी तरह से संसारी पदार्थों से सुखबुद्धि निकल जाय तो फिर दूसरा साधन करने की जरूरत नहीं। जैसे वन्ध्यापुत्र का चिंतन कभी नहीं किया, खरगोश सींघ का चिन्तन कभी नहीं किया। क्योंकि हमें मालूम है कि ये होते ही नहीं। इसी तरह संसारी पदार्थों में मायिक-बुद्धि, असत्यबुद्धि पूरी तरह हो जाय तो कुछ साधन करना ही नहीं है। सब अपने आप हो जाएगा। अगर मन में ऐसा भाव नहीं बनता तो फिर निम्नलिखित साधन कहे—

१— भगवान का नाम स्मरण

२— भगवान के रूप का ध्यान

३— गुणातीत स्वरूप का चिन्तन

नामरूप के द्वारा भी मन को वश में करते हैं। भक्तों ने इन साधनों की महिमा गायी है। जिसे नाम से सिद्धि हुई उसने नाम की महिमा गायी, जिसे रूप से सिद्धि हुई उसने रूप की महिमा गायी। दोनों में कोई फर्क नहीं है। साधन अपनी रुचि या योग्यता पर निर्भर है। प्रत्येक साधन प्रत्येक को अनुकूल नहीं पड़ता। जैसे अन्न से भूख मिटती है किन्तु प्रत्येक अन्न सभी को अनुकूल नहीं आता, जो अन्न एक को अनुकूल आता है वही दूसरे को प्रतिकूल आता है। इसी प्रकार साधन भी हैं जो साधन एक के लिए अनुकूल है वह दूसरे के लिए प्रतिकूल पड़ सकता है। पंजाबी लोग प्रायः गेहूं खाते हैं और बंगाली लोग चावल खाते हैं। अगर बंगाली गेहूं खाएँ तो पेट फूलने लगेगा और पंजाबी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चावल खाएँ तो उन्हें जुकाम लग जाएगो। मारवाड़ी को गेहूं, चावल दोनों नहीं माफिक आता, वह बाजरा खाता है। तो यह तो देशकाल की बात है। जैसे देशकाल है उसी के अनुरूप भोजन अनुकूल पड़ता है। तो हम यह नहीं कह सकते कि चावल खराब है या बाजरा खराब है। बल्कि अन्न सभी अच्छे हैं। उसी प्रकार नाम, रूप, आत्म अनुसंधान आदि सभी साधन अच्छे हैं। अधिकारी भेद से साधन भेद किए गये हैं।

वास्तविकता यह है कि नाम भी मिथ्या है और रूप भी मिथ्या है, क्योंकि दोनों माया हैं। हमें वहाँ जाना है जहाँ न रूप है न नाम। जैसे घर जाना है तो नाम रूप एक सवारी है। चाहे नाम से जाओ या रूप से जाओ, दोनों साधन मात्र हैं।

हमने वहाँ जाना है जहाँ नाम है न रूप। दोनों पहुंचाने के साधन मात्र हैं। तो अब विचार करना है कि नाम से कैसे जा सकते हैं और रूप से कैसे जा सकते हैं। अब नाम में भी भेद हैं, नाम कई हैं। किसी ने ॐ की प्रशंसा की है, किसी ने राम की, किसी ने कृष्ण की तो किसी ने वासुदेव की। जिसको जिस नाम से सिद्धि मिल सकती है, बल्कि यहाँ तक दृष्टान्त मिलता है कि वाल्मीकि को 'मरा-मरा' कहने से सिद्धि मिल गयी—

उलटा नाम जपत जग जाना।
बाल्मीकि भये ब्रह्म समाना॥

तो भाव यह है कि चित्त रुकने पर काम हो गया। यदि मन काबू में आ गया तो राम कहो या मरा कहो एक ही बात है। तात्पर्य यह कि साधन में कोई हठ या पक्षपात नहीं करना चाहिए। अपने से जो बन पड़े वही साधन करना है। इस बात पर कल प्रकाश डालेंगे।

ॐ पूर्णमदः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भ्रान्ति निवारण कैसे हो ?

दो पहलवान लड़ते हैं तो एक को हारना ही है, जो दुर्बल होगा हारेगा। ज्ञान-अज्ञान की ऐसी बात है, ज्ञान और अज्ञान का विरोध है। ज्ञान प्रकाशरूप है और अज्ञान अंधकाररूप। तो अंधकार और प्रकाश तो विरोधी हैं ही। अग्नि और जल का विरोध है। तो अंधकार को भगाने के लिए जितना गहन अंधकार हो उतना प्रबल प्रकाश चाहिए। जितना अज्ञान प्रबल है, भ्रान्ति जितनी जोरदार है, उसके अनुपात में ही ज्ञान भी चाहिए, तभी उसको हटा सकते हैं। भ्रान्ति अपरोक्ष है। दो प्रकार की भ्रान्तियाँ हैं– एक परोक्ष, दूसरी अपरोक्ष। मैं शरीर हूं, मैं सुखी-दुःखी हूं, मैं कर्त्ता भोक्ता हूं– इसका अपरोक्ष हो रहा है, इसका प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है। इसी प्रकार मैं शुद्ध सच्चिदानन्द रूप हूं, मैं ब्रह्मस्वरूप हूं, मैं निर्विकार हूं, इस बात का अपरोक्ष अनुभव होना चाहिए, तब भ्रान्ति हटती है, नहीं तो ज्यों की त्यों बनी रहती है। इसी लिए कहा कि—

शिवोऽहं शिवोऽहं, शिवोऽहं शिवोऽहं

शरीर में आत्मबुद्धि जैसी हो रही है। अज्ञानकाल में जैसे हम संसारी पदार्थों को महत्व दे रहे हैं और उनको सत्य मान बैठे हैं, शरीर को ही अपना रूप मान लिया है वैसे ही परिपक्व बुद्धि आत्मा में करनी है। अगर वैसी बुद्धि ब्रह्म में पक्की हो जाये तो कृतकृत्यता। उसको और कुछ शेष नहीं करना होगा, सबसे बड़ा यही कर्म है। जिस काल में, जिस स्थान में वह मर जाए तो उसके ज्ञान के फल में कोई अन्तर नहीं आता। दूसरे लोगों को उत्तम काल में, उत्तम देश में मरना चाहिए। देखो अज्ञानी मनुष्य मरने पर भी स्वतन्त्र नहीं है। मरना भी उसको चाहिए किसी पवित्र देश में, किसी पवित्र काल में, तब उसके पुण्यों का फल मिलेगा। यदि पवित्र देश, काल न मिले तो फल रुक जायेगा। तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कितना उसमें बन्धन है। कर्म का फल और उपासना का फल देश, काल के अनुसार मिलता है। अगर पूरा उपासक है तो मृत्यु का ज्ञान हो जाता है। वैसे तो हर एक को होता है परन्तु हर एक उसे पहचान नहीं सकता, किन्तु साधक लोग जान जाते हैं। उसके लिए अपने मन को रोककर अपने हृदय में ध्यान करे। हृदय से एक सुषुम्ना नाम की नाड़ी निकलती है जो ब्रह्म-द्वार होकर ब्रह्मलोक जाती है। बस हृदय में प्रविष्ट हो और फिर सुषुम्ना के द्वारा अपने लिंग शरीर (सूक्ष्म शरीर) को वहाँ से निकाले तो वह ब्रह्मलोक को प्राप्त होगा—

सूर्य द्वारेन ते विरजाः प्रयांति।
यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा॥

मुण्डक- १-२-११

इसका स्मरण भगवान् ने भी कराया है—

प्रयाणकाले मनसाऽचलेन
भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्येप्राणमावेश्य सम्यक्
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥

गीता- ८-१०

भ्रूमध्य में यदि प्राण को स्थापित करके शरीर छोड़ता है तो उसको दिव्य लोक प्राप्त होगा। यदि ऐसा नहीं कर सकता तो जन्म में आना पड़ेगा। तो मरने में भी अज्ञानी को स्वतन्त्रता नहीं है। ज्ञानी के लिए कोई बन्धन नहीं है कि वह संक्रान्ति को ही मरे या हरिद्वार में जाकर मरे। जिस समय जिस देश में वह बेशक मर जाये—

"मुक्तः सो नात्र संशयः"

वह वहीं मुक्त हो गया इसमें कोई संदेह नहीं। उसके फल में कोई फर्क नहीं पड़ा क्योंकि फल तो उसको मिल चुका है। विघ्न तो तभी तक है जब तक कार्य की सफलता नहीं है, पर जिस कार्य के लिए हमने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साधन किया था, वह फल मिल गया, तो अब विघ्न क्या करेगा ? तो ज्ञान का फल क्या है ? ज्ञान का फल है अज्ञान की निवृत्ति। अज्ञान की निवृत्ति होने से, अज्ञान के कारण जो भ्रान्तियाँ थीं वह अपने आप दूर हो जाती हैं। अज्ञान है भ्रान्ति की जड़। जैसे जड़ कट जाने से ऊपर का वृक्ष अपने आप गिर जाता है, उसी प्रकार सारी भ्रान्तियों की जड़ जो अज्ञान है, जब इसकी निवृत्ति ज्ञान से हो जाती है तो फिर सारी भ्रान्तियाँ निकल जाती हैं।

उसको बन्धन इसलिए है कि उसको अभी फल मिला नहीं है, क्योंकि उसका फल तो इस लोक से ब्रह्मलोक में जाना है। चूंकि उसको अभी फल प्राप्त नहीं है, अतः उसके मार्ग में रुकावट आ सकती है, पर ज्ञानी का फल तो अज्ञान की निवृत्ति है। वह तो उसको तत्काल हो चुका है, अब विघ्न आये भी तो उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता है। जैसे कोई छत पर सीढ़ी से चढ़ रहा हो तो जब तक वह चढ़ नहीं गया तब तक उसको गिरने का भय है, पर जब चढ़ गया तो भय समाप्त। ज्ञान की प्राप्ति के बाद वह जहाँ मर्जी वहाँ मर जाये। कबीर ने सुना कि काशी में मरने से मोक्ष होता है और मगहर में मरने से नरक होता है। कबीर ने सोचा कि अगर हम काशी में मर कर मुक्त हो गये तो हमने जो इतना साधन किया है उसका क्या फल होगा? हम तो मगहर में मरेंगे। वे जानबूझकर वहाँ गये और वहीं उन्होंने शरीर त्याग किया—

जो काशी तन तजै कबीरा रामहि कौन निहोरा रे।
जस काशी तस ऊसर मगहर राम हृदय बस मोरा रे॥

जो ज्ञान को प्राप्त कर चुके हैं उनको विघ्न कुछ नहीं कर सकता है। जिसको यह अपरोक्ष हो जाए कि मैं ब्रह्म हूं तो उसको मृत्यु की कोई बाधा नहीं है। कुछ लोग शंका करते हैं कि हमने इतना सत्संग किया, इतना सब कुछ किया हमको फल नहीं हुआ, तो उसका कारण यही है कि अभी पूरा अपरोक्ष हुआ नहीं। अपरोक्ष एक बार हो जाए तो अनिवार्य रूप से फल होगा। जैसे रोटी खाई है तो भूख को हटना ही है। तो जब ज्ञान हो गया तो अज्ञान की निवृत्ति होनी चाहिए और अज्ञान की निवृत्ति होने से उसको पूरी शान्ति मिलनी चाहिये। पर यदि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं मिल रहा है तो इसका यही अर्थ है कि उसको पूर्ण ज्ञान नहीं है। ज्ञान के तीन साधन लिखे हैं—

१- श्रवण, २- मनन, ३- निदिध्यासन।

श्रवण से सही रास्ता का निश्चय होता है। देखो चौराहे पर जाने पर पूछना पड़ता है कि अमुक जगह कौन सा रास्ता जायेगा ? यदि जानते हो तब भी थोड़ा पूछ लिया तो बात पक्की हो जाती है। इसी तरह कई प्रकार के मार्ग संसार में चले। जितने प्रकार के मनुष्य हैं प्रायः उतने प्रकार के मार्ग हैं—

मारग सोई जाकंह जो भावा

जिसको जो अच्छा लग जाए वह वैसा ही मार्ग निकाल लेता है। नाना सम्प्रदाय ऐसे ही बनते हैं। एक सम्प्रदाय में कुछ कसर मालूम पड़ती है तो उसको दूर करने के लिये दूसरा बनाते हैं, उसमें दोष मालूम पड़ा तो तोसरा बनाए। तो अनन्त मार्ग अनादि काल से चले आ रहे हैं, परन्तु सही मार्ग तो एक ही है न ? तो श्रवण करने से निश्चय होगा कि सही मार्ग क्या है, सही लक्ष्य क्या है ? इसीलिए पहले श्रवण कहा। श्रवण का अर्थ है—सत्संग करना तथा शास्त्र देखना। इससे अपने असली लक्ष्य और मार्ग का पता चल जाता है। ऐसे मन्त्रों से सिद्धियाँ मिल जाती हैं। किसी को एक सिद्धि, किसी को दस सिद्धि। तो जैसे अधिक धन वाले के पास कम धन वाले की कोई कीमत नहीं होती है वैसे ही बड़े सिद्धि वालों के पास छोटे सिद्धि वालों की पूछ नहीं है।

दिल्ली की एक घटना है। दो आदमी थे उनको मूली खाने का शौक था। भोजन में मूली जरूर होनी चाहिये। एक दिन मूली नहीं मिली तो दोनों ने बाजार में अपने मुनीम भेज दिये। संयोग से बाजार में एक मूली वाले के पास सिर्फ एक मूली थी। मूली ताजी और सुन्दर थी। एक बोला मूली दो, क्या पैसे लोगे ? वह बोला एक पैसा। दूसरा गया कि हम दो पैसे देते हैं हमको दे दो। पहले ने कहा हम चार देंगे। दूसरे ने कहा हम चार आना देंगे। उसने कहा हम रुपया देंगे। ऐसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होते-होते एक लाख रुपए तक भाव पहुंच गया। तो जिसने लाख कहा वह मूली वाले को लेकर मालिक के पास पहुंचा कि चलो हम तुमको दुकान से पैसा दिला देंगे। जब सेठ ने मूली देखा तो बड़ा खुश हुआ। बहुत बढ़िया मूली है, ऐसी मूली तो कभी नहीं मिली। मुनीम ने कहा बड़ी कीमती मूली है, तिजोरी की चाबी दो, इसकी कीमत देनी है। मूली की कीमत और तिजोरी से देनी है? क्या है, कितना देना है? तो एक लाख रुपया देना है। वह सुनकर हैरान रह गया। फिर मुनीम ने सारी घटना सुना दी। सेठ ने कहा कि तुम बड़ा अच्छा आदमी है, तुमने हमारी पगड़ी की लाज रख ली। कोई बात नहीं, लाख क्या होता है, बोला लाख रुपया इसको दे दो और बीस हजार रुपए तुमको इनाम में हुये, तुमने हमारी इज्जत रख ली। उधर दूसरा मुनीम गया अपने मालिक के पास। उसने पूछा– मूली लाए नहीं? क्या करें जी मूली तो एक थी वह तो फलाने का मुनीम ले गया। तुम ज्यादा कह देते। वह चार पैसा कहता तो दो आना देकर ले आते। उसने सारी बात बता दी। बोला कि उसने लाख कह दिया, तो तुमने सवा लाख क्यों नहीं कहा? (हँसी) मैं तो डर गया। उसने कहा कि तुमने मेरी इज्जत भी खराब कर दी तथा उसके लाख रुपए भी खराब किए। अगर तुमको नहीं ले आना था तो आने दो आने पर ही चुप हो जाते। अब तुम लाख रुपया तो बढ़ा दिए और पच्चीस हजार में डर गए। तो तुम हमारे काम के लायक नहीं। तुम जाओ हमारी दुकान से। तुम तो और भी कहीं हमको धोखा दे दोगे। तो बड़ी चीज जब आ जाए तो छोटी को लज्जित होना पड़ता है। सिद्धियों में भी ऐसा ही है। बड़े सिद्ध के सामने छोटे सिद्ध को लज्जित होना पड़ता है। तो जैसा दुःख यहाँ, वैसा दुःख वहाँ भी। शास्त्र इस बात को समझा देता है कि इन बातों में नहीं पड़ना है। यह तो संसारी फल है। सिद्धियाँ तो मंत्र अथवा साधना में श्रद्धा बढ़ाने के लिए हैं। क्योंकि जब सिद्धियाँ मिल रही हैं तो ज्ञान का फल मोक्ष भी अवश्य मिलेगा। इस विश्वास और श्रद्धा के लिए सिद्धियाँ दिखलाई जाती हैं। ऐसे सिद्धियों का कोई तात्पर्य नहीं है। वह तो इसलिए हैं कि मनुष्य को संशय नहीं रहे कि ज्ञान का फल मोक्ष होगा कि नहीं, क्योंकि इसमें कोई प्रमाण तो है नहीं। जो मुक्त हो गया वह तो कहता नहीं कि मैं मुक्त हो गया और जो मुक्त हुआ हो नहीं उसको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मुक्ति का पता ही क्या ? तो शास्त्र के इस सिद्धान्त पर कि—

ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्व पाशैः

श्वेताश्वतर- ४-१६

कि आत्मज्ञान होने के अनन्तर मनुष्य सम्पूर्ण बन्धनों से छूट जाता है। इस पर विश्वास के लिए उन्होंने मार्ग में कुछ सिद्धियाँ रख दीं। फिर उसको बड़े साधन में भी विश्वास हो जाता है। जब छोटे मंत्र से सिद्धि मिल गई तो ज्ञान से मोक्ष हो सकता है। ज्ञान से मोक्ष होता है उसको पुष्ट करने के लिए लौकिक कर्म हैं। इस बात का ज्ञान तब होता है जब श्रवण कर लेते हैं। अब वह और कहीं फँसता नहीं है। उसके सामने लाख सिद्धियाँ और चमत्कार आयें तो उसको वह तुच्छ मानता है। अतः आत्मज्ञान को सबसे बड़ा फल भगवान् ने कहा है—

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ॥
नैष्कर्म्य सिद्धि परमां सन्यासेनाधिगच्छति।

गीता- १८-४९

सबसे बड़ी सिद्धि यही है कि जिसने अपने आपको जान लिया, वह सब कुछ जान लिया, क्योंकि इसका फल नित्य है। बाकी सभी फल अनित्य हैं। कितना ही बड़ा सिद्ध हो जाये तो उसकी सिद्धि समाप्त हो जाती है, आखिर में उसको खाली होना पड़ता है और उसको फल प्राप्ति के अनन्तर पुनः च्युत होना पड़ता है—

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥

गीता- ८-१६

ब्रह्मलोक से भी मनुष्य को वापस आना पड़ता है। परन्तु ज्ञान का फल नित्य है। अतः परम सिद्धि है। मनुष्य को सब कुछ छोड़कर इसके पीछे लगना चाहिए। धीरे-धीरे श्रद्धा होने पर मनुष्य ज्ञान मार्ग में लग जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ज्ञान का श्रवण हुआ, अब उसका मनन करना है। मनन का अर्थ है कि शास्त्र में जो कुछ कहा है वह बिल्कुल ठीक है और इस बात को मन को मना देना मनन है। इसको अपरोक्ष निश्चय बोलते हैं। जैसे सफेद काँच का गिलास है, उसमें लाल रंग का पानी भर दिया जाए तो वह लाल दिखता है। एक कहता है कि गिलास सफेद है। दूसरा कहता है कि यह साफ लाल दिख रहा है, सफेद कहाँ है ? तो उसको दिख रहा है लाल, वह कह रहा है सफेद। तो यहाँ संदेह यह है कि उसका कहना सत्य है या जो मैं देख रहा हूं वह सत्य है। वह क्या करता है कि गिलास में से लाल पानी को अलग कर देता है। जब गिलास खाली हुआ तो सफेद का सफेद है। फिर उसमें पानी भर दो किन्तु उसके मन में सन्देह नहीं होगा कि गिलास लाल है, क्योंकि अब प्रत्यक्ष उसने देख लिया न। यही अपरोक्ष अनुभव है। चाहे वह लाख सुनता रहे कि गिलास लाल नहीं सफेद है, पर जब तक उसको लाल रंग निकाल कर दिखा नहीं दिया जाए तब तक वह मान नहीं सकता। और जब तक मान नहीं सकता तब तक उसको फल भी नहीं है। इसको बोलते हैं दृष्ट अपरोक्ष। इसी तरह से शास्त्र तो यह कहता है—

प्रपंचोपशमं शान्तं, शिवं अद्वैतम्
चतुर्थमन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ।।

माण्डूक्य-७

वह आत्मा तो शिव है, मंगलरूप है, आनन्दरूप है, उसी के आनन्द से सब आनन्द है। उसमें कोई दुःख नहीं है क्योंकि वह अद्वैत है—उसके सिवाय और कुछ है नहीं और दुःख दूसरे से होता है अपने से नहीं होता, और उसमें दूसरा है कुछ नहीं। वह तो आप ही आप है। उसका अनुभव तुरीय अवस्था में होता है। 'चतुर्थम्'—यानी तुरीय अवस्था। चार अवस्थाएँ हैं— एक मूर्छा अवस्था भी है, पर उसको सुसुप्ति में ही ले लेते हैं। तुरीयावस्था क्या है ? जहाँ न तो इन्द्रियों से कुछ देख-सुन रहा हो और न जहाँ मन से कुछ कल्पना करता हो और न सोया हो और मरा भी नहीं हो तो वही तुरीयावस्था है—

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम् ।।

कठ- २-६-१०

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जब पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ अपना काम छोड़ देती हैं और मन भी अपना संकल्प-विकल्प छोड़ देता है और बुद्धि भी शान्त हो जाती है—यानी ऐसी जाग्रत तुरीयावस्था है, यही समाधि है, इसी में उसको मालूम पड़ता है कि आत्मा क्या है ? इस स्थिति में आने पर आत्मा का अपरोक्ष होता है। यहाँ पर द्वैत का दर्शन भी नहीं है। इससे मालूम पड़ा कि जगत् अवस्थाओं का धर्म है, यह आत्मा का धर्म नहीं है, क्योंकि तुरीय में आत्मा होता है किन्तु वहाँ जगत् नहीं होता है। अब उसको निश्चय हो गया कि आत्मा निष्प्रपंच और अद्वैत है। अब समाधि से जाग्रत में आने पर भी उसको भ्रम नहीं होता है कि मैं संसारी हूं। अगर उसके समक्ष संसार की प्रतिकूलता आती भी है तो वह घबड़ाता नहीं है। वह उसको स्वप्नवत् मान लेता है और स्वप्न का प्रपञ्च तभी तक सुख-दुःख देता है जब तक कि आदमी स्वप्न में है। जब जाग्रत में आता है तो स्वप्न का सुख-दुःख भी छूट जाता है। जब संसार को मिथ्या और स्वप्नवत् मान लिया तो फिर इन घटनाओं का हम पर असर नहीं होना चाहिए। राम जी को भगवान् क्यों कहते हैं ? क्योंकि जब उनको राज्य तिलक मिलने लगा तो उनके मन में कोई प्रसन्नता नहीं कि इतना बड़ा राज्य मिल गया। लोग म्युनिसपैलिटी का चेयरमैन ही बन जाए तो फिर जमीन पर पैर नहीं रखते। किन्तु जिसको अयोध्या का राज्य तिलक मिल रहा है उसको कोई प्रसन्नता नहीं, और अब राज्य मिलने का समय आया तो उनको आज्ञा मिली कि तुम चौदह साल के लिए जंगल में जाओ और वह भी तपस्वियों का वेश बनाकर। इससे भी उनके मन में कोई क्लेश नहीं—

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तया न मक्लेवनवास दुःखतः।
मुखाम्बुज श्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मञ्जुलमंगलप्रदा ॥

रामचरितमानस- २-१

भगवान् की मुख कांति में राज्य की खबर सुनकर कोई वृद्धि नहीं आयी और वनवास की खबर सुनकर कोई कमी नहीं आयी। भगवान् हमको भी ऐसा आशीर्वाद दें कि हमारी भी ऐसी स्थिति बनी रहे। क्योंकि सुख-दुःख तो संसार का धर्म है। आत्मा का धर्म थोड़े है ?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अब हम चाहते हैं कि हमारा कोई हमसे वियुक्त न होय। हमारा कुछ घाटा नहीं हो। तो यह तो संसार की बात है न? अगर कोई मरे नहीं, किसी को घाटा नहीं हो, तो फिर संसार काहे का? फिर तो वह बैकुण्ठ है। संसार तो वही है जहाँ उथल-पुथल होता रहे। आज सुख तो कल दुःख। द्वन्द्वों का नाम ही संसार है। द्वन्द्व परस्पर विरोधी चीजों में होता है। जैसे सुख-दुःख, उन्नति-अवनति, संयोग-वियोग, हानि-लाभ, जन्म-मरण, इन्हीं का नाम संसार है। तो हम रहें संसार में और चाहें कि यह नहीं हो, तो यह कभी नहीं हो सकता, क्योंकि संसार की बातें तो संसार में होनी ही हैं। हाँ, तत्वज्ञानी के इन परिवर्तनों में अपनी स्थिति पर परिवर्तन नहीं आता, यही ज्ञान की महिमा है। स्थितिप्रज्ञ के लक्षणों में भगवान् ने कहा है—

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥

गीता- २-५६

स्थितिप्रज्ञ वही है जो दुःख से उद्विग्न न हो, क्योंकि वह तो जागा हुआ है न? और दुःख है स्वप्न का। तो फिर स्वप्न की दुर्घटना जागने पर क्या असर करेगी? अनुकूल पदार्थों में भी उसको कोई स्पृहा नहीं। क्योंकि उसका संसारी पदार्थों से राग-द्वेष, लोभ, क्रोध सब हट गया। तो झूठे पदार्थों में क्या राग, क्या द्वेष? वह तो तभी तक होता है जब तक हम उसको सत्य मानते हैं। जैसे अज्ञानी को खोटा नोट मिल जाये तो प्रसन्न हो सकता है, किन्तु जो नोट को ठीक से पहचानता है उसको खोटे नोट से क्या खुशी होगी? इसी तरह जब तक मनुष्य संसार को सुखरूप और सत्यरूप मानता है तभी तक पदार्थों में राग-द्वेष करता है। जब रहस्य खुल गया तो राग भी गया द्वेष भी गया। जैसे किसी ने सपने में गाली दी तो जागने पर थोड़े उसके घर लड़ाई करने जाते हैं? क्योंकि हम समझते हैं यह तो स्वप्न की बात है, सत्य तो है नहीं।

वैसे ही तत्त्वज्ञानी जागा हुआ पुरुष है, बाकी लोग सोकर सपना देख रहे हैं। तो स्वप्नवाला पुरुष अपमान कर भी जाता है तो तत्त्व-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ज्ञानी तो समझता है कि यह तो स्वप्न की बात है न ? इसीलिए उसके मन में कोई क्षोभ नहीं होता है। उसका राग, भय, क्रोध सब समाप्त हो जाता है। तो अब शान्ति ही शान्ति है। निश्चिन्त स्थिति ही ब्रह्म स्थिति है, यही जीवन का लक्ष्य है। यही आत्मा का स्वरूप भी है। पर यह तभी होता है जब आत्मा के स्वरूप का अपरोक्ष अनुभव हो जाय। अपरोक्ष तब तक नहीं हो सकता जब तक हम निर्विकल्प अवस्था न बनायें। तो कहना सुनना तो हो गया, अब नियम और अभ्यास प्रतिदिन करना चाहिए। संसार के कामों में मेहनत तो ज्यादा है और लाभ थोड़ा है। कोई कितना ही कमाये, रोटी-कपड़े से अधिक उसको नहीं। चाहे वह करोड़पति हो जाये तब भी अधिक नहीं। वह भी संपत्ति को लादे नहीं चलता है। रुपया चाहे तो बैंक में पड़ा है या जमीन में दबा रखा है, या उधार दे रखा है। रोटी-कपड़ा से अधिक सुख है नहीं। और जब चलने लगे यहाँ से तो कपड़ा भी छीन लेते हैं। मुर्दे पर दूसरा कपड़ा डालते हैं। पुराना नहीं डालते हैं, क्योंकि उनको संशय रहता है कि इसमें उसने कुछ छिपा कर रखा होगा। नया लाकर बाजार से डालेंगे कि इसमें तो कुछ छिपा सकता नहीं। इससे कुछ अधिक उसको मिलता नहीं है।

अच्छा अब परमात्मा की तरफ जाओ तो मेहनत कम और लाभ अधिक। यहाँ तो लोगों से दुश्मनी उठाकर, मान-अपमान सहकर, नाना प्रकार के कुचक्र से धन कमाना पड़ता है और मिला रोटी-कपड़ा, वह भी सभी को नहीं मिलता, कई रात-दिन परिश्रम करते हैं परन्तु दोनों टाइम भोजन भी ठीक नहीं मिलता। इधर तो लाभ ही लाभ है। परन्तु संसारी कामों की आदत पड़ गई है, इसलिए उसी को करते हैं। तो अब धीरे-धीरे इसको बदलना है। प्रातः, सायंकाल संसार को भूलकर भगवान का ध्यान करो। चौबीस घंटे में दो घंटे भी तो अपना स्वरूप के लिए निकालो। बैठो और 'शिवोऽहं' का जाप करो। सारी कल्पनाओं को हटा दो। केवल यही अनुभव करो कि मैं ही मैं हूं। बैठकर मन को कहीं बाहर न जाने दो। सारे दृश्यों को भूल जाओ। ऐसा अभ्यास करने से कुछ काल में आत्म-सुख की उपलब्धि स्वमेव हो जाती है।

ॐ पूर्णमदः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुख कहां है ?

जीव का स्वभाव यही है कि अनुकूल परिस्थिति में यह सुखी रहता है, प्रतिकूल परिस्थिति में दुःखी रहता है। संसार में परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं। चाहे वह देवराज इन्द्र ही क्यों न हो जब तक वह त्रिगुण के अन्तर्गत है उसको अनुकूलता-प्रतिकूलता अवश्य आयेगी। सदा सुखी रहने वाला केवल आत्मज्ञानी है। प्रतिकूलता में जो सुखी रहना सीख ले वही सदा सुखी है। यही तत्वज्ञान है। शंकराचार्य ने लिखा है—

भज गोविन्दं भजगोविन्दं भजगोविन्दं मूढ़मते
योगरतोवा भोगरतोवा, संगरतोवा संगविहीनः।
यस्य ब्रह्ममणि रमते चित्तम् नंदति नंदति नदत्येव ॥

इसमें ज्ञानी की स्थिति बतलायी। जिस पुरुष का चित्त आत्मा में लग गया, ईश्वर में लग गया वह सदा प्रसन्न ही रहता है। चाहे किसी स्थिति में हो, चाहे योग में रहे, चाहे भोग में रहे, संसार में पदार्थों में रहे। योग में रहना अथवा भोग में रहना यह परिस्थिति तो प्रारब्ध के अधीन है, ये हमारे हाथ की बात नहीं है। जैसे सर्दी, गर्मी, वरसात आदि प्राकृतिक धर्म हैं। इनको प्रकृति बदलती रहती है। वैसे ही जीवन में उत्थान-पतन भी पूर्व में किये गये कर्मों के अनुसार होता है। उसको हम हटा नहीं सकते। कोई ज्ञानी, भोगी भी है। जैसे राजा जनक, कृष्ण, राम आदि भोगों में रहे। यह भी हो सकता है कि वह दस, बीस, पचास आदमियों के साथ रहे। जैसे कई मंडलियाँ रखते हैं तो उनके साथ बहुत लोग रहते हैं। हो सकता है कि अकेला ही रहता है। परन्तु इन परिस्थितियों का उसके अन्तःकरण पर कोई परिणाम नहीं होता। जिसका चित्त ब्रह्म में रम गया, वह किसी भी स्थिति में क्यों न रहे, आनन्द में ही रहता है। नंदति नंदति तीन बार कहा यानी उसके आनंद में कोई सन्देह नहीं। गीता में भगवान् ने कहा—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जो पुरुष = आत्मा को ठीक से जानता है और गुणों के सहित प्रकृति के स्वरूप को भी जानता है, वह हमेशा मेरे में ही है। तो भगवान् का स्वरूप तो आनन्दमय ही है। दूसरा आनन्द में नहीं रह सकता है। इसका कारण क्या है ? इसको पंचदशीकार ने लिखा—

ज्ञानिनोऽज्ञानिनश्चात्र समे प्रारब्ध कर्मणो।
न क्लेशो ज्ञानिनो धैर्यान् मूढः क्लिश्यत्यधैर्यतः ॥

पंचदशी- ७-१३३

प्रारब्ध का भोग तो सबको इसलिए बड़े-बड़े ज्ञानियों को भी सता जाते हैं। परन्तु ज्ञानी को धैर्य रहता है।

मूढ़ क्लिश्यत्य धैर्यतः— मूढ़ में धैर्य नहीं होने के कारण दुःखी होते हैं। अज्ञानी न तो प्रकृति के स्वरूप को जानता है, न पुरुष के स्वरूप को जानता है।

अशक्यार्थस्य संकल्पाद् भ्रान्तस्य व्यसनं बहु।

पंचदशी- ७-१६६

अज्ञानी तो अनेक प्रकार के असम्भावित संकल्प करके दुःखी होता है। क्योंकि—

मा विनश्यत्वयं भोगो वर्धतामुत्तरोत्तरम्।
मा विघ्नाः प्रतिबध्नन्तु धन्योऽस्म्यस्मादिति भ्रमः ॥

पंचदशी- ७-१६७

अनुकूल में फँस गया है तो वह चाहता है कि जो पदार्थ मेरे को मिला है तो वह कभी नष्ट न हो, यही दुःख का कारण है। जब तक मनुष्य मर्यादा में है तभी तक फूलता-फलता है, जहाँ मर्यादा का अतिक्रमण हुआ कि उसका पतन हुआ—

न नीति मार्गम् परिलंघयंति

महापुरुष नीति मार्ग का उल्लंघन नहीं करते हैं। अब कोई चाहे कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हमारे मार्ग में विघ्न नहीं आवे तो हो नहीं सकता है। दुःख का कारण यही है कि हम चाहते हैं कि मेरे कार्य में कोई विघ्न नहीं आये। शिवजी के कार्य में विघ्न आए, विष्णु के कार्य में विघ्न आए। फिर ये कहे कि मेरे कार्य में विघ्न नहीं आए, तो भला कैसे हो सकता है—

संसार में सबसे अधिक कोई नहीं है। एक से एक बढ़कर हैं। अभिमान पतन का कारण है।

एक बार राजा सभा में प्रश्न हुआ कि बतलाओ बिना धुएँ को अग्नि कौन सी है? और बिना पंखों के कौन उड़ता है। बिना बरसात के जिसमें बाढ़ आ जाए, वह कौन सो नदी है? लोहा नहीं और पत्थर नहीं, फिर भी उसमें भार हो वह कौन सा पदार्थ है? तो उत्तर दिया कि— बिना धुआँ की अग्नि चिन्ता है। बिना पंखों का पक्षी है यश-अपयश। नाम और बदनाम दोनों दिगंत व्यापी होते हैं। बिना बरसात के बाढ़ वाली नदो है तृष्णा। अभिमान सबसे भारी है, यह इतना वजन-दार है कि जिसमें आया उसको हो ले डूबा। इसलिए—

सुनहु राम कर एक सुभाऊ।
जन अभिमान न राखत काऊ॥

नाना प्रकार के अभिमान हैं—

ईश्वरोऽहमहं भोगी, सिद्धोऽहं बलवान् सुखी।
आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया॥

गीता- १६-१४-१३

यही आसुरी संपत्ति है जिससे पतन होता है। अभिमान एक प्रकार का भ्रम है। हम जिसको बड़ा समझते हैं उससे बड़े कई हैं।

पुरानी बात है। एक लाहौर का आदमी था। उसके पास आठ, दस लाख रुपया हो गया। तो उसने कहा कि लाहौर में क्या काम करें, बॉम्बे चलें। तो आया बॉम्बे। वहाँ पर तो लखपति को साधारण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दुकानदार समझते हैं, वहाँ इतने धनी हैं। इसने समझा कि कुछ काम करें किसी सेठ के साथ मिलें। किराए पर कोठी ले ली, बग्गी ले ली। एक दिन सैर करता हुआ टमटम हाँकते जा रहा है। हाँकने वाला पीछे खड़ा था। वहाँ कोई बॉम्बे का मारवाड़ी सेठ जो करोड़ों का मालिक था। वह सीधा-सादा था। सड़क में जा रहा था। इतने में घंटी बजाई, बेचारा बूढ़ा नहीं सुना। जोर से चिल्लाया बूढ़े मरना है? एक तरफ होकर नहीं चलता। उसने देखा कौन है? वे तो चले गये। उसके साथ था एक नौकर। उसने कहा कि जरा पता करो कि टम-टम वाला कौन है? मेरे को ऐसा कहने वाला कौन है? कितनी इसकी सम्पत्ति है? कहाँ रहता है? उसने खोज की। बोला कि लाहौर से आया है। आठ-दस लाख रुपया है उसके पास, यहाँ कोई व्यापार करने आया है। बस क्या था? उसने अपना मुनीम उसके पास भेजा। आपको सेठ जी बुलाए हैं। गया तो बैठाया आदर से। हाल-चाल पूछा। बोला कि आपकी क्या सेवा करूँ? बोला कि हम तो कोई व्यापार करना चाहते हैं। वह बोला कि बाम्बे के लोग बड़े बेईमान होते हैं। तो हम भी एक हिस्सेदार खोजते हैं। बड़ी खुशी हुई जो आप आ गए। तो हम तुम मिलकर कोई काम करें, तो क्या किया जाय। अच्छा बोलो तुम कितना रुपया लगा सकते हो? वह बोला कि हमारे पास तो दस लाख रुपया है। तो हम आठ-दस लाख लगा सकते हैं। कोई बात नहीं दोनों आठ-आठ लगायें। तो १६ लाख की रुई खरीद लेते हैं, उसी का व्यापार करेंगे। ठीक है। लिखा-पढ़ी हो गई, एजेंट भेज दिए, रुई जमा होने लगी। जब १६ लाख की रुई खरीदी गयी और गोदाम में जमा हो गयी तो उसने अपने नौकर से कहा कि इसमें आग लगा देना। आग लग गई, जल कर भस्म। अब उसको पता लगा तो पसीना-पसीना हो गया। उधर वह सो गया। नौकर से कह दिया कि कोई मिलने आये तो कह देना कि सेठ जी इस समय नहीं मिलते। वह नंगे पैर, नंगे सिर सेठ जो के पास दौड़ा आया। सेठ जी से मिलना है। दरबान ने कहा कि इस वक्त वो किसी से नहीं मिलते, मिलना हो तो कल दुकान पर आना, वहीं मिलेंगे। नहीं-नहीं मैं उनका हिस्सेदार हूं। चाहे कोई भी हो वो इस समय मिलते ही नहीं। भाई हमारा उनका सौदा हुआ है, उसमें आग लग गयी है। अजी चाहे संसार में आग लग जाये परन्तु इस समय वो मिलते ही नहीं। बहुत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रोया-पीटा किन्तु अन्दर नहीं जाने दिया। लौट गया, दूसरे दिन पहुंचा दुकान पर जाकर रोने लगा। सेठ जी मैं मारा गया। भाई हुआ क्या? तो आपको पता ही नहीं क्या हुआ? नहीं, सुनाओ तो। आग लग गयी गोदाम में। क्या, हमारे गोदाम में लगी है। हाँ, हमारे गोदाम में लगी है, तभी तो हम रो रहे हैं। फिर हम छानबीन करेंगे कि आग कैसे लगी? मुनीम जी जरा पता करना कि आग कैसे लगी। उधर वह रोए, हम क्या करें सेठ जो, हमारो तो सारी सम्पत्ति लग गयो, अब तो मैं बॉम्बे में रह भी नहीं सकता और यदि देश को जायेंगे तो क्या कहेंगे? सेठ जी ने समझाया कि यह तो संसार है घाटे-नफे तो होते ही रहते हैं, घबराओ मत कोई और सौदा कर लेंगे। जब बहुत रोने लगा तो सेठ बोला कि बस इतने ही रुपयों के बल पर तू हमको टम-टम के नीचे कुचल कर मारना चाहता था, इतना ही दम था तुम्हारे में। मुनीम जो इनका आठ लाख रुपया दे दो, जाओ यहाँ से, बम्बई में मत रहना, नहीं तो फिर कहीं फँस जाओगे। तो बेचारा भागा वहाँ से।

कहने का तात्पर्य कि मनुष्य को किसी बात का अभिमान नहीं करना चाहिये, क्योंकि एक से एक बढ़कर हैं। शंकराचार्य ने लिखा है—

मा कुरु धन जन यौवन गर्वम्
हरीत निमेषात् कालः सर्वम्।
मायामयमिदमखिलं हित्वा,
ब्रह्म पदं त्वं प्रविश विदित्वा।

इसमें कहा कि तुम धन, परिवार, जवानी का गर्व मत करो, क्योंकि काल भगवान् इनको क्षण में ले जाता है, क्योंकि माया के पदार्थ कब तक रहने वाले हैं। हाँ, असली चीज परमात्मा ही है, उसी का भजन करो, उसी को प्राप्त करो, इसके फेरे में क्यों पड़े हो? यह तो अज्ञान की एक भ्रान्ति है, भ्रान्ति में फँसकर वह रोता है। ज्ञानी यह जानता है कि जो आया है वह जायेगा। इसलिये वह प्रति परिस्थिति में भी खुश रहता है।

ॐ पूर्णमदः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्राणों की उपासना

और इस आधार पर कि जो चीज भागने वाली होती है, उसे आगे से रोक लें, तो वह वापस लौट जाती है, नहीं रोको तो आगे जाती है। गेंद को रुकावट होने पर पीछे लौटती है। पवन, प्रकाश, जल सभी का यही हाल है। यदि रुकावट नहीं है तो आगे जाएगा, रुकावट हो तो लौट जाएगा ? सूरज का प्रकाश पृथ्वी पर आता है, पृथ्वी से टकराकर वापिस होता है तब प्रकाश मिलता है।

मन का भी ऐसा ही स्वभाव है। मन इन्द्रियों के द्वारा बाहरी पदार्थों पर जाता है, यदि हम इसे रोक देते हैं तो पुनः भीतर आता है, अन्तर्मुखीन हो जाता है। मन को लौटाने के (रोकने) के साधन हैं, क्योंकि सुख-दुःख मन ही खड़ा करता है। जब मन किसी पदार्थ में जाता है तो उसमें अच्छे-बुरे की कल्पना करके सुखी-दुःखी होता है। मन एक ऐसी वस्तु है, जो अच्छे में भी बुराई की कल्पना कर लेता है। इसका एक मित्र आ रहा है सहायता करने, परन्तु दूर से इसने शत्रुओं की कल्पना करके भय की सृष्टि कर ली।

सुग्रीव ऋषिमुख पर्वत पर बालि के भय से रहता था। बालि को शाप था कि वहाँ जाएगा तो मर जायेगा। इसीलिए सुग्रीव वहाँ रहता था। राम जी जंगल में जा रहे थे, सुग्रीव ने उन्हें देख लिया, उसने कल्पना कर ली कि बालि ने हमें मारने वास्ते दो वीरों को भेजा है। उसने हनुमान जी से कहा कि तुम जाकर पता करो कि यह दोनों कौन हैं—

पठवा बालि होई मन मैला,
भागौं तुरत तजौं यह सैला।

मेरे को ऐसा मालूम होता है कि बालि ने इन्हें भेजा है। ऊपर से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो ये सन्त का वेश बनाये हैं पर हैं ये वालि के दूत। इसीलिये 'भाजौ तुरत तजौ यह शैला'– यहाँ से भाग जाना चाहिए।

देखो राम जी उसके शत्रु नहीं हैं बल्कि उसकी सहायता कर सकते हैं। किन्तु उसने कल्पना कर ली कि बालि ने इन दो आदमियों को धनुष बाण लेकर भेज दिया है। तो मन के द्वारा कल्पना कर, घर सम्पत्ति छोड़कर भागने को तैयार हो गया। हनुमान जी ने कहा कि घबराओ नहीं इनकी परीक्षा ले लेते हैं। जब यह सलाह उसने दी तो सुग्रीव को पसन्द आया। अगर सचमुच बालि ने भेजा हो और इनका कोई दुर्भाव हो तो संकेत कर देना। पशुओं के संकेत होते हैं। हमने बन्दरों को देखा है। पेड़ के ऊपर बैठे हैं। कोई आदमी आया। नीचे वाले बन्दर को कुछ खाने को दिया। वह तुरन्त ऐसा शब्द निकालता है कि अगल बगल के सब बन्दर आ जाते हैं। जब कोई मारने आता है तो संकेत करते ही सब भाग जाते हैं। वे आपसी संकेतों को समझते हैं। सुग्रीव ने कहा कि तुम जाओ और पता करो। इनका मन मैला हो, यदि बालि ने भेजा हो तो इशारा कर देना जिनको ये तो समझें नहीं और हम समझ जाएँ। फिर भाग जायेंगे। हनुमान जी भेष बदलकर ब्रह्मचारी भेष में गए। कहने का अर्थ है कि वस्तु हितकारी है और मन कल्पना कर लेता है कि वह अहितकारी है। कोई आ रहा है मित्रभाव से और मन सोच लेता है कि वह शत्रु है। बस मन के इरादों पर यह अपनी रक्षा करेगा, भागेगा, छिपेगा। संसार का सारा दुःख क्लेश मन ने खड़ा किया है। यदि अपने मन को सम्भाल लें, वश में कर लें तो सब दुःख दूर हो जाते हैं—

प्राणायामं प्रत्याहारं, नित्यानित्य विवेक विचारम्।
जाप्यसमेत समाधि विधानं, कुर्ववधानं महदव धानम्॥
मोहमुद्गर-१०

प्रत्याहार के द्वारा मन को अपनी स्थिति में लौटाया जा सकता है। प्राण एक ऐसा स्वाभाविक तत्व है जो शरीर में आता जाता रहता है। प्राण एक अथक देवता है, यह कभी थकता ही नहीं। आँखें, नाक,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कान, हाथ, पैर सभी थक जाते हैं पर प्राण नहीं थकता। जब से शरीर आया है तभी से यह चल रहा है। यह कभी विश्राम नहीं लेता, न थकता है। और जब थकता तो बस राम राम। इसीलिए इसका नाम प्राण रखा अर्थात् जो अपने अन्दर सबको लीन कर लेता है। जितनी इन्द्रियाँ हैं सब प्राणों में लीन हो जाती हैं और प्राण से ही निकलती हैं। उपनिषद् में प्राण की उपासना करने को कहा गया है—

प्राणो ब्रह्मेत्युपासीत्

प्राण की उपासना करो। प्राण को ब्रह्मरूप से चिन्तन करो। यानी अपने ध्यान को प्राण पर केन्द्रित करो। प्राण जब अन्दर आता है तो फिर अन्दर से बाहर आता है। जब हम पूरा श्वाँस लेते हैं तो एक सेकेण्ड अन्दर ठहरता है फिर बाहर आता है। बाहर पूरा निकल गया तो फिर एक सेकेण्ड रुकता है फिर भीतर प्रवेश करता है। हमें इस प्राण का सहारा लेकर परमात्मा तक पहुंचना है। जैसे नाम एक सहारा है उसी तरह प्राण भी एक सहारा है। जैसे कार, साइकिल, रेल का सहारा लेकर हम अपने लक्ष्य तक पहुंच जाते हैं उसी प्रकार ओंकार आदि नामों का सहारा लेकर उस अनामी भगवान् तक पहुंच जाते हैं। अब प्राण का सहारा लेकर हमें ब्रह्म तक पहुंचना है। तो कैसे पहुंचें ? जैसे नाम का सहारा लेकर नामी तक पहुंचे थे, उसी प्रकार प्राण द्वारा ब्रह्म तक पहुंचना है। नाम जहाँ खत्म हो जाता है उसके आगे जो तत्व है, वही परमात्मा है। इसी तरह प्राण, अपान जहाँ खत्म हो जाते हैं, उसका नाम ब्रह्म है। अब प्राण, अपान क्या है ? इसको थोड़ा समझें— प्राण नाम है उस वायु का, जो अन्दर जाता है। जो पवन अन्दर से बाहर आता है उसे अपान बोलते हैं। इसको चन्द्र सूर्य भी कहते हैं। जो पवन अन्दर जाता है, उसे चन्द्र स्वर कहते हैं। जो अन्दर से बाहर आता है उसे सूर्य स्वर कहते हैं। अन्दर से पवन आता है वह गरम होती है और बाहर से जो अन्दर जाती है वह वायु ठंडी ठंडी होती है। कभी सूर्य कभी चन्द्र ऐसे ही प्राण चलता है। इसे ह और ठ भी कहते हैं।

ह—सूर्य.

ठ—चन्द्र

हठयोग का अर्थ लोग समझते हैं कि जबरदस्ती करने का नाम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हठयोग है। पर जबरदस्ती करने से काम बिगड़ जाता है। हठयोग का असली अर्थ है सूर्य और चन्द्र स्वर का समान करना।

'ह' माने सूर्य—जो अन्दर का पवन बाहर आता है यह 'ह' है और बाहर का पवन जो अन्दर आता है यह 'ठ' कहलाता है। दोनों की समअवस्था का नाम 'हठ' है। अब इसका हमें खयाल करना है—तो चार टुकड़ इसके हो गये—

१. पवन का बाहर आना, २. पवन का अन्दर जाना, ३. पवन का बाहर ठहरना, ४. पवन का अन्दर ठहरना।

अब हमने मन का ख्याल करना है। विचार, ध्यान, ख्याल, वृत्ति—इसी को मन कहते हैं। अपनी वृत्ति, अपने ध्यान को जमाना ही हमारा काम है। इसे देखना है कि कब ठहरा। तो पहले बाहर जा रहा है तो ख्याल करो कि बाहर जा रहा हैं। जब ठहरा तो कितनी देर ठहरा। इसी प्रकार हम इस ख्याल में पड़ें कि कब यह अन्दर गया, कितनी देर ठहरा। इसी प्रकार इसके ऊपर ध्यान स्थिर करने से मन टिकने लगता है—

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्धया धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्॥
गी०-६/२५

तो यह अभ्यास शनैः-शनैः करना चाहिये, इसमें जल्दी नहीं करे। जैसे कोई गाड़ी साठ-सत्तर मील की स्पीड से आ रही है अगर उसमें अचानक ब्रेक लगा देंगे तो पटरी से उतर जायगी। अभी बंगाल में एक दुर्घटना हो गयी है। उधर से मेल गाड़ी भागी आ रही थी। मेल का समय था। लोग इस प्लेटफार्म से कूदकर उस प्लेटफार्म पर जा रहे थे। गाड़ी आने का ख्याल नहीं किया किसी ने। पचास आदमी थे लाइन पर। कुल्लियों ने हल्ला मचाया भागो-भागो, गाड़ी आ रही है। फिर भी बीस-तीस आदमी कट ही गये। ड्राइवर ने गाड़ी में ब्रेक लगायी तो वह पटरी से उतर गयी।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तेज चीज को रोकने का तरीका यह है कि पहले उसकी तेजी को मारना है। स्टेशन पर गाड़ी को रोकना होता है तो एक मील पहले से ही उसकी स्पीड कम करते हैं। तब हौले-हौले गाड़ी खड़ी होती है। न किसी को चोट लगती है, न कोई नुकसान होता है।

मन का भी यही हाल है। यह बहुत वेग से चल रहा है। इसको हम रोकना चाहते हैं तो शरीर में उथल-पुथल मचाता है। इसलिए उनका मत है कि पहले इनकी गति को रोक दो। श्वाँस जब रुकेगी तो मन का वेग, जो दौड़ना है वह रुकेगा। जब मन ठहरेगा तो शनैः-शनैः ध्यान होगा।

बुद्धि को धृति से पकड़ो। धृति एक बल है। बुद्धि के निर्णय को कार्य रूप में परिणत करना धृति का काम है। अच्छे बुरे का निर्णय करना बुद्धि का काम है। यह अच्छा है, यह बुरा है, यह लाभदायक है, यह हानिकारक है इसका निर्णय बुद्धि करती है। पर जिसमें लाभ होगा उधर प्रवृत्त होना, जिसमें हानि हो उसे छोड़ना धृति का काम है। यदि किसी की धृति कमजोर है तो बुद्धि का निर्णय होने पर भी जीवन में कोई परिवर्तन नहीं होता। जैसे आगे देखा कि सड़क टूटी है। तो बुद्धि ने निर्णय दिया तो हमें चाहिये कि उधर न जाएँ। परन्तु फिर भी हम उधर ही जा रहे हैं। तो इसका अर्थ हुआ कि बुद्धि ने ठीक निर्णय दिया किन्तु धृति कमजोर होने के कारण हम अपने जीवन को बदल नहीं पाये। हम समझते हैं कि अमुक चीज हमको नुकसान पहुंचाती है। जैसे कइयों को शुगर की बीमारी होती है, उनको डॉक्टर कहते हैं कि चीनी नहीं खाना। किन्तु चीनी खाये बिना वे रह नहीं सकते। बुद्धि ने निर्णय दिया, डॉक्टर ने मना किया। किन्तु हममें धृति का अभाव है अतः उस निर्णय पर अमल नहीं करते। कुछ लोग जुआ खेलते हैं। सम्पत्ति नष्ट हो गयी है, पर खेलना छोड़ता नहीं। शराब से शरीर खराब हो गया है फिर भी पीना नहीं छोड़ते हैं। इसका कारण धृति की कमजोरी या अभाव है। किसी अच्छी चीज का निर्णय हो गया फिर भी उसे नहीं अपनाते तो इसका कारण धृति की कमजोरी है। इसीलिए कहा—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धृति गृहीतया

जो बुद्धि के निर्णय को कार्यरूप में बदलती है वही धृति है। जैसे मीटिंग करके हम यह निर्णय ले लें कि यह काम करना है। प्रस्ताव पास हो गया कि काम करना है। किन्तु निर्णय लेना एक बात है और उसके अनुसार कार्य करना दूसरी बात है।

इसी प्रकार बुद्धि के निर्णय के अनुसार कार्य करना धृति का काम है। धृति हमारे जीवन का उपयोगी पदार्थ है। बुद्धि जो धृति के साथ है उसके द्वारा अपने मन को उपरमित करो। शनैः-शनैः होले हौले अपने साधन में लगाओ। बुद्धि के साथ धृति का संयोग अनिवार्य है। नहीं तो हम कहते रहते हैं कि जगत् मिथ्या है— फिर वही शोक, मोह, वही रोना, सुखी-दुःखी होना—तो मिथ्या समझने से क्या फायदा ?

शरीर में कोई रोग आ जाता है तो हम रोने लगते हैं। जब शरीर मिथ्या है तो तब फिर रोने की क्या बात है ? जब मर गये तो शरीर से अपने को अलग कहाँ माना ? किन्तु यह तब होता है जब बुद्धि और धृति सम हो।

उन्होंने निश्चय किया जगत् मिथ्या है। धन, दारा, सुत, लक्ष्मी सब मायिक हैं। साथ नहीं देंगे। पर जरा-सी लड़के की बीमारी आ पड़ी तो हम लगते हैं मरने पहले ही। लड़का तो बाद में मरेगा बाप पहले मरने लगता है। परन्तु धृति अगर साथ है और बुद्धि ठीक है तो उसने इसे मिथ्या समझा। ठीक है क्लेश अगर आ रहा है तो आए हमको इससे क्या ? यदि शरीर के दुःख के साथ हम व्याकुल हैं, तो हम अपने को शरीर समझ रहे हैं। शरीर से हम अपने को अलग मानें। इसीलिए— शनैः शनैः कहा।

तुम शनैः शनैः अभ्यास करो एक दिन की बात नहीं है क्योंकि अनादि काल से हमारा मन वासनाओं से जुड़ा हुआ है। अनादि काल से मन साँसारिक वृत्तियों से जुड़ा हुआ है। उसे धीरे धीरे हटाया जा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सकता है। जैसे कोई मेख किवाड़ से जुड़ा हुआ है। उसे बाहर निकालना है। पहले उसे हथौड़े से ठोक ठाक कर ढीला करते हैं। जब ढीला हो जाय तब उसे निकाल लेते हैं। और अगर ऐसे ही निकालने का प्रयत्न करें तो किवाड़ टूट सकता है। इसी तरह मन विषयों में चिपक गया है, उसमें प्रविष्ट हो गया है। उसे एकदम नहीं खींच सकते, उसे शनः शनैः खींच सकते हैं।

बुद्धि और धृति को प्रबल करो। पहले बुद्धि में कमजोरी है कि गलत निर्णय कर लेती है। दुःखदायी सुखदायी मान लेना, मित्र को शत्रु मान लेना, यह बुद्धि की कमजोरी है। तो पहले बुद्धि को ठीक करो। वह शत्रु को शत्रु और मित्र को मित्र समझे। लाभ को लाभ समझे और हानि को हानि। धृति को मजबूत करो कि बुद्धि द्वारा लिए गए निर्णय पर चल पड़े। इसीलिए शनैः शनैः काम होता है। शास्त्रों में इसके लिए उपाय बताए हैं।

श्वाँस के ऊपर ध्यान को टिकाओ। कुछ करना नहीं है। कुछ लोग मंत्र का भी जाप करते हैं परन्तु उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। नाम की साधना तो अलग है, दूसरी है। श्वाँस के साथ वृत्ति ऐसी जम जाए जैसे अन्य पदार्थों के साथ चिपकी है। उसको प्राण के साथ ऐसा जोड़ो कि अन्य चीजों का ध्यान भूल जाए। यह भी भूल जाए कि मैं कमरे के अन्दर बैठा हूं और ध्यान कर रहा हूं। तब तक लाभ नहीं होता जब तक हम वृत्तिमय नहीं हो जाएँ। जैसे नाम के जाप में हम जब नाममय हो जाते हैं तब लाभ होता है। उसी तरह जब वृत्ति प्राण-मय हो जाए तब लाभ होगा।

इसी तरह जब नाम में वृत्ति लीन हो गई तो शरीर का भी ध्यान नहीं रहता। तब भीतर में परमात्मा का चमत्कार होता है। आत्मा और परमात्मा एक ही बात है। आत्मा को जान लिया तो परमात्मा को जान लिया। आत्मा को नहीं जाना तो परमात्मा को नहीं जाना। एक ही चीज जब शरीर में आती है तब आत्मा कहते हैं। जब बाहर में रहती है तो परमात्मा कहते हैं। ठोक तरह से अभ्यास करो। आधा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

घंटा, पन्द्रह मिनट करो तो। जितना अभ्यास करोगे, उतना ही लाभ होगा। अभ्यास के साथ-साथ मन को भी चंचल होने से बचाना है। जिस काम से मन में चञ्चलता आवे उसे ही पाप कहा, बस। पाप की छोटी परिभाषा यही है।

अगर लाभ की दृष्टि से देखें तो कई बार झूठ से लाभ होता है और सत्य से हानि। एक आदमी था। वह कहने लगा कि हमारा आफिसर कहता था कि चार आना की तरकारी लेते आना। ले जाने पर वह पैसा नहीं देता। अब हमको कहना पड़ता है कि हमारा जेब खाली है। पैसे रहने पर भी झूठ बोलना पड़ता है। क्योंकि सत्य बोलो तो पैसे देने पड़ेंगे और वे पैसे कभी लौटेंगे नहीं। अब यदि हम सच बोलें कि हमारे पैसे हैं किन्तु देंगे नहीं, तो गड़बड़ी पैदा हो गई। इस प्रकार कभी झूठ बोलने से लाभ और सत्य बोलने से हानि पैदा हो जाती है।

पुण्य पाप की मोटी पहचान यही है कि जिस काम के करने से मन में चञ्चलता खड़ी हो जाए वह पाप है और जिस काम के करने से मन शान्त रहे वह पुण्य है। इसीलिए चोरी, झूठ, हिंसा सब पाप कहे गए हैं। झूठ बोलने, चोरी करने से मन चंचल हो जाता है और दान, पुण्य, धर्म, भगवत् भजन से मन शान्त हो जाता है। इसी से कहा कि मन के संकल्पों को कम करते जाएँ और ऐसा कोई व्यवहार नहीं करें जिससे मन को चिन्ता हो क्योंकि चिन्ता से चंचलता बढ़ती है। साधन निष्फल हो जाते हैं। यों मन को एकाग्र करने से भी वही फल होता है जो नाम साधन से होता है।

उपनिषदों में कथाएं है कि अमुक ऋषि ने अमर विद्या को उपासना की, प्राणों की उपासना की। श्वांस पर वृत्ति को टिकाकर भी हम भगवान् की उपासना कर सकते हैं।

ॐ पूर्णमदः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जगत् का अधिष्ठान कौन है ?

ज्ञान और अज्ञान का एक स्वभाव है कि उसका एक आश्रय होता है। किसका ज्ञान और किसको ज्ञान। जिसका ज्ञान होता है वह ज्ञान का विषय कहलाता है और जिसको ज्ञान होता है वह ज्ञान का आश्रय कहलाता है। जब यह निश्चय हो गया कि—

अज्ञान प्रभवं सर्वम्— कि सारे प्रपञ्च का कारण अज्ञान है। तो अज्ञान कहते ही एक बात मन में आ गई कि अज्ञान किसका, किसको। ज्ञान और अज्ञान का समान आश्रय हुआ करता है। जिसका अज्ञान जिसको हो तो उसी के ज्ञान से उसका अज्ञान दूर हो सकता है। जैसे मान लिया कि कोई देवदत्त आदमी है उसको सिंह का ज्ञान नहीं है कि वह कैसा है ? गाँव में रहने वाला, कभी सिनेमा सर्कस भी नहीं देखा— तो सिंह कैसा होता है उसको यह ज्ञान नहीं है। तो सिंह का अज्ञान उसको है तो वह जो अज्ञान है उसका विषय कौन हुआ— तो सिंह। उस अज्ञान का आश्रय हुआ— देवदत्त। तो देवदत्त को सिंह का अज्ञान है। उसकी निवृत्ति कब होगी कि जब देवदत्त को सिंह का ज्ञान होगा। तो ज्ञान और अज्ञान समान आश्रय में ही उनका परस्पर विरोध होता है और नियम यह है कि उनका कोई विषय भी होना चाहिए। कोई आश्रय भी होना चाहिए। निराश्रय और निर्विषय ज्ञान अज्ञान होता ही नहीं। जैसे ज्ञान का एक विषय हुआ और एक आश्रय हुआ— तो देवदत्त को सिंह का ज्ञान हुआ। इसको दूसरी भाषा में कहेंगे कि सिंह विषयक ज्ञान हुआ। किसको हुआ—देवदत्त को। तो देवदत्त आश्रित ज्ञान का विषय सिंह है। या सिंह विषयक ज्ञान का आश्रय देवदत्त है। मोटी भाषा में—देवदत्त को सिंह का ज्ञान हुआ। उस ज्ञान से कौनसे अज्ञान की निवृत्ति होगी। तो देवदत्त को जो सिंह का अज्ञान था उसकी निवृत्ति होगी। तो जिस विषय का जिसको अज्ञान हो उस विषय का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सी को ज्ञान हो तो उसकी निवृत्ति होती है। तो ज्ञान का अज्ञान का ही नियम है। ज्ञान ने जब यह निश्चय कर लिया कि यह जगत् अज्ञान से अत्पन्न हुआ—यह कैसे सिद्ध हुआ तो ज्ञान से। जब ज्ञान से कहा गया तो अज्ञान मूलक भी होना चाहिए! क्योंकि ज्ञान तो अज्ञान का निवृतक है और किसी का नहीं। इसलिए भगवान् ने कहा—

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्॥

गीता-५-१६

आत्मज्ञान से जिनका आत्मा का अज्ञान निवृत्त हो गया—उनको आत्मा के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान होता है। जब यह कहा कि संसार का मूल अज्ञान है। क्यों अज्ञान है क्योंकि ज्ञान से समाप्त होता है। तो स्वयं शंका उठ गई कि यह अज्ञान किसको और किसमें है। अज्ञान का आश्रय कौन? अज्ञान का विषय कौन? अज्ञान का जो आश्रय और विषय है उसका नाम ब्रह्म है। वही जगत् का अधिष्ठान अथवा विवर्ति उपादान है। जिसके अज्ञान से कोई भ्रांति प्रतीति होती है वही अज्ञान का अधिष्ठान कहलाता है। जैसे रस्सी के अज्ञान से सर्प प्रतीत हुआ—तो सर्प का अधिष्ठान रस्सी हुआ। यह तो ठीक है परन्तु देखने में आया कि रस्सी को अज्ञान कहना, रस्सी में अज्ञान कहना, यह तो बनता नहीं। क्योंकि अज्ञान तो चेतन को होता है। जड़ को न तो ज्ञान होता है न अज्ञान होता है। जैसे—दीवार है इसको ज्ञान होना है न अज्ञान होना है। इसलिए वेदान्त में निर्णय किया कि रस्सी के अज्ञान से सर्प का ज्ञान होना मोटो भाषा है। असल में यह कहना कि रस्सी के अंदर जो चेतन है उसको अज्ञान है। उसके अज्ञान से सर्प होता है तो चेतन वहां कहां से आया? तो चेतन उसमें ऐसी कोई चीज नहीं है जहां चेतन नहीं है। क्योंकि अस्ति, भ्रांति और प्रियता, यह चेतन का धर्म है। चेतन दो प्रकार का होता है—एक सामान्य, दूसरा विशेष। विशेष चेतन जहां होता है वहाँ चेतना भान नहीं है जहाँ सामान्य चेतन होता है वहां क्रिया नहीं होती है। जीवित शरीर में दो चेतन हैं। एक तो वह है जिसको हम ब्रह्म चेतन अथवा व्यापक चेतन कहते हैं। पर जहाँ सूक्ष्म शरीर है वहाँ उस चेतन का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रतिबिंब ही रहता है। जहाँ चेतन और चेतन के प्रतिबिंब दोनों हों वहाँ चेतनता स्पष्ट प्रतीत होती है। वहाँ क्रिया होती है। परन्तु वेदान्त कहना है कि चेतन सब जगह है। पर चेतनता का प्रतीति वहीं होती जहाँ अन्तःकरण होता है जहाँ लिंग शरीर होता है। इसलिए मुर्दे शरीर में भी चेतन विद्यमान है—वहाँ सामान्य चेतन है। अन्तःकरण वाला जो विशेष चेतन है वह चला जाता है। इसलिए उसको निर्जीव कहते हैं। तो जीव क्या है? सत्रह तत्वों का जो लिंग शरीर है— उसी का नाम जीव है। जीव के निकल जाने पर सामान्य चेतन रहता है। क्योंकि उसमें अस्ति भ्रांति प्रियता होती है। शरीर है—अस्ति। शरीर प्रतीत हो रहा है— भ्रांति और जो उसको रखने वाले हैं उनको प्रिय भी लगता है तो अस्ति भ्रांति प्रियता उसमें नहीं निकला। सिर्फ जीव चेतन निकल जाता है। तो अब यह कहना है कि रस्सी में भी वह चेतन है तो उस चेतन के आश्रित जो अज्ञान है उसका परिणाम सर्प और चाँदी है। जो अज्ञान सारे जगत् का कारण है उसका भी तो कोई आश्रय होना चाहिए। जिस अज्ञान से जगत् उत्पन्न हुआ उसका नाम रखा मूल अज्ञान। रस्सी में जो चेतन का अज्ञान है इसको तुला अज्ञान बोलते हैं। तुला अज्ञान से भ्रम होता है। जिस अज्ञान से जगत् उत्पन्न हुआ उसका आश्रय ब्रह्म है। इसलिए संक्षप में शारीरिककार ने लिखा है—

आश्रयत्व विषयत्व भागिनो, निर्विभाग चितिरेव केवला।
पूर्वसिद्ध तमसो हि पश्चिमो, नाश्रयो भवति नापि गोचरः॥

कि अज्ञान का विषय और ज्ञान का विषय कौन होगा। अच्छा ज्ञान में ही घटा लो। ज्ञान का विषय और ज्ञान का आश्रय कौन होगा जो ज्ञान से पहले विद्यमान होगा। जो ज्ञान होने के बाद हुआ वह ज्ञान का आश्रय नहीं बन सकता। ज्ञान को होने के लिए उसका विषय पहले होना चाहिए। उसका आश्रय भी पहले होना चाहिए। अज्ञान में भी यही बात है।

जगत् का जो मूल कारण है उसके बारे में ऐसा कह सकते हैं आश्रय अलग हो और विषय अलग हो। क्योंकि वह दो चीज है नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हां दो वस्तुएं हैं इसलिए आश्रय और विषय अलग हैं। पर मूल कारण वही विषय है वही आश्रय है। जो शुद्ध अखण्ड चेतन है वही अज्ञान का विषय भी है। वही अज्ञान का आश्रय भी है। इसको यों कहें कि अपना अज्ञान अपने को है। जैसे आदमी कभी अपने को भी भूल जाता है। दूसरे अगर हम भूलेंगे तो कहेंगे कि हमको उसका अज्ञान है। पर अपने आप को भूलेंगे तो कहेंगे हमको अपने आप का ही अज्ञान है। तो अपने आप का ज्ञान होना इसको बोलते हैं— स्वाश्रय स्वयं। जब अपना स्वरूप अज्ञान हो गया तो फिर उसके कारण दूसरी कल्पना हो खड़ी हो गयी। उस अज्ञान के आश्रय और विषय को ही विवर्त उपादान बोलते हैं। इसमें क्या होता है कि वस्तु अपने मूल स्वरूप में ज्यों की त्यों रहती है और उससे भिन्न प्रतीत होने लगती है। जैसे सपने में कोई देख रहा है कि मैं बाजार में सौदा खरीद रहा हूं। तो वह अपने आप को ही भूला हुआ है। क्योंकि स्वयं तो कमरे में चारपाई पर सो रहा है। इस अवस्था को भूल गया है और अब दूसरी कल्पना खड़ी कर ली कि मैं सौदा खरीद रहा हूं। तो दुकान में सौदा खरीदना एक नई घटना हो गई है। जो मूल घटना थी उसको विस्मृत कर दिया। अज्ञान में दो शक्ति हैं— एक आवरण शक्ति है, एक विक्षेप शक्ति है। आवरण शक्ति असली स्थिति को छिपा देती है। और विक्षेप शक्ति अविद्यमान स्थिति सामने खड़ा कर देती है। स्वप्न वर्तमान स्थिति पर पर्दा डाल देता है और नई स्थिति खड़ा कर देता है। इसी का नाम माया भी है। माया भी वास्तविक स्थिति को भुला कर अवास्तविक स्थिति उसके सामने खड़ी कर देती है। आवरण शक्ति और विक्षेप शक्ति वाला यह अज्ञान उस ब्रह्म चेतन में है तो होता क्या है कि स्वरूप पर आवरण हो जाता है। आत्मा का स्वरूप क्या है? आत्मा शुद्ध और अद्वैत है। आत्मा का असली स्वरूप निष्प्रपञ्च है। जैसे दीवार पर लकीर खींच दी। अब देखने वाला कहता है कि दीवार पर सिंह खड़ा है। दीवार पर सिंह खड़ा नहीं हो सकता। परन्तु देखने वाला कहता है कि सिंह खड़ा है क्योंकि उसको ऐसा अनुमान हो रहा है। तो सिंह रहित स्थान में सिंह की कल्पना खड़ी हो गई। इसी तरह ठीक आत्मा का ब्रह्म का स्वरूप निष्प्रपञ्च, अद्वैत, केवल शुद्ध है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रपञ्चोपसमं शान्तं शिवं अद्वैतम् ।

तो अज्ञान ने उस निष्प्रपञ्च पर तो पर्दा डाल दिया और उसमें जो द्वैत नहीं था, उसको खड़ा कर दिया। यहीं अज्ञान की महिमा है। इसलिए कहते हैं कि जगत् की कोई वस्तु उस मूल ज्ञान का आश्रय नहीं बन सकती। उसका आश्रय तो वही बन सकता है जो कि जगत् बनने के पहलें विद्यमान था। उसी का नाम ब्रह्म हैं। तुलसीदास जी ने राम का लक्षण किया—

झूठेउ सत्य जाहि बिनु जानें,
जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचानें ।।
जेहि जानें जग जाइ हेराई,
जागें जथा सपन भ्रम जाई ।।
बंदऊं बालरूप सोइ रामू,
सब विधि सुलभ जपत जिसु नामू ।।

जिसके जाने बिना यह मूल जगत् हमको सत्य प्रतीत हो रहा है उसी का नाम राम है। जैसे अज्ञान के कारण रस्सी हो साँप नजर आ रही है। जिसके ज्ञान से मिथ्या जगत् का लोप हो जाता है। जैसे जग जाने पर स्वप्न का भ्रम नष्ट हो जाता है— वही राम जी हैं। बालरूप का अर्थ निर्दोष रूप है अर्थात् मूल अज्ञान का जो आश्रय और विषय है वही राम हैं। उसी को ब्रह्म बोलते हैं, आत्मा कहते हैं। वेदान्त ने उसको आत्मा करके इसलिए कहा कि भगवान् कहने से दो परिश्रम करने पड़ते हैं। पहले भगवान् को सिद्ध करना पड़ता है फिर उसका स्वरूप करना पड़ता है। पुराण अंदर से बाहर जाता है। उपनिषद् बाहर से अंदर जाता है— यही अंतर है। परिणाम में कोई अंतर नहीं है।

जगत् का कोई उपादान होना चाहिए किन्तु जगत् हो तब न उपादान होना चाहिए। जब लड़का है तब न बाप होना चाहिए। जब लड़का ही नहीं तब बाप का प्रश्न नहीं उठता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तो यह अर्थ निकला कि ब्रह्म अपने अज्ञान से जगत् रूप प्रतीत हो रहा है। किसको किसका अज्ञान हुआ ? तो ब्रह्म को ही ब्रह्म का अज्ञान हुआ। आत्मा को ही आत्मा का अज्ञान है। अर्थात् हम खुद अपने आपको नहीं जानते हैं। अब कोई शंका कर सकता है कि तब तो ब्रह्म अज्ञानी हो गया ? तो ब्रह्म सब कुछ है। क्योंकि जगत् का सारा नाम-रूप ब्रह्म ही तो है। इसीलिए रुद्राध्यायी में परमात्मा के कितने नाम रखे हैं—

स्तेनानाम् पतये नमः— चोरों के पति आप हैं। मतलब आप महाचोर हैं। गीता में आया है—

द्यूतं छलयतामस्मि—

गी०-१०-३६

तो अज्ञानी कहो, चोर कहो, सब वही है। बल्कि जड़ पदार्थ भी वही है। क्योंकि उसके सिवाय और कुछ तो है नहीं। इसलिए ब्रह्म ही जगत् का अधिष्ठान है। इसका अर्थ है कि ब्रह्म में ही ब्रह्म के अज्ञान से जगत् की उत्पत्ति हुई।

ज्यों सपना को देखना ऐसो जग को जान।
यामे कछु सांचो नहिं नानक बिनु भगवान॥
सपने होई भिखारी नृप, रंक नाकपति होई।
जागे लाभ न हानि कछु तिमि प्रपंच जिय जोई॥

और नेहनानाति किंचन।

इससे इस ब्रह्म में कुछ हानि नहीं कि लोग इस प्रपंच को सही समझें। परन्तु प्रपंच सच क्यों दिख रहा है। क्योंकि अनादिकाल से हमने मान लिया है कि जो दिखायी देता है वही सत्य है।

सपना में जो दिखाई पड़ता है वह सत्य नहीं होता। जैसे रस्सी का सर्प सत्य नहीं होता। उसी प्रकार स्वप्न का पदार्थ भी सत्य नहीं होता। इनका जो अधिष्ठान है जिसके आश्रय में चल रहे हैं वही सत्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। ना रस्सी का साँप ठीक ना स्वप्न का पदार्थ। ये तो तरंगें हैं। जैसे जल में तरंगें हैं। जल स्थायी है तरंग नहीं है। तरंग जल को छोड़कर बाहर नहीं जा सकती। जगत् भी तरंगवत् आत्मा में उत्पन्न होता है। नाम रूप प्रपंच अलग कुछ नहीं। आत्मा की सुन्दरता ही इसकी सुन्दरता है। इसकी अपनी कुछ सत्ता नहीं। और जिसकी अपनी कोई सत्ता नहीं उसको मानना ठीक नहीं है। यों यह मिथ्या है। आचार्यों ने ५ अर्थ किये हैं मिथ्या के।

मिथ्या का लौकिक अर्थ खोटा है। जैसे रुपया खोटा है नोट खोटा है। खोटा का अर्थ यह नहीं कि है ही नहीं। है तो अवश्य किन्तु उससे हमारा प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

यानि यह जगत् खोटा है आपका प्रयोजन इससे सिद्ध नहीं हो सकता। प्रयोजन है— दुःखों की निवृत्ति जो इस संसार से हो नहीं सकती। यह तो दुःख रूप है। और नित्य सुख की प्राप्ति तो जगत् के पदार्थों से नहीं मिलती।

इसको मिथ्या जान लें तो परमेश्वर के दर्शन में कोई विलंब नहीं। किन्तु इसको हम मिथ्या जानकर हम इसी को बनाने बिगाड़ने में लगे हुये हैं। और जो असली वस्तु है उसको भूल बैठे हैं। इसी के चक्कर में पड़े हैं। हमारी सारी आयु इसी में चली जाती है।

अगर जान लें कि खोटा है तो आयु इसमें बर्बाद न करें और असली का अनुसंधान करें।

किसी के जेब में १० हजार के खोटे नोट हैं। जेबकतरा उसे काटकर ले गया। बड़ा प्रसन्न है कि आज मंगलशकुन हुआ। शकुन शास्त्र में लिखा है कि अगर कोई सौभाग्यवती स्त्री यात्रा के समय घड़ा भरकर सामने से आती हुई नजर आवे तो यात्रा अच्छी होती है। इसी प्रकार अपशकुन भी होते हैं। अगर यात्रा पर जाते समय सामने कुत्ता कान फड़फड़ावे तो लौट जाना चाहिए। कुत्ते ने मना कर दिया न? दैवी बात है। कुत्ता कोई दुश्मन नहीं है। वह निषेध करता है। उसने सोचा कि आज अच्छा शकुन हुआ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हमने सुना है कि जंमू का नाम लेने से रोटी नहीं मिलती। एक दिन हम जंमू में ठहरे। हमने जान बूझकर सबेरे जंमू का नाम लिया। लोगों ने कहा कि आज तो रोटी नहीं मिलनी है। हमने कहा कि चलो आज परीक्षा ही होगी। उस दिन किसी के घर रोटी खाने जाना था ११ बज गये वह नहीं आया। १२ बजे १ बजे नहीं आया। सोचा कि पता करना चाहिए क्यों नहीं आया। पता किया तो उस दिन उसके घर कोई मर गया। हमने पूछा मर गया तो खबर करनी चाहिए। वह बोला कि खबर देने आने ही वाला था। हमने पुनः जिसके यहाँ ठहरे थे उनसे कहा कि तुम बनाओ। बनाने में तीन बज गये। बनकर तैयार हुआ तो घी लेने बाहर चली गई इतने में कुत्ता घुस गया। मतलब हमको उपवास करना ही पड़ा। हमने कहा कि जम्मू महिमा ऐसी है।

किसी की शक्ल ऐसी है कि दिन अच्छा नहीं होता। कुछ मंगल-मयी मूर्ति हैं कि देखकर दिन ठीक हो जाते।

जेबकतरा एक हजार रुपये का कपड़ा ले लिया। दुकानदार को शंका हुई। उसने कहा कि पहले रुपये दिखाओ, देखा तो सारे नोट खोटे। उसने कहाँ कि पुलिस को खबर देते हैं। क्योंकि सभी नोट खोटे हैं।

किसी का दस हजार गया उसे कोई दुःख नहीं। जब निश्चय हो जाय कि यह सब खोटा है, तो कोई दुःख कोई सुख नहीं।

पहला अर्थ है—

१- सदसद्विलक्षणत्वं मिथ्यात्वम् या अनिर्वचनीयत्वम्य

अनिर्वचनीय यानी जिसको हम एक रूप में कह नहीं सकते हैं। जिसे न सत् कह सकते हैं न असत्य कह सकते हैं। न सत् असत् कह सकते हैं। ना जिसे भिन्न कह सकते हैं ना अभिन्न, ना भिन्नाभिन्न कह सकते हैं। ना जिसको सावयव ना निरवय, ना जिसको सावयव-निरवय कह सकते हैं। ये नौ (९) विकल्प हैं। नौ में से एक नाम भी नहीं कहा जा सकता है। वही अनिर्वचनीय है। यह जगत् भी वैसा है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

२- जो जहाँ दिखाई देता है वहाँ सचमुच होता नहीं। जैसे रस्सी में साँप दिखाई दे और खम्भे में चोर। किन्तु ठीक से देखा जाये तो वहाँ न सांप है ना चोर।

तो जो जहाँ नहीं होता वहीं प्रतीत होता है और जहाँ रहता है वहाँ नहीं प्रतीत होता वही मिथ्या है।

जैसे आत्मा जन्म भर का सुख दुःख, जरा-मृत्यु, क्षुधा-पीपासा ये सब प्रतीत हो रहे हैं किन्तु वहाँ हैं नहीं। इसलिए मिथ्या हैं।

और जो जहाँ नहीं है वहीं प्रतीत होता है। जैसे आत्मा हर्ष, मान सुख-दुःख ये नहीं हैं प्रतीत होते हैं।

३- जिसकी ज्ञान से निवृत्ति हो जाती है।

ज्ञाननिवृत्यर्त्यत्वं मिथ्यात्वम्

अर्थात् जिसकी जागने से समाप्ति हो जाये। जब मनुष्य जाग जाता है तो सपना प्रतीत हो जाता है।

जागने की पहचान क्या है ? लक्ष्मण जी ने इस पर प्रकाश डाला है—

मोह निशा सब सोवन हारा।
देखहि सपन अनेक प्रकारा॥
जानिये तबहि जीव जगजागा।
जब सब विषय विलास विरागा॥

अविद्या रुपी नींद में हम सब सोये हैं। जो जागरण हम कहते हैं वही स्वप्न है। माया के चलते यह जागरण ही स्वप्न है। जब सारे प्रपंच से वैराग्य हो जाये, प्रेम घट जाये, निस्सार हो जाये तो उसे जागरण समझें। स्वप्न के राज को राज नहीं मानते।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जब संसार में मिथ्यत्व की प्रतीति हो जाये और इसी प्रकार इस मृत के राज्य को स्वप्नवत् समझ जाये।

४- ज्ञान निवर्त्यत्वम्

सीपी की चाँदी
रस्सी का साँप

जैसे स्वप्न का प्रपंच ज्ञान होने से समाप्त हो जाता है जब वह सली स्थिति में आता है। नींद में आदमी भूल गया कि कमरे में सोया कि सपना में देख रहा है कि सिंह खा रहा है। असली स्थिति थी कि ह कमरे में सोया है। जागना यही है कि वह उसी स्थिति में आ ाये।

संसार से जगना भी अपनी असली स्थिति में आना है। माया ने सको असली स्थिति से भुलाया है कि यहं कूटस्थ, निर्द्वन्द्व, निष्प्रपंच ात्मा है आनन्दस्वरूप, स्वयंप्रकाश, चेतन ब्रह्मस्वरूप हूं। माया ने ीव पर पर्दा डाल दी। जीव की वास्तविक स्थिति ब्रह्मरूप थी। उस पर ाया ने पर्दा डाला। निवृत्ति तब होगी जब असली स्थिति में आवे।

असली स्थिति में आने पर वह माया को त्याग कर परमात्मा में ा जाता है। यह है ज्ञान निवर्त्यत्वम्।

५- सद्विविक्तत्वम्—यानी प्रमाणसिद्ध भिन्नकत्वम्

यानी यह संसार किसी प्रमाण से सिद्ध नहीं। प्रमाण किसको लते हैं—जो अबाधित, अनधिगत, अज्ञात अर्थ को कहे वे प्रमाण हैं। ह उपनिषद् है। भौतिक आँखों से इसकी प्रतीति होती है। इसे प्रमाण हीं मानते। प्रमाण सिद्ध है अद्वैत। यह पाँचवाँ लक्षण है। वह श्रुति के ुसार है—

नेहनानास्ति किंचन्

पाँचों में से कोई भी घटाओ वह आत्मा में घटता है। सभी लक्षण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसमें घटते हैं। प्रमाणसिद्ध तो बस अद्वैत है। भिन्न लक्षण भिन्न दृष्टान्त से वह स्वतः सिद्ध है।

जिसे हम सत्य और सुख रूप माने हैं उसे भूलना है। इसी ने असली से हटा लिया है। हम संसार में ही फँसे रहेंगे तो फिर परमात्मा को भूल जाएंगे। क्योंकि मन तो एक ही है न ? वह तो कहीं एक ही ओर लग सकता है, चाहे परमात्मा में चाहे जगत् में। तुलसीदास ने लिखा है कि जगत् और परमात्मा में जो संबंध है वह (३६) छत्तीस का है। यानी ३ और ६ का संबंध है। एक दक्षिण और एक उत्तर। अब बोलो दोनों तरफ आदमी कैसे चले ? अगर वह परमात्मा की ओर चले तो जगत् की तरफ पीठ होगी। अगर जगत् की ओर चले तो परमात्मा की तरफ पीठ होगी। अब प्रयास के द्वारा इस संसार से निकलकर परमात्मा की तरफ जाने का प्रयास करना चाहिये। परन्तु निकलना बड़ा कठिन है। क्योंकि वह दूसरी तरफ बहुत दूर चला गया है। धीरे-धीरे उसमें वैराग्य भरना है। जब पूर्ण वैराग्य हो जाएगा तो वह स्वयं संसार से हट जाएगा। इसीलिए सनत कुमार ने स्पष्ट कह दिया कि—

यो वै भूमा तद् अमृतम् ॥
—छान्दोग्य

जो अनात्मा है, परिच्छिन्न है, जो द्वैत है वह विनाशकारी है। जो अद्वैत है वह अविनाशी है। यानी हम असली को छोड़कर नकली में लगे हैं। देखो कोई सेठ था। एक दिन कोई महात्मा घूमने निकले। उधर से वह सेठ आ रहा था। उसने महात्मा को ॐ नमोनारायणाय किया, महात्मा ने उसके चरणों में लेटकर प्रणाम किया। अब वह बड़ा संकोच में पड़ गया। तुमने यह क्या किया ? कहा कि तुमने हमको क्यों नमस्कार किया। महात्मा ने कहा कि पहले तुम बतलाओ कि तुमने हमको क्यों ॐ नमोनारायणाय किया ? सेठ बोला कि तुम तो घर-बार छोड़कर संन्यासी बन गये—इसलिए हमने प्रणाम किया। महात्मा बोले कि यही बात है न, तब तो तुमने भी कम नहीं छोड़ा, नाम छोड़ा तुमने भजन छोड़ा, सत्संग छोड़ा। हमने तो नकली छोड़ा तुमने तो असली छोड़ा है। अब तुम्हीं बताओ कि कौन बड़ा हुआ। जिस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

असली छोड़ा वह बड़ा हुआ या जिसने नकली छोड़ा वह बड़ा हुआ ? हमने तो असली छोड़ा है।

धन हमने छोड़ा, वह तो छोड़ना ही था। हमने खोटा छोड़ा तुमने असली छोड़ा। असली त्यागी तो तू है, इसीलिए हमने तुमको दण्डवत् किया। तो बेचारा शर्मिन्दा हुआ और उस दिन से भजन सत्संग में लग गया।

तो मतलब कहने का यह हुआ कि लोग नकली के भ्रम में पड़कर असली को छोड़ दिये हैं। ऋषिलोग कृपाकर बतलाते हैं कि देखो उसमें कोई सार नहीं है।

चार तरह के पदार्थ होते हैं—

१. ऊपर से अच्छे अन्दर से खराब।
२. अन्दर से अच्छा ऊपर से खराब।
३. अन्दर से भी अच्छा बाहर से भी अच्छा।
४. अन्दर से भी खराब बाहर से भी खराब।

जो अन्दर से खराब है उसे ग्रहण नहीं करना है। जो अन्दर-बाहर दोनों ओर से खराब है—जैसे—धतूरा। उसे तो पशु भी नहीं खाता। जो अच्छा है उसे तो आदमी स्वयं ग्रहण करेगा और जो बुरा है, उसे आदमी स्वयं त्याग देगा। उसमें तो कुछ कहना ही नहीं।

पर झगड़ा वहाँ है जो ऊपर से कुछ है भीतर से कुछ। तो बाहर से तो बहुत अच्छा है पर अंदर से बहुत बुरा। बाहरी शक्ल देखकर आदमी फँस जाता है। यह संसार ऊपर से अच्छा है, भीतर से बहुत बुरा। इसीलिए आदमी इसमें फँस जाता है।

किंतु परमात्मा ऊपर से तो बुरा है किंतु भीतर से बहुत अच्छा है। अतः हम उसके ऊपरी रूप को देखकर ही त्याग देते हैं। ऋषि लोग जानते थे कि यही हमारे काम का है, इसे ग्रहण करो।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संसार फँसाने वाला है इसमें फँसो नहीं। किंतु परमात्मा बाहर से बुरा है भीतर से अच्छा है। इसलिए उसे त्यागो नहीं।

किन्तु परमात्मा ने बनाने में विचित्रता कर दी। जो त्यागने योग्य है उसे तो बाहर से सुन्दर बना दिया और स्वयं ग्रहण योग्य है तो बाहर से बुरा बना लिया। अपना जो सुखरूप था उसे दुःखरूप बना दिया, मनुष्य धोखा में पड़ गया।

भगवान् को दया आयी तो उन्होंने घोषणा की—

आद्यन्तवतः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः।
गी०-५-२२

यह ऐसी बात है जैसे घोड़े को लीद है। जो लड्डू की तरह होती है। एक अप्रैल को एक आदमी ने उसे एकत्र करके उस पर सुन्दर लाल कागज लपेट दी। अब एक आदमी लेने आया। उसने लड्डू का भाव पूछा। दुकानदार बोला बहुत सस्ता है। एक आने थाल है। अगर कोई दो चार थाल ले तो दो पैसे थाल ही दूंगा और हमारा आदमी खुद उसके घर पहुंचा देगा। उसे ले भी नहीं जाना पड़ेगा। उसने कहा कि यह तो बड़ा अच्छा काम है। अपने घर मित्रों को टी-पार्टी दी। सबको चार-२ लड्डू दिया। अब एक आदमी ने जब खाया तो बदबू आयी। उसने सोचा कि बासी है। दूसरा खाया उसमें भी वही बदबू। फिर तीसरे को तोड़ा, चौथे को तोड़ा। सबमें वही बदबू। अब उसने पास वाले से पूछा—"तुम्हारे लड्डू कैसे हैं जी?" हमारे तो परसों के बने मालूम होते हैं। उसने कहा कि बदबू तो हमारे में भी आती है। सबमें यही हाल है। लोगों ने पूछा कि कहाँ से लाए? तो बोला कि हलवाई के घर से। लोग बोले कि ये भी कोई लड्डू है। वह (दौड़ा हलवाई के घर) पूछा —"तुमने क्या दे दिया?" हलवाई बोला कि—तुमको मालूम नहीं, आज पहली अप्रैल है।

कहने का अर्थ यह है कि ऊपर से चाहे सुनहरी कागज में लिपटे हुए ये सुन्दर लड्डू लगते हैं परन्तु किसी काम के नहीं हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऋषियों ने संसार को बाहर-भीतर से देखा और घोषणा की कि तुम्हारे काम के नहीं हैं। अतः इस संसार से ज्यादा प्रेम मत करो। प्रेम करोगे तो फँस जाओगे। इससे तो उतना ही नाता रखे जितना शरीरनिर्वाह के लिए आवश्यक है। प्रेम करोगे तो परमात्मा से वंचित हो जाओगे। उनकी बातों पर जिसे विश्वास हो गया उसका तो काम बन गया। जिसको विश्वास नहीं हुआ वे कहते हैं कि उनको अपने को तो खाने को मिला नहीं, हमें भी मना करते हैं। पर हम क्यों भूखे मरें। इन्होंने तो घर छोड़ दिया हम क्यों छोड़ें ? अपने गये सो गुजरे, हमको भी नहीं घर में रहने देते और खाते हैं तो फँसते हैं।

संसार के पदार्थों का नाम रखा— 'आपात रमणीय'। यानी देखने में सुन्दर, किसी काम के नहीं।

संसार के पदार्थों का पता लग जाता है परन्तु तब लगता है जब वह कुछ कर नहीं सकता है—

दुविधा में दोनों गए,
माया मिली न राम ॥

तो माया के चक्कर में पड़कर हमने राम को खोया। माया ने देखा कि इसने राम को छोड़ा तो अंत में वह भी छोड़ देती है।

इसीलिए इसे अभी छोड़े। जब तक शक्ति है तब तक प्रयास कर लो। यानि अभी से वास्तविकता को पहचानो। जब शक्ति समाप्त होने पर पहचान ही लोगे तो क्या लाभ—

का बरखा जब कृषि सुखाने।

जब कृषि सूख ही गई तो वर्षा से क्या लाभ ? और इतनी सूखी कि पानी देने पर भी हरा नहीं।

बिना इसको मिथ्या जाने अंतःकरण इससे निकल नहीं सकता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

अभ्यास और वैराग्य से ही मिथ्यत्व सिद्ध होते हैं। पतञ्ज आदि ने इसे अनित्य कहा है किन्तु अनित्य और मिथ्यत्व में अंतर अनित्यचिंतन से भी वैराग्य होगा। मिथ्या में तो पदार्थ रहता ही गुण दृष्टि में अनित्य में पुनः राग हो जाता है।

वस्तु में दोष तो है ही, उसमें दोष दृष्टि होनी चाहिए। जब दोष दृष्टि नहीं होगी तब तक काम नहीं चलेगा। जैसे रास्ते में पड़ा है तब तक हमारी दृष्टि उस पर नहीं पड़ेगी तो हम सीधे जायेंगे और साँप पर चढ़ जायेंगे। किन्तु जब दृष्टि पड़ जायेगी तो बच जायेंगे। तो देखो साँप तो पड़ा ही है परन्तु दृष्टि का अनिवार्य है। ऐसे ही संसार मिथ्या तो है ही परन्तु दोष दृष्टि का अनिवार्य है। जब तक दोष दृष्टि नहीं होगी तब तक मिथ्यत्व का नहीं होता।

संसार के वस्तु में मिथ्यत्व तो है ही। इसका दृढ़ निश्चय अनिवार्य है। यानी यह जो कुछ भी दिखाई पड़ रहा है वह सब है— इसका दृढ़ निश्चय करना अनिवार्य है।

॥ ॐ पूर्णमदः ॥

CC-0. RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

Digitized by Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.